संगीत विशारद

इन्टरमीजियेट तथा बी. म्यूज़ (सङ्गीत विशारद
के विद्यार्थियों के लिये



लेखक—
'वसन्त'



सम्पादक—
लक्ष्मीनारायण गर्ग



प्रकाशक—
प्रभूलाल गर्ग
संगीत कार्यालय, हाथरस (उ. प्र.



Published by Prabhulal Garg
and Printed by Th Bharat Singh
AT THE
"SANGEET PRESS"
HATHRAS (U P)

प्राक्कथन

सङ्गीत का विद्यार्थी वर्ग बहुत दिनों से एक ऐसी पुस्तक की मांग कर रहा था, जिसमें इन्टर तथा विशारद की परीक्षाओं में आने वाली थ्योरी (शास्त्रीय विवेचन) हो। वास्तव में उनकी यह मांग उचित भी थी; क्योंकि सरल हिन्दी भाषा में अभी तक कोई ऐसी पुस्तक प्राप्य नहीं थी, जिसमें ऐसे परीक्षार्थियों को मनवांछित सामग्री प्राप्त हो सके। विद्यार्थियों की यह कठिनाई प्रकाशक की दृष्टि में भी थी और वह चाहता था कि इसे तुरन्त दूर कर दिया जाय; किन्तु किसी भी निर्माण कार्य की योजना को क्रियात्मक रूप देने में समय तो लगता ही है। फलस्वरूप 'सङ्गीत विशारद' के प्रकाशन में भी वर्षों का समय लग गया।

भातखण्डे सङ्गीत महाविद्यालव, गांधर्व महाविद्यालय मंडल, माधव सङ्गीत महाविद्यालय, प्रयाग सङ्गीत समिति आदि शिक्षण केन्द्रों के पाठ्यक्रमों के आधार पर इस ग्रंथ की रचना की गई है, अतः विभिन्न केन्द्रों में परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों को इससे यथेष्ट सहायता प्राप्त होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस पुस्तक में प्रयुक्त स्वर और ताल चिन्ह यद्यपि भातखंडे पद्धति के अनुसार ही हैं तथापि विद्यार्थियों के ज्ञानवर्धन के लिये विष्णु दिगम्बर पद्धति के स्वर–ताल चिन्हों का स्पष्टीकरण भी यथा स्थान कर दिया गया है। राग और तालों का विवरण देते [illegible] य[illegible] बात की पूर्ण चेष्टा की गई है कि शिक्षण केन्द्रों के पाठ्यक्रमानुसार (प्रथम [illegible] से पंचम वर्ष तक) सभी राग और तालों का इस पुस्तक में समावेश हो जाय। इस प्रकार यह पुस्तक विशेषतः 'सङ्गीत विशारद' के विद्यार्थियों के लिये मां सरस्वती का वरदान स्वरूप बन गई है। इस पुस्तक के अध्ययन के बाद परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने की पूर्ण आशा है ही, साथ ही भारतीय सङ्गीत के शास्त्रीय ज्ञान का एक विशाल कोष भी विद्यार्थियों को प्राप्त हो सकता है, जिसकी उन्हें अपने सांगीतिक जीवन में पग–पग पर आवश्यकता पड़ेगी।

पुस्तक के प्रकाशन के उपरान्त मेरा परिश्रम पूर्ण तो हो गया, किन्तु इसकी सफलता अभी शेष है। यदि विद्यार्थी वर्ग को इस पुस्तक के अध्ययन से यथोचित लाभ होता है और वे इसे हृदय से अपनाते हैं तो वह सफलता भी दूर नहीं।

अन्त में उन लेखक महानुभावों के प्रति भारी कृतज्ञता प्रकट करते हुए मैं उन्हें अपना हार्दिक धन्यवाद प्रेषित करता हूँ। जिन विद्वानों के विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों का अवलोकन और मन्थन करने के पश्चात् इस पुस्तक की रचना की गई है उन ग्रन्थ और ग्रन्थकारों के नाम इस प्रकार हैं:—

१—सङ्गीत रत्नाकर (शार्ङ्गदेव)

२—सङ्गीत दर्पण (दामोदर)

३ (

४—सङ्गीत सीकर	(वी० एन० भट्ट)
५—सङ्गीत पारिजात	(अहोबल)
६—क्रमिक पुस्तक मालिका	(भातखण्डे)
७—राग विज्ञान	(पटवर्धन)
८—सङ्गीत कौमुदी	(वी० एम० निगम)
९—सङ्गीत शास्त्र	(एम० एन० सक्सेना)
१०—सङ्गीत शास्त्र विज्ञान	(बद्री प्रसाद शुक्ल)
११—सङ्गीत वीथिका	(प्रजेश बन्धोपाध्याय)
१२—सङ्गीत प्रदीप	(कु० बुलबुल मित्रा)
१३—अप्रकाशित राग	(ज० दे० पत्की)
१४—सङ्गीत कला विहार	(मासिक)
१५—सङ्गीत	(मासिक)
१६—भातखण्डे सङ्गीत शास्त्र	(भातखण्डे)
१७—ताल अङ्क	(विशेषाङ्क सङ्गीत)
१८—सङ्गीत सागर	(विशेषाङ्क सङ्गीत)
१९—मारिफुन्नगमात	(राजा नवाब अली)
२०—वाद्य सङ्गीत अङ्क	(विशेषाङ्क "सङ्गीत")

——आदि-आदि——

विजया दशमी
सम्वत् २०११ वि०



विनीत —
'वसन्त'

अनुक्रमणिका

उत्तरी सङ्गीत पद्धति की मुख्य तालें—

वाद्य यन्त्र परिचय, वाद्यों के प्रकार—

सङ्गीत विद्वानों का संक्षिप्त परिचय—

संगीत विशारद.

सफल संगीतज्ञ बनने के उपकरण

(१) पुस्तकालय और संगीत

संगीतकार और संगीतज्ञ के लिये पुस्तकालय रखना नितांत आवश्यक है, बिना इसके ये दोनों अपनी सांगीतिक प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि नहीं कर सकते। प्रत्येक संगीतज्ञ को चाहे वह छोटे ही रूप में क्यों न हो, एक लाइब्रेरी अवश्य रखनी चाहिये। साहित्य और सङ्गीत का घनिष्ट सम्बन्ध है। इन दोनों को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। जिस सङ्गीत की पृष्ठभूमि में उच्च रचनाऐं, रम्य भावनाऐं, सुन्दर विचार, रंगीन एवं कलात्मक उड़ाने नहीं होतीं, वह सङ्गीत शाश्वत एवं अपूर्व नहीं बन सकता। जीवन के ठोस तत्वों पर सङ्गीत की नींव होनी चाहिये जिससे विश्व को उज्वल आलोक प्राप्त हो सके, शक्तिशाली सांगीतिक उत्पादन मिल सके; सङ्गीत की उच्च्च कोटि की अभिव्यक्ति अपने सुन्दरतम रूप में प्रस्तुत हो सके और सङ्गीत का स्वरूप पुष्टिकारी होकर विश्व को सम्मोहित कर सके। अतः आपका परम कर्तव्य है कि सङ्गीत की किसी भी उपयोगी पुस्तक को हाथ से न निकलने दें और उसे खरीदकर अपने पुस्तकालय का उपकरण बनायें। अवकाश के समय आप इन पुस्तकों का मनन कर सकते हैं। आपको यह स्मरण रखना चाहिये कि आपको सङ्गीत का केवल व्यवहारिक ज्ञान ही कुशल सङ्गीतज्ञ नहीं बना सकता जब तक कि आपको सङ्गीत का पूर्णरूपेण शास्त्रीय ज्ञान न हो। यह शास्त्रीय ज्ञान अध्ययन से ही अर्जित किया जा सकता है। व्यवहारिक ज्ञान का विकास शास्त्रीय ज्ञान पर ही आधारित है। जितना आपका शास्त्रीय ज्ञान विकसित होगा उतना ही अधिक आपका व्यवहारिक ज्ञान परिपुष्ट होगा। जो व्यक्ति प्रमादी हैं और विधिवत अध्ययन नहीं कर पाते, उनकी सांगीतिक प्रतिभा भी अधूरी रह जाती है। सङ्गीत की सफलता केवल वही नहीं है जो आपको सङ्गीत प्रदर्शित करते समय श्रोताओं द्वारा तालियों की गड़गड़ाहट के मध्य प्राप्त होती है। यह तालियों की गड़गड़ाहट की ख्याति तो क्षणभंगुर होती है, इसमें स्थायित्व नहीं होता, यह केवल चार दिनों की चांदनी के समान होती है। अतः यह कला को ऊपर नहीं उठा सकती। इसके लिये आपको सङ्गीत साहित्य का पूर्ण अध्ययन करना पड़ेगा।

अध्ययन करते समय अपना दृष्टिकोण संकीर्ण न बनाइये। आपको प्रत्येक पुस्तक को चाहे वह भारतीय लेखक की हो अथवा विदेशीय लेखक की, मनन अवश्य करना चाहिये। आप इस तथ्य को हमेशा याद रक्खें कि प्रत्येक भाषा में सुन्दर कलाकार हो गये हैं, अतः अपने दृष्टिकोण को उदार बनाते हुए आप जो अध्ययन करेंगे उससे आपका ज्ञान सर्वोन्मुखी होगा। आपके सङ्गीत की पृष्ठभूमि उदार और गम्भीर बन जायेगी। हमारे यहां के अधिकांश सङ्गीतकारों में यह अभाव पाया जाता है। हमारे भारतीय सङ्गीतकार अधिकतर अशिक्षित हैं, वह अध्ययन की ओर से उदासीन हैं, अतएव उनका ज्ञान सीमित दायरे में रह जाता है। वे फिर सङ्गीत की दौड़ में विशेष आगे नहीं बढ़ पाते। यह भी प्रायः देखा जाता है कि उनके अन्दर

को शाश्वत नहीं बना पाते और न लोकप्रिय ही बना पाते हैं। सङ्गीत को किस प्रकार गुलदस्ते के समान काट-छाटकर दुरुस्त किया जाये, कैसे उसको विकसित किया जाये, कैसे एक रूप में अनेक रूपों का समन्वय किया जाये कि जिसमे उसकी मौलिकता नष्ट न हो, कैसे विभिन्न तथ्यों का एकीकरण करके उनमें अनुरूपता लाई जाए, कैसे उसके विभिन्न रूपों को एक सूत्र मे पिरोया जाये, किस प्रकार प्राचीन और नवीन पद्धतियों एव शैलियो को आधुनिक साचे में ढालकर उनका जीवन बढाया जाय और किस प्रकार एक राग मे से अनेक राग निकालें जाये, आदि अनेक समस्याएं हैं, जिन्हें वर्तमान सङ्गीतकार सुलझाने में घबरा जाता है। इन सब सागीतिक समस्याओं को वही सङ्गीतज्ञ सुन्दर ढग से सुलझा सकता है जिसने सङ्गीत के मूल तत्वों का भली भाति अध्ययन किया है, जो प्रमादी नहीं है, जो प्रत्येक सङ्गीत की पुस्तक को पढने के लिये सदैव तैयार रहता है और उसके अनुकूल आचरण भी करता है। आपकी छोटी-मोटी लाइब्रेरी आपकी दिशा में बहुत सहायता कर सकती है, बशर्ते कि आपके अन्दर सफल सङ्गीतज्ञ बनने की पूर्ण इच्छा हो। मान लीजिये, आपकी आर्थिक स्थिति आपको कोई भी पुस्तक खरीदने के लिये अनुमति नहीं देती तो फिर आप उस अवस्था में हाथ पर हाथ रक्खे मत बैठे रहिये, अपितु किसी सार्वजनिक पुस्तकालय में जाकर अपनी इच्छित पुस्तकों की खोज करिये और मिल जाने पर उसका अध्ययन कीजिये। जो व्यक्ति सफल सङ्गीतज्ञ बनने का दृढ सकल्प कर लेगा, उसे आर्थिक बाधायें कभी नहीं रोक पातीं।

सङ्गीत का आदर्श है, ज्ञान के सुनहले रत्नो को एकत्रित करके जाज्वल्यमान प्रासाद का निर्माण करना। उसका आदर्श है सार्वभौमिक मानव जीवन का एक्य एव सगठन। सङ्गीतज्ञ को ऐसी सागीतिक रचना सृजन करनी चाहिये जो प्रान्तों एव देश की सीमाओं की विभिन्नताओं के रहते हुए भी एक अव्यक्त सूत्र में मानव हित तथा सहयोग के बिखरे हुए पल्लवों का बन्दनवार शिव और कल्याण की भावना से कला मन्दिर के चारों ओर बाध सकने योग्य हो। इस रम्य आदर्श की पूर्ति तभी हो सकती है, जबकि आप अपने शास्त्रीय (थ्योरिटीकल) ज्ञान की अभिवृद्धि करेंगे। तभी आपका सङ्गीत शाश्वत जीवन का आकाश दीप बन सकेगा। तभी आप ऐसे सगीत का सृजन कर सकेंगे जो हमारी दृष्टि को सर्वव्यापी बना सके। सकीर्णता के घने कुहरे को काट सके। आज हमारे सामने एक ही ध्वनि, एक ही रूप, ढले हुए सुन्दर आकारों में रक्खा जाता है। एक ही रचना को या एक ही राग को विभिन्न प्रकार के रग-बिरगे परिधान पहिराय जाते हैं, जैसे विभाकर की एक दीप्त रश्मि वातायन के रगीन शीशों मे प्रसूत होकर अवनि के विशाल अञ्चल पर इन्द्र धनुष अकित कर रही हो, जिसमें कोई स्थायित्व नहीं होता, जिसमें आखों को चौंधियाने वाली चमक तो अवश्य होती है लेकिन आत्मा को आलोकित करने वाला दिव्य तेज नहीं। सङ्गीतकारों की यह परिस्थिति वास्तविक ज्ञान के अभाव में हो गई है। इधर हमारे सगीतज्ञ अपने वास्तविक ज्ञान के अभाव में कुछ इधर-उधर भटक गये हैं और इन भटके हुओं का झुकाव पश्चिमी सगीत की ओर हो गया है। पश्चिम के यथार्थवादी सागीतिक साहित्य ने हमारे सागीतिक व्यक्तित्व को प्रच्छन्न कर ही लिया है, किन्तु साथ ही हम सगीत की विभिन्न मर्यादाओं को लाघकर उच्छृङ्खलता के विशाल खण्डहर में भी जा गिरे, इसलिये हम राष्ट्र, वर्ग सम्प्रदाय में प्रेम के सरस गीतों को गु जित न कर सके और न हम आज की भौतिकता के दामन मे स्वार्थ एव स्पर्धा के अस्तित्व को मिटा

सके। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि आप अपने संगीत का सृजन संकीर्णता की परिधि में करें, ऐसा अर्थ आप कदापि न लगायें, लेकिन हां, अपनी मौलिकता के स्मृति स्तम्भ पर विदेशी भावनाओं की पुष्पांजलि न चढ़ायें। हां, आप अपनी प्रतिभा की उपत्यका में सुव्यवस्थित ढङ्ग से सङ्गीत का राग इस प्रकार अलापे कि स्वरलहरी में भारतीय झन्कार हो और उस झन्कार में अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गीत का समन्वय हो। किन्तु समन्वय करते समय आप अपने जीवन की प्रबल धारा को विदेशी धरातल की ओर न मोड़ें, अपितु विदेशी जीवन की धारा को आप भारतीयता की पृष्ठभूमि पर प्रवाहित करना सीखें। दोनों धाराओं के समन्वय में भारतीय प्रतिभा सर्वोपरि रहे। यदि आपके अन्दर समन्वय प्रतिभा का अभाव है, तो आप विदेशी सङ्गीत की ओर कभी न देखिये, क्योंकि दोनों धाराओं को मिलाने के लिये बहुत उच्चकोटि की प्रतिभा की आवश्यकता है, जोकि बिना नियमित अध्ययन के प्राप्त नहीं हो सकती।

स्वतन्त्र भारत में सङ्गीत का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है, अतएव आपको अपना सांगीतिक ज्ञान अधिक से अधिक मात्रा में बढ़ाना चाहिये। स्वतन्त्र भारत में ज्ञानवर्धन की अधिक आवश्यकता इसलिये भी है कि आपको विश्व के राष्ट्रों में अपनी सांस्कृतिक कला का प्रतिनिधित्व करना है। आजकल अन्य राष्ट्रों के सांस्कृतिक मण्डल अपने यहां आते हैं और अपने देश के दूसरे राष्ट्रों में जाते हैं। इन शिष्ट मण्डलों का ध्येय तभी पूरा हो सकता है, जबकि इनके सदस्य गण उच्च कोटि के प्रतिभाशील हों और वे अपनी अपूर्व प्रतिभा को अन्य राष्ट्र के नेताओं, कलाकारों के सन्मुख अभिव्यक्त कर सकें, तभी तो स्वतन्त्र भारत का सांस्कृतिक गौरव बढ़ेगा। इन्हीं सांस्कृतिक मान्यताओं पर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से मैत्री स्थापित करता है। इसलिये सांस्कृतिक थाती जिस देश की जितनी उच्च होगी, वह देश उतना ही अधिक दूसरे देशों को प्रभावित कर सकेगा। अतः अपने देश के मान और मर्यादा की रक्षा के लिए प्रत्येक सङ्गीतकार का पवित्र कर्तव्य है कि वह पुस्तकालय रखने की आदत डाले।

(२) स्वर विज्ञान और सङ्गीत

स्वर की विभिन्न धाराओं को सांगीतिक रूप देने के लिये स्वर की पूर्ण फिलोस्फी (तत्वज्ञान) समझ लेना पूर्ण आवश्यक है, क्योंकि बिना तत्वज्ञान के समझे हुए आप उसका सांगीतिक रूप सुन्दर ढङ्ग से प्रस्तुत नहीं कर सकते। स्वर के उच्चारण में दस प्रकार के मोड़ आते हैं। पहिले मोड़ पर स्वर को शनैः प्रसारित करना चाहिए। दूसरे मोड़ पर प्रसारित किये हुए स्वर में गूँज भरनी चाहिये। तीसरे मोड़ पर गुंजित वायुमण्डल में गीतों के भावों का इस प्रकार सम्पादन करना चाहिए कि प्रत्येक भाव स्वर की गहराई में उपयुक्त हो जाय। चौथे मोड़ पर स्वर में घनत्व शक्ति स्थिर करनी चाहिए, पांचवें मोड़ पर आरोह के लिये जितना भी अधिक हो सके उतना अधिक स्वर को फैलाइये, जिससे सम्पूर्ण आरोह का दबाब पूर्णरूपेण बैठ जाये। छटवें मोड़ पर स्वर संधान करके गीत का प्रथम क्लाइमेक्स (सीढ़ी) बनाइये, जिससे आप गीत–सौंदर्य-को स्थिर कर सकें और गीत अभिलेखन कर्ता को इतना समय मिल जाये कि वह आपके स्वर चित्र की पूर्ण प्रतिलिपि भर सके। सातवें मोड़ पर अवरोह का प्रस्तुतीकरण करके, थोड़े से

पर गीत का दूसरा क्लाइमेक्स निर्माण कीजिये, जहा आपको स्वर का घनत्व इतना अल्प कर देना होगा, जिससे उसका सागीतिक रूप सुन्दर बन सके। नवें मोड पर स्वर में इतने प्रवाह का आविर्भाव कीजिए कि उसकी गतिशीलता में गीत के भावों को स्वाभाविक रूप में आगे बढने के लिये स्वस्थ वातावरण मिल जाये। अन्तिम दसवे मोड पर स्वर का तीसरा क्लाइमेक्स बनाते हुए आरोह-अवरोह की दोनों गतियों को "प्रल्पीस विन्दु" पर केन्द्रित कीजिये। प्राय यह देखा जाता है कि गायक गीत गाते वक्त स्वर के उपर्युक्त रूपो मे अनभिज्ञ होकर गाता है, जिससे उसके गाए हुए गीतों को अभिलेखित करने में अभिलेखन कर्ता को कठिनाई पडती है। उसकी सहूलियत के लिये आपको स्वर उसी दशा में मोडना पडेगा, जैसा कि स्वर की शिल्पज्ञता आपको विवश करे। स्वर की शिल्पज्ञता की पूरी थ्योरी आपको जाननी चाहिए। यह थ्योरी लगभग वही है जो आपको ऊपर निर्देश की जा चुकी है। स्वर विज्ञान की इस व्यापक थ्योरी से गाए हुए गीत पर गायक को अधिक परिश्रम एव सावधानी बरतनी होगी। प्रारम्भ में कुछ बाधायें अवश्य आ सकती हैं, किन्तु जब वह परिस्थिति का अभ्यस्त हो जायेगा तब उसको यही कार्य सरल हो जायेगा। वास्तव में स्वर की अनेक प्रक्रियायें हैं, इन प्रक्रियाओं की अनेक उप प्रक्रियाये भी हैं। जिनमें से मुख्य यह हैं—"कीवल्य" "चीरोल्य" 'माणील्य"। "कीवल्य" में स्वर का अर्द्ध घनत्व होता है। "चीरोल्य" में स्वर का पूर्ण घनत्व बनकर रुपये जैसी टकार होने लगती है, जिससे स्वर में स्पष्टता, स्वच्छता पूर्ण रूपेण आ जाती है और "माणील्य" में स्वर के तीन सयुक्त घुमाव होते हैं, जिनको आप दीपक राग मे सुगमता से अभिव्यक्त कर सकते हैं। माणील्य का प्रयोग विशेष रागों मे ही होता है, हर स्थान पर लागू नहीं हो सकता।

(३) गोष्ठियां और सङ्गीत

सागीतिक जीवन को प्रभावशाली एव गौरवपूर्ण बनाने के लिये गोष्ठियों का भी अपना मूल्य है। इनके अभाव में सङ्गीतकार की प्रतिभा ऐसी मालूम पडती है मानो किसी सरोवर को चारों तरफ से सीमित कर दिया गया हो, तथा जिसमें पानी के बहाव का कोई साधन न हो और न पानी के आने का। तो बन्द पानी की क्या दशा होगी ? यही कि वह कुछ दिनों में सड जायेगा और उसमें बदबू पैदा हो जायेगी॥ इसी प्रकार आपका भी यही हाल हो सकता है, यदि आप अपनी गतिशीलता को सीमित करके चारों तरफ के आवागमन से उसे अवरुद्ध कर लेंगे, तो फिर आपके अन्दर प्रवाह नहीं रहेगा और जब मनुष्य की प्रतिभा का प्रवाह समाप्त हो जाता है, तो फिर वह पतन के गर्त में गिरता चला जाता है और एक दिन वह सम्पूर्ण रूप से गिर जाता है। फिर वहा से उठना असम्भव सा हो जाता है। गोष्ठिया जीवन के झाड-झकाडों का विनाश करती हैं और जो जडता का कुहरा जीवन के इर्द गिर्द आच्छादित हो जाता है, उसको छितरा देती हैं तथा जीवन को उत्साह, स्फूर्ति और नवीन भावनाओं से परिपूर्ण कर देती हैं।

गोष्ठियाँ सङ्गीतकारों के लिये विशेष उपयोगी हैं, क्योंकि इन गोष्ठियों के अवसर पर अनेक कलाकारों का मिलन होता है, विचार विमर्श होता है और होता है कला का

परस्पर आदान प्रदान। जिससे सङ्गीतकारों के वातावरण में एक नूतन चेतना का सृजन हो जाता है जो कि उनके विकास का प्रतीक बनती है। सङ्गीतकारों को गोष्ठियों में गाने से बिल्कुल संकोच नहीं करना चाहिये, यदि वे संकोचवश उनमें शामिल नहीं होते तो उनके सांगीतिक ज्ञान की परिधि सीमित रह जायेगी। सफल सङ्गीतज्ञ के लिये समय-समय पर गोष्ठियों में भाग लेते रहना उसके विकास का प्रकाश दीप है। ब्रिटेन के विख्यात सङ्गीतज्ञ मिस्टर ईलविन उल्फ ने सफल सङ्गीतज्ञ बनने के उपकरणों में लिखा है:—"वे व्यक्ति सौभाग्यशाली हैं जिनको अधिक-से-अधिक गोष्ठियों में शामिल होने का सुअवसर प्राप्त होता रहता है, क्योंकि उनके जीवन का विकास कला की सही दिशा की ओर होगा। वे कला के शाश्वत स्वरूप का निर्माण करने में पूर्ण सफल होंगे, वास्तव में गोष्ठियाँ सङ्गीतज्ञों के लिये संजीवनी शक्ति कही जांय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। विश्व के अनेक सङ्गीतज्ञों ने सिर्फ़ गोष्ठियों में शामिल होने के बल पर ही सङ्गीत के क्षेत्र में सफलता उपलब्ध की है, जैसे-मलाया के मिस्टर थीवन्स, न्यूयार्क के मिस्टर रेडयोट और स्वीडन के मिस्टर ग्रीनविस। लेकिन इन गोष्ठियों में आपको स्पष्ट हृदय एवं खुली हुई आँखों द्वारा जाना चाहिये, ताकि आप वहांके महत्वपूर्ण सांगीतिक उपादानों एवं वातावरण को ग्रहण करने में पूर्ण सफल हों। सिर्फ़ शामिल होनेसे ही काम न चलेगा, जबतक कि आप सतर्क होकर हर चीज़ को अवलोकन करके प्राप्त न करेंगे, तब तक नग्न हृदय एवं मस्तिष्क से जाकर कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। और फिर एक सङ्गीतज्ञ को तो और भी सतर्क एवं तीव्र बुद्धि का होना चाहिये ताकि वह सङ्गीत की प्रत्येक हलचल को, प्रत्येक चहल-पहल को सुगमता से पकड़ सके। अगर आप सफल सङ्गीतज्ञ बनना चाहते हैं तो आपको समय-समय पर गोष्ठियों में अवश्य सक्रिय भाग लेना होगा।

और देखिये फ्रान्स के महान् कलाकार मिस्टर वानडीविस क्या कहते हैं:—"जब सांगीतिक शृंखला में अस्त-व्यस्तता आ जाती है, जब सांगीतिक जीवन विशृंखल हो जाता है, और नव सांगीतिक तथ्यों में परस्पर एक सूत्रता नहीं रहती, तब यह गोष्ठियाँ सङ्गीत के रूप में अनुरूपता लाती हैं और उसको मनोरम बनाती हैं। जिस प्रकार बिना लहरों के सागर का सौन्दर्य तुच्छ है क्योंकि बिना लहरों के सागर में गतिशीलता नहीं रहती, जो कि उसका जीवनहै; ठीक इसी प्रकार गोष्ठियां सङ्गीतकार के विशाल जीवन में लहरों के समान हैं जो उनके जीवन में प्रवाह लाती रहती हैं। बिना प्रवाह के जीवन का क्या मूल्य? प्रवाहपूर्ण जीवन ही जीवन है।

इन गोष्ठियों को आप सङ्गीतकारों के जीवन का "मार्ग-चिन्ह" भी कह सकते हैं, क्योंकि यहीं से उनको अपनी कला के सन्तुलन का सही पता चलता रहता है, क्योंकि यहाँ उनकी कला कसौटी पर चढ़ाई जाती है, और तब पता लगता है कि उनकी कला ओजपूर्ण है अथवा नहीं। कसौटी पर चढ़ने के बाद ही किसी चीज़ के खरे-खोटे का ज्ञान हो सकता है, उससे पूर्व नहीं। जब आपको अपनी कला की परख पूर्ण रूप से ज्ञात हो जाये, तब आप अपना सही क़दम उठा सकते हैं और फिर आप कला की सही दिशा की ओर बढ़ सकते हैं। गोष्ठियों से कला का परिष्कार एवं सुन्दरतम रूप निर्मित होता रहता है।

गोष्ठियों में शामिल न होने से आपको यह नहीं मालूम पड सकता कि आप कितने

सकता है। वहा आपको कुछ मौलिक सुझाव भी मिल सकते हैं। लोकप्रियता एव कीर्ति का उपार्जन बिना गोष्ठियों के नहीं हो सकता। कलाकार कला की साधना जन-समाज को नव सन्देश प्रदान करने के लिये करता है। अगर आप इन सागीतिक उत्सवों मे शामिल नहीं होंगे तो अपने नव-सन्देश को जनता-जनार्दन तक कैसे पहुँचा सकते हैं और कैसे सामान्य लोग आपकी कला से लाभ उठा सकते हैं? लोक-जीवन को सुन्दरतम बनाने में भी यह गोष्ठियाँ पूर्ण योग देती हैं। जहा ये कलाकारों को सफलता की देदीप्यमान मञ्जिल की ओर प्रेरित करती हैं, वहा दूसरी ओर यह यह लोक जीवन में भी आशा और विश्वास का नवीन प्रकाश फैलाती हैं और उनके अन्धकार को नष्ट करने मे भी पूर्ण योग देती हैं। सङ्गीत की अभिवृद्धि मे गोष्ठियों का अपरमित मूल्य है, जिसका हम सहज में अकन नहीं कर सकते।

अन्त मे आपसे अनुरोध है कि सफल सङ्गीतज्ञ बनने के लिये "पुस्तकालय और सङ्गीत" का ध्यान रखिये और फिर गोष्ठियाँ और सङ्गीत को अनुपातिक ढग से अपनाने में सक्रिय कदम उठाइये। "स्वर-विज्ञान" का समझना भी अनिवार्य है, यह तीनों तथ्य सङ्गीतज्ञ के लिये महान पुष्टिकारी एव शक्तिशाली हैं तथा जीवन को प्रदीप्त करने वाले हैं।



भारतीय सङ्गीत का इतिहास

सङ्गीत कला की उत्पत्ति कब और कैसे हुई ? इस विषय पर विद्वानों के विभिन्न मत हैं, जिनमें से कुछ का उल्लेख इस प्रकार है:—

(१) सङ्गीत की उत्पत्ति आरम्भ में वेदों के निर्माता ब्रह्माजी द्वारा हुई। ब्रह्माजी ने यह कला शिवजी को दी और शिव के द्वारा देवी सरस्वती को प्राप्त हुई। सरस्वती जी को इसीलिए "वीणा पुस्तक धारिणी" कहकर सङ्गीत और साहित्य की अधिष्ठात्री माना है। सरस्वती जी से सङ्गीतकला का ज्ञान नारद जी को प्राप्त हुआ, नारद जी ने स्वर्ग के गन्धर्व, किन्नर एवं अप्सराओं को सङ्गीत शिक्षा दी। वहां से ही भरत, नारद और हनुमान आदि ऋषि सङ्गीतकला में पारंगत होकर भू-लोक (पृथ्वी) पर सङ्गीतकला के प्रचारार्थ अवतीर्ण हुए।

(२) एक ग्रन्थकार के मतानुसार, नारद जी ने अनेक वर्षों तक योग साधना की तब महादेव जी ने उन पर प्रसन्न होकर सङ्गीत कला प्रदान की। पार्वतीजी की शयन-मुद्रा को देखकर शिवजी ने उनके अङ्ग-प्रत्यंगों के आधार पर रुद्र वीणा बनाई और अपने पांचों मुखों से, पांच रागों की उत्पत्ति की। तत्पश्चात् छटा राग पार्वती जी के श्री मुख से उत्पन्न हुआ। शिवजी के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और आकाशोन्मुख से क्रमशः भैरव, हिंडोल, मेघ, दीपक और श्री राग प्रकट हुये तथा पार्वती द्वारा कौशिक राग की उत्पत्ति हुई। "शिव-प्रदोष" स्तोत्र में लिखा है कि तीन जगत की जननी गौरी को स्वर्ण सिंहासन पर बैठाकर प्रदोष के समय शूलपाणी शिव ने नृत्य करने की इच्छा प्रकट की। इस अवसर पर सब देवता उन्हें घेर कर खड़े हो गये और उनकी स्तुति गान करने लगे। सरस्वती ने वीणा, इन्द्र ने वेणु तथा ब्रह्मा ने करताल बजाना आरम्भ किया, लक्ष्मी जी गाने लगीं और विष्णु भगवान मृदङ्ग बजाने लगे। इस नृत्यमय सङ्गीतोत्सव को देखने के लिये, गन्धर्व, यक्ष पतग, उरग, सिद्ध, साध्य, विद्याधर, देवता, अप्सरागण आदि सभी उपस्थित थे।

(३) सङ्गीत दर्पण के लेखक दामोदर पण्डित के मतानुसार भी सङ्गीत की उत्पत्ति ब्रह्माजी से ही आरम्भ होती है। उन्होंने लिखा है:—

द्रुहिणेत यदन्विष्टं प्रयुक्तं भरते न च।
महादेवस्य पुरतस्तन्मार्गाख्यं विमुक्तदम् ॥

अर्थात्—ब्रह्माजी (द्रुहिण) ने जिस सङ्गीत को शोधकर निकाला, भरतमुनि ने महादेव जी के सामने जिसका प्रयोग किया तथा जो मुक्तिदायक है वह मार्गी सङ्गीत कहलाता है।

इस विवेचन से प्रथम मत का कुछ अंशों में समर्थन होता है। आगे चलकर इसी

मोर से षडज, चातक से रिषभ, बकरा से गाधार, कौवा से मध्यम, कोयल से पचम, मेंढक से धैवत और हाथी से निषाद स्वर की उत्पत्ति हुई।

(४) फारसी के एक विद्वान का मत है कि हजरत मूसा जब पहाडों पर घूम-घूमकर वहा की छटा देख रहे थे, उसी वक्त गेब से एक आवाज आई (आकाशवाणी हुई) कि "या मूसा हक्कीकी तू अपना असा (एक अस्त्र जो फकीरों के पास होता है) इस पत्थर पर मार !" यह आवाज सुनकर हजरत मूसा ने अपना असा जोर से उस पत्थर पर मारा तो पत्थर के ७ टुकडे होगये और हरएक टुकडे में से पानी की धारा अलग-अलग बहने लगी, उसी जल धारा की आवाज से अस्सलामालेक हजरत मूसा ने सात सुरों की रचना की, जिन्हे सा रे ग म प ध नि कहते हैं।

(५) एक अन्य फारसी विद्वान का कथन है कि पहाडों पर "मूसीकार" नाम का एक पक्षी होता है, जिसकी नाक मे ७ सूराख बासुरी की भाति होते हैं, उन्हीं ७ सूराखों से ७ स्वर ईजाद हुए।

(६) पाश्चात्य विद्वान फ्रायड के मतानुसार सङ्गीत की उत्पत्ति एक शिशु के समान मनोविज्ञान के आधार पर हुई, जिस प्रकार एक बालक रोना, चिल्लाना, हसना आदि क्रियायें मनोविज्ञान की आवश्यकतानुसार स्वय सीख जाता है उसी प्रकार सङ्गीत का प्रादुर्भाव मानव में मनोविज्ञान के आधार पर स्वय हुआ।

(७) जेम्स लॉग के मतानुयायिओ का भी यही कहना है कि पहिले मनुष्य ने बोलना सीखा, चलना फिरना सीखा और फिर शनै-शनै क्रियाशील हो जाने पर उसके अन्दर सङ्गीत स्वत उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार सङ्गीत की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत पाये जाते हैं। इनमें कौनसा मत ठीक है, यह कहना कठिन ही है, अत सङ्गीतकला का जन्म कैसे हुआ, कब हुआ ? इस पर अपना कोई निर्णय न देकर हम आगे बढना ही उचित समझते हैं —

प्राचीन ग्रथों में सङ्गीत के चार मुख्य मत पाये जाते हैं (१) शिवमत या सोमेश्वर मत (२) कृष्णमत या कल्लिनाथ मत (३) भरत मत और (४) हनुमत मत।

सङ्गीत के इतिहास का काल विभाजन

भारतीय सङ्गीत के इतिहास को निम्नाकित ४ भागों मे विभक्त किया जा सकता है।

(१) अति प्राचीन काल (वैदिक काल) २००० ईसा पूर्व से १००० ईसा पूर्व तक।

(२) प्राचीन काल—वैदिक सास्कृतिक परम्परा समाप्त हो जाने के बाद। १००० ईसापूर्व से, सन् ८०० ई० तक।

(३) मध्यकाल (मुसलिम काल) ८०० ई० से १८०० ई० तक।

(४) आधुनिक काल (अग्रेजी शासन काल) १८०० ई० से १९५० ई० तक।

(१) अति प्राचीन (वैदिक) काल

[२००० ई० पूर्व से १००० ईसा पूर्व तक]

वेदों में सङ्गीत

इस वैदिक काल में सङ्गीत का प्रचार था, इसका प्रमाण हमें वेदों से भली प्रकार मिलता है। ऋग्वेद में मृदङ्ग, वीणा, वंशी, डमरू आदि वाद्य यन्त्रों का उल्लेख मिलता है और सामवेद तो सङ्गीतमय है ही। कहा जाता है कि सामगान में पहले केवल ३ स्वरों का प्रयोग होता था जिनको उदात्त, अनुदात्त और स्वरित कहते थे। आगे चलकर एक-एक करके स्वर और बढ़ते गये और इस वैदिक काल में ही सामगान सप्त स्वरों में होने लगा। इसका प्रमाण "सप्त स्वरास्तु गीयन्ते सामभिः सामगैर्बुधैः" माण्डूकशिक्षा की इस पंक्ति से भी मिलता है।

पाणिणि शिक्षा तथा नारदीयशिक्षा में निम्नलिखित श्लोक मिलता है, जिसके आधार पर सप्त स्वर उनके उदात्त अनुदात्त और स्वरित के अन्तर्गत इस प्रकार आते थे:—

उदात्ते निषादगान्धारौ अनुदात्त रिषभधैवतो।
स्वरित प्रभवा ह्येते षडजमध्यमपंचमा ॥

अर्थात्,

उदात्त		अनुदात्त		स्वरित
नि ग	०	रे ध	०	स म प

याज्ञ्यवल्क शिक्षा में भी इसी प्रकार का वर्गीकरण मिलता है। वैदिक काल में सङ्गीत गायन के साथ-साथ नृत्यकला भी प्रचलित थी, इसका प्रमाण ऋग्वेद (५।३३।६) में आया है "नृत्यमनो अमृता"। लिंग पुराण के अनुसार शिव के प्रधान गण नान्दिकेश्वर थे। इन्होंने भरतार्णव नामक एक विशाल ग्रंथ नृत्यकला पर लिखा था। बाद में इसका संक्षिप्तीकरण "अभिनय दर्पण" में हुआ। नृत्य करती हुई अनेक प्राचीन मूर्तियां भी इसका प्रमाण देती हैं कि वैदिक काल में नृत्यकला प्रचलित थी। देवताओं द्वारा सोमरस पान करके नृत्य करने की प्रथा से भी सङ्गीत और नृत्य की प्राचीनता का समर्थन होता है।

(२) प्राचीन काल

[१००० ईसा पूर्व से सन् ८०० ई० तक]

पौराणिक और बौद्धकाल

इस समय का पूर्वार्ध भाग अर्थात् १००० ईसा पूर्व से १ ईसवी तक का समय पौराणिक और बौद्धकाल के अन्तर्गत आता है। इस काल में सङ्गीत का प्रचार किस रूप में रहा? इसका कोई ठोस प्रमाण तो नहीं मिलता, किन्तु उपनिषद तथा अन्य ग्रन्थों के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि इस काल में भी सङ्गीत किसी न किसी रूप में चालू अवश्य रहा। इसके बाद अर्थात १ ई० से ८०० ई० तक सङ्गीतकला प्रकाश में आई। इसी काल में भरत ने

"नाट्यशास्त्र" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ का निर्माण किया एवं अन्य ग्रन्थ भी इस काल में लिखे गये। भरत के नाट्यशास्त्र से प्रेरणा पाकर ही इस काल में नाट्य और नृत्य का विशेष प्रचार हुआ। एवं इसी काल में ३ ग्राम, २१ मूर्छना, ७ स्वर और २२ श्रुतियों की प्रणाली का वर्णन भी सङ्गीत ग्रन्थों मे किया गया।

महाकवि कालिदास

इसी काल मे महाकवि कालिदास (४०० ई०) द्वारा सङ्गीत और कविता का प्रचार चारों ओर हो चुका था। राज दरबारों में गायक-वादक सम्मानित होने लगे थे। कालिदास ने अपनी रचनाओं मे सङ्गीत का पुट देकर आश्चर्यजनक प्रगति की। उस समय कविता और सङ्गीत के संमिश्रण से सङ्गीत में एक नई चेतना जागृत करने का श्रेय महाकवि कालिदास को ही है।

रामायण और महाभारत

हमारे प्रसिद्ध ग्रंथ रामायण और महाभारत भी इसी काल मे लिखे गये। अर्थात् महाभारत का काल ५०० ईसा पूर्व से २०० ईसवी तक और रामायण काल ४०० ईसा पूर्व से २०० ईसवी तक का माना जाता है।

रामायण मे एक वर्णन के अनुसार—जब लक्ष्मणजी सुग्रीव के अन्तर महल मे प्रवेश करते हैं, तो वहा वीणा वादन के शुद्ध गायन सुनते हैं। रावण को भी सङ्गीत-शास्त्र का प्रकांड विद्वान बताया गया है। इसी प्रकार महाभारत मे भी सात स्वरों का तथा गांधार ग्राम का वर्णन मिलता है। इन दोनों ही ग्रन्थों मे सङ्गीत तथा वाद्य यन्त्रों का विशेष उल्लेख मिलता है। भेरी, दुन्दुभी, मृदङ्ग, घट, डिमडिम, मुदुडुक, आडम्बर, वीणा आदि वाद्यों का उल्लेख हम रामायण में देखते ही हैं। इससे विदित होता है कि महाभारत और रामायण काल में भी सङ्गीतकला प्रचार में रही।

भरत का नाट्यशास्त्र

भरत का नाट्यशास्त्र ५ वीं शताब्दी (४००-५०० ई०) की रचना मानी जाती है। यद्यपि यह एक नाटकीय ग्रंथ है, किन्तु इसके २८-२६ और ३० वे अध्यायों में सङ्गीत सम्बन्धी शास्त्र दिया गया है, जिसमें गायन वादन, नृत्य, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना और जातियों का उल्लेख है। नाट्य भी नृत्य श्रेणी मे आ जाने के कारण यह समूचा ग्रंथ ही सङ्गीतकला के अन्तर्गत आ जाता है। आज भी नाट्यशास्त्र प्राचीन काल के सङ्गीत का एक आधारभूत ग्रंथ माना जाता है।

इसी समय के आस-पास भरत के पुत्र दत्तिल द्वारा लिखित "दत्तिलम्" ग्रंथ का उल्लेख भी मिलता है। यह ग्रंथ भी पांचवीं शताब्दी के उत्तरार्ध का माना जाता है। इसमे प्रतिपादित मत लगभग भरत से मिलते-जुलते हैं। दत्तिलम में मूर्च्छना की परिभाषा नहीं दी गई, जब कि भरत के नाट्यशास्त्र मे दी गई है।

मतङ्ग का बृहद्देशीय ग्रन्थ

छटी शताब्दी के समय मे मतङ्ग मुनि प्रणीत बृहद्देशीय ग्रन्थ मिलता है, जिसमें ग्राम और मूर्च्छना का विस्तृत रूप मे उल्लेख किया गया है। सर्व प्रथम "राग" शब्द का उल्लेख भी इसी ग्रंथ में पाया जाता है। इससे पूर्व के ग्रंथों में राग शब्द नहीं मिलता। मतङ्ग के समय मे ७ प्रकार की ग्राम जातिया प्रचलित थीं, जिनमे एक "वट्ट" राग की जाति भी है।

नारद कृत नारदीय शिक्षा

सातवीं शताब्दी के लगभग "नारदीय शिक्षा" नामक एक ग्रन्थ नारद का लिखा हुआ मिलता है। यहां पर पाठकों को यह बता देना भी उचित होगा कि यह वे नारद नहीं हैं जो देवर्षि नारद के नाम से प्रसिद्ध थे, वरन् यह अपने समय के दूसरे ही नारद हैं। इस ग्रन्थ में भी सामवेदीय स्वरों को विशेष महत्व देते हुए ७ ग्राम रागों का वर्णन किया गया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं:—

१ षाडव, २ पञ्चम, ३ मध्यम, ४ षड़जग्राम, ५ साधारिता, ६ कैशिकमध्यम और ७ मध्यम ग्राम।

सातवीं और आठवीं शताब्दियों में दक्षिण भारत में भक्ति आन्दोलन का विशेष जोर रहा, अतः भक्ति और सङ्गीत के सामंजस्य द्वारा जगह-जगह कीर्तन और भजन गाये जाने लगे, इस प्रकार धार्मिक भावना का बल पाकर इस काल में सङ्गीत का यथेष्ट प्रचार हुआ।

नारद कृत सङ्गीत मकरंद

आठवीं शताब्दी में नारद का एक और ग्रंथ सङ्गीत मकरन्द प्रकाश में आया, जिसमें राग रागनियों की कल्पना पुरुष राग और स्त्री रागों के रूप में प्रथम बार की गई। कहा जाता है कि इसी के आधार पर आगामी ग्रन्थकारों ने राग रागनी वर्गीकरण किये।

---

(३) मध्य काल (मुसलिम काल)

[सन् ११०० ई० से १८०० ई० तक]

मुसलमानों का आगमन भारत में ११ वीं शताब्दी में हुआ। इसी समय से भारतीय सङ्गीत में परिवर्तन आरम्भ हुआ। भारतीय सङ्गीत शास्त्र (Theory) उस समय तक संस्कृत भाषा में होने के कारण मुसलमान उसे समझने में असमर्थ रहे, फिर भी गायन वादन (क्रियात्मक सङ्गीत) में उन्होंने अच्छी उन्नति की। नये-नये रागों का आविष्कार किया एवं तरह-तरह के नवीन संगीत वाद्य बने, जिनका तत्कालीन मुसलिम बादशाहों द्वारा आदर हुआ और गायक-वादकों का सम्मान होने लगा।

इसके बाद १२ वीं शताब्दी में सङ्गीत की दशा विशेष अच्छी न रही, क्योंकि इस काल में मुहम्मद गौरी तथा अन्य मुसलिमों द्वारा हिन्दू राजाओं से युद्ध होता रहा, जिसके कारण देश में अव्यवस्था फैली, अतः सङ्गीत प्रचार के मार्ग में भी बाधा पड़ना स्वाभाविक ही था।

जयदेव कृत गीतगोविन्द

१२ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में "गीत गोविन्द" नामक संस्कृत के एक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना हुई। इसके रचयिता प्रसिद्ध कवि और सङ्गीतज्ञ जयदेव हैं, जिन्हें उत्तर भारत का प्रथम गायक होने का सम्मान प्राप्त था। गीत गोविन्द में राधा-कृष्ण सम्बन्धी प्रबन्धगीत हैं, जिन्हें आज भी अनेक गायक

ताल-स्वरों में बाधकर गाते हैं। जयदेव कवि का जन्म बङ्गाल में बोलपुर के निकटस्थ केन्दुला नामक स्थान में हुआ था, जहां पर अब भी प्रतिवर्ष सङ्गीत समारोह मनाया जाता है।

गीत गोविन्द की विशेषता पर मुग्ध होकर सर एडविन आरनॉल्ड (Sir Edvin Arnald) ने अँग्रेजी में इसका अनुवाद "The Indian Song of Songs" अर्थात "भारतीय गीतों के गीत" इस नाम से किया है।

शार्ङ्गदेव कृत सङ्गीतरत्नाकर

१३ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पण्डित शार्ङ्गदेव ने "सङ्गीत रत्नाकर" ग्रंथ की रचना की। इसमें नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति इत्यादि का विवेचन भली प्रकार किया गया है। दक्षिणी और उत्तरी सङ्गीत विद्वान इस ग्रंथ को सङ्गीत का आधार ग्रंथ मानते हैं। आधुनिक ग्रन्थों में भी सङ्गीत रत्नाकर के अनेक उद्धरण पाठकों ने देखे होंगे। शार्ङ्गदेव ने अपने इस ग्रंथ में मतङ्ग से अधिक विवरण अवश्य दिया है, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से मत लगभग एक सा है।

शार्ङ्गदेव का समय १२१० से १२४७ ई० के मध्य का माना जाता है, यह देवगिरि (दौलताबाद) के यादव वंशीय राजा के दरबारी सङ्गीतज्ञ थे।

इसके पश्चात (१३००—१८०० ई०) सङ्गीत का विकास काल माना जाता है। १३ वीं शताब्दी के समाप्त होते ही अर्थात १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में दक्षिण पर यवनों के आक्रमण होने से देवगिरि यादव वंश नष्ट हो गया। जिसके फलस्वरूप भारतीय सङ्गीत और सभ्यता पर भी यवनों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। इसी समय मुसलिमों द्वारा फारस के रागों का आगमन भारत में प्रारंभ हो गया। दिल्ली का शासन सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के हाथ में था, इसी समय (१२९६—१३१६ ई०) में सङ्गीतकला की विशेष उन्नति हुई।

अमीर खुसरो का समय

इसी समय के लगभग खिलजी के दरबार में हज़रत अमीर खुसरो नाम के एक प्रसिद्ध और कुशल गायक राज मन्त्री थे, इन्होंने अनेक नवीन राग, नवीन वाद्य और तालों की रचना की, इससे सङ्गीतकला विकास की ओर अग्रसर हुई। इनके विषय में कहा जाता है कि अमीर खुसरो ही वह प्रथम तुर्क थे जिन्होंने अपने देश के रागों को भारतीय सङ्गीत में मिलाकर एक नवीनता पैदा की।

कहा जाता है कि गोपाल नायक नामक प्रसिद्ध गायक भी, इसी दरबार में आगया था और अमीर खुसरो से उसकी सङ्गीत प्रतियोगिता भी दिल्ली में हुई।

अमीरखुसरो द्वारा आविष्कृत गीतों के प्रकार, ताल, तथा साजों का उल्लेख भी यहां पर संक्षिप्त रूप में कर देना अनुचित न होगा —

गीतों के प्रकार—गजल, कव्वाली, तराना, खमसा, ख्याल।

राग—जिल्फ, साजगिरी, सरपर्दा, यमन, रात की पूर्या, बरारी तोड़ी, पूर्वी इत्यादि।

तालें—झूमरा, आड़ा चौताला, सूलफाक, पश्तो, फरोदस्त, सवारी इत्यादि।

वाद्य—सितार, तबला।

गोपाल नायक ने भी कुछ रागों का भी आविष्कार किया। जिनमें पीलू, बडहंस सारंग और विरम् उल्लेखनीय है।

लोचन कृत राग तरंगिणी

१५ वीं शताब्दी में लोचन कवि ने हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति पर एक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'राग तरंगिणी' लिखा, कुछ लेखक लोचन का समय १२ वीं शताब्दी बताते हैं, किन्तु लोचन कवि ने अपने ग्रंथ में जयदेव और विद्यापति के उद्धरण दिये हैं ये दोनों शास्त्रकार क्रमशः १२ वीं और १४ वीं शताब्दी के हैं अतः लोचन का समय इस हिसाब से १२ वीं शताब्दी ठीक नहीं बैठता। इसमें प्राचीन राग-रागनी पद्धति को छोड़कर थाट पद्धति अपनाई गई है इन्होंने सभी जन्य रागों को १२ जनक मेलों (थाटों) में विभाजित किया है, अर्थात् कुल १२ थाट मानकर उनसे अनेक राग उत्पन्न किये हैं। अपना शुद्ध थाट इन्होंने वर्तमान काफी थाट के समान माना है। राग तरंगिणी के अधिकांश भाग मे विद्यापति के गीतों पर विवेचन है।

कल्लिनाथ द्वारा रत्नाकर की टीका

१४५६-१४७७ ई० के लगभग विजयनगर के राजा के दरबार में सङ्गीत के सुप्रसिद्ध पंडित कल्लिनाथ थे। इन्होंने शार्ङ्गदेव कृत सङ्गीत रत्नाकर की टीका विस्तृत रूप से लिखी। यह टीका यद्यपि संस्कृत भाषा में ही थी तथापि उसके द्वारा अनेक सङ्गीत शास्त्रकारों ने यथोचित लाभ उठाया।

सुलतान हुसेन शर्की

पन्द्रहवीं शताब्दी में (१४५८-१४९९ ई०) जौनपुर के बादशाह सुलतान हुसेन शर्की सङ्गीत कला के अत्यन्त प्रेमी हुए हैं। इन्होंने ख्याल गायकी (कलावन्ती ख्याल) का आविष्कार किया एवं अनेक नवीन रागों की रचना की। जैसे, जौनपुरी तोड़ी, सिन्धु-भैरवी, रसूली तोड़ी १२ प्रकार के श्याम, जौनपुरी, सिन्दूरा इत्यादि।

इसी समय अर्थात् १४८५-१५३३ ई० के बीच उत्तरी भारत में भक्ति आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा। भजन कीर्तन के रूप में सङ्गीत का जगह-जगह उपयोग होने लगा। साथ ही साथ बंगाल में चैतन्य महाप्रभु एवं अन्य भगवद्भक्तों द्वारा संकीर्तन का प्रचार हुआ, जिसके द्वारा सङ्गीत को भी यथेष्ट बल प्राप्त हुआ।

रामामात्य कृत स्वरमेलकलानिधि

सन् १५५० ई० के लगभग कर्नाटकी सङ्गीत का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ "स्वरमेल कलानिधि" रामामात्य द्वारा लिखा गया। जिसमे बहुत से रागों का वर्णन दिया गया है। यद्यपि उत्तर भारत की सङ्गीत पद्धति से इस ग्रन्थ का सीधा सम्बन्ध नहीं है तथापि इसका अध्ययन सङ्गीत जिज्ञासुओं के लिये अब भी आवश्यक समझा जाता है। प्रसन्नता की

अकबर का समय

सोलहवीं शताब्दी (१५५६–१६०५ ई०) मे सङ्गीत की विशेष उन्नति हुई, यह बादशाह अकबर का समय था। अकबर सङ्गीत के विशेष प्रेमी थे, इनके दरबार मे ३६ सङ्गीतज्ञ थे। जिनमे प्रसिद्ध सङ्गीतज्ञ तानसेन, बैजूबावरा, रामदास, तानरग खा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

तानसेन और बैजूबावरा

इससे पहिले तानसेन राजा रामचन्द्र के यहा रहते थे, इनके सङ्गीत की प्रशसा सुनकर अकबर ने तानसेन को अपने दरबार मे प्रधान गायक के रूप मे रक्खा। कहा जाता है कि तानसेन और बैजू बावरे की सङ्गीत प्रतियोगिता भी एक बार हुई। तानसेन ने कुछ रागों का आविष्कार भी किया, जिनमें दरबारी कान्हरा, मिया की सारग, मिया की मल्हार इत्यादि रागों के नाम हैं। तानसेन के सङ्गीत से प्रभावित होकर इनके अनेक शिष्य भी होगये थे, बाद मे यह शिष्य वर्ग दो भागों म बँटगया —(१) रबाबिये, जो तानसेन द्वारा आविष्कृत रबाब बजाते थे और (२) बीनकार जो बीणा बजाते थे। बीनकारों के प्रतिनिधि रामपुर के वजीर खा तथा रबाबियों के प्रतिनिधि मोहम्मद अली खा रामपुर रियासत वाले माने जाते थे।

स्वामी हरिदास

अकबर के समय मे ही स्वामी हरिदास वृन्दावन के एक प्रसिद्ध सगीतज्ञ महात्मा हुए हैं। इनका जन्म सम्वत् १५६६ भाद्रपद शुक्ला ८ (सन् १५१२ ई०) मे हुआ, तानसेन इन्हीं के शिष्य थे। स्वामी जी के शिष्यों द्वारा सङ्गीत का प्रचार अनेक नगरों मे भली प्रकार हुआ। कहा जाता है कि स्वामी हरिदास जी अपने समय के सर्व श्रेष्ठ सङ्गीतज्ञ थे। इनके विषय मे एक कथा इस प्रकार बताई जाती है कि एक दिन तानसेन से अकबर पूछ बैठे कि तानसेन! ऐसा भी कोई गायक है जो तुम से भी सुन्दर गाता हो। इस पर तानसेन ने अपने गुरु स्वामी हरिदास का नाम बताया। अकबर ने उनका गायन सुनने की इच्छा प्रकट की, किन्तु तानसेन ने कहा कि दरबार मे तो वे नहीं आयेंगे, तब एक नवीन युक्ति से काम लिया गया। अकबर ने अपना वेष बदल कर तानसेन का तानपूरा लिया और तानसेन के साथ स्वामी जी के यहाँ जा पहुँचे। जब स्वामी जी से गाने का आग्रह किया गया तो उन्होंने अपनी अनिच्छा प्रकट की। तब तानसेन ने एक चाल चली, उसने जानबूझ कर स्वामी जी के सामने एक राग अशुद्ध रूप मे गाया। स्वामी जी से न रहा गया उन्होंने वह राग स्वय गाकर तानसेन को बताया। इस प्रकार अकबर की इच्छा पूर्ण हुई। स्वामी जी के गाने से प्रभावित होकर अकबर ने तानसेन से पूछा कि तानसेन तुम इतना सुन्दर क्यों नहीं गाते ?

तानसेन ने उत्तर दिया, जहापनाह! मुझे जब दरबार की आज्ञा होती है तभी गाना पड़ता है, किन्तु गुरुजी की अन्तर आत्मा प्रेरणा करती है तभी वे गाते हैं इसीलिये उनके सङ्गीत में एक विशेषता है।

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर

अकबर के समय मे ही ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर द्वारा ग्वालियर का प्रसिद्ध सङ्गीत घराना चालू हुआ। ध्रुपद गायकी के आविष्कार का श्रेय भी राजा मानसिंह को ही दिया जाता है। इन्हीं के समय मे प्रसिद्ध गवैया नायक बख्शू हुए हैं, जिनका

सूर
कबीर
तुलसी
मीरा

सोलहवीं शताब्दी सङ्गीत और भक्ति काव्य के समन्वय की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रही; क्योंकि इसी शताब्दी में सूरसागर के रचयिता एवं गीति काव्य के प्रकाण्ड विद्वान महात्मा सूरदास, रामचरितमानस के यशस्वी लेखक गोस्वामी तुलसीदास, हिन्दू-मुसलिम एकता के प्रतीक सन्त कबीरदास तथा सुप्रसिद्ध कवियित्री और भजन गायिका मीराबाई द्वारा भक्ति पूर्ण काव्य के प्रचार से सङ्गीतकला भगवद्प्राप्ति का साधन बनकर उच्चतम शिखर पर पहुंची।

उपरोक्त चारों सन्तों के जीवनकाल विं० सम्वत् के हिसाब से इस प्रकार होते हैं:—

कबीरदास	जन्म	सम्वत्	१४५६	मृत्यु	१५७५	विक्रम
सूरदास	"	"	१५४०	"	१६२०	"
तुलसीदास	"	"	१५५४	"	१६८०	"
मीराबाई	"	"	१५६०	"	१६३०	"

ईसवी सन् की दृष्टि से उक्त चारों भक्तों का समय १४००-१६०० ई० के मध्य का माना जा सकता है। इनके भजन और पद अमर होगये हैं और आज भी भारत के घर-घर में इनका प्रचार है।

पुण्डरीक
विट्ठल
के ग्रन्थ

१५६६ ई० के लगभग, सङ्गीत के एक कर्नाटकी पंडित पुण्डरीक विट्ठल द्वारा लिखे हुए सङ्गीत सम्बन्धी ४ ग्रंथ मिलते हैं (१) सद्रागचन्द्रोदय (२) रागमाला (३) राग मंजरी (४) नर्तन निर्णय। यह पुस्तकें बीकानेर लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं।

—जहांगीर का राज्य (१७ वीं शताब्दी)

सोमनाथ कृत
राग विबोध

१६०५ ई० से १६२७ ईसवी तक जहांगीर का राज्य रहा! इनके दरबार में बिलास खां, छत्तर खां, खुर्रमदाद, मक्खू, परवेजदाद और हमजान प्रसिद्ध गवैये थे। इसी शासनकाल में दक्षिण भारत के राजमुन्द्री स्थान निवासी पंडित सोमनाथ ने सङ्गीत का ग्रंथ "राग विबोध" लिखा। इसका रचना काल ग्रंथकार ने स्वयं शाके १५३१ (अर्थात् १६१० ई०) आश्वनि शुद्ध तृतीया बताया है। इसमें उन्होंने अनेक वीणाओं का वर्णन किया है तथा रागों का जन्यजनक पद्धति से वर्गीकरण किया है।

पं० दामोदर कृत
सङ्गीत दर्पण

जहांगीर के समय में ही हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति पर १६२५ ई० में "सङ्गीत दर्पण" नामक ग्रन्थ का निर्माण पं० दामोदर ने किया। इसमें सङ्गीत रत्नाकर के भी बहुत से श्लोक कुछ परिवर्तन के साथ मिलते हैं। राग-रागनियों के 'ध्यान' शीर्षक से जो देवरूप इसमें उपस्थित किये हैं वे अत्यन्त आकर्षक और मनोरंजक हैं। इसमें स्वराध्याय और रागाध्याय का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। सर विलियम जोन्स की पुस्तक "The musical modes of the Hindus" द्वारा यह भी पता चलता है कि सङ्गीत-

दर्पण का फारसी अनुवाद भी होचुका है। इसके गुजराती तथा हिन्दी अनुवाद भी वर्तमान काल में होगये हैं, इससे इस ग्रन्थ की लोकप्रियता का आभास भली प्रकार मिलता है।*

व्यकटमखी कृत चतुर्दंडिप्रकाशिका

१६६० ई० के आसपास शाङ्गदेव गुरु परम्परा के शिष्य व्यकटमखी पंडित ने दक्षिण पद्धति के आधार पर सङ्गीत का एक ग्रन्थ 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' निर्मित किया। इसमें गणितानुसार सप्तक के १२ स्वरों से ७२ मेल अर्थात् थाट और एक थाट से ४८४ रागों की उत्पत्ति सिद्ध की है। ७२ थाटों में से १६ थाट जो दक्षिणी पद्धति में प्रयोग किये जाते हैं उनका विवरण तथा इन थाटों से उत्पन्न ५५ रागों का विवरण भी इस पुस्तक में दिया है।

[शाहजहा का समय—१७ वीं शताब्दी]

शाहजहा का शासनकाल १६२८–१६५८ ई० माना जाता है। यह बादशाह खुद गाना जानता था। इसके उर्दू भाषा के गाने अत्यन्त मधुर और आकर्षक होते थे। गायकों का इसके यहा इतना आदर था कि अपने दरबारी गवैया दैरंगखा और लालखा को इसने चांदी से तुलवाकर ४५००) से प्रत्येक को पुरस्कृत किया। इनके अतिरिक्त शाहजहा के दरबार में प्रसिद्ध गायक रामदास महापात्र और जगन्नाथ भी थे।

[औरंगजेब का समय—१६५८ ई० से १७०७ ई०]

औरंगजेब आलमगीर सङ्गीत का कट्टर शत्रु था, उसे सङ्गीत से इतनी चिढ थी कि एक दिन हुक्म निकाल दिया कि सब साज दफना दिये जॉय। इसके समय में यद्यपि सङ्गीत को राजाश्रय नहीं रहा, किन्तु पृथक रूप से सङ्गीतज्ञों की साधना को औरंगजेब भी नहीं रोक सका।

अहोवल कृत सगीत पारिजात

सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उस समय के सङ्गीत विद्वान पंडित अहोवल ने सन् १६५० ई० के लगभग हिन्दुस्तानी सङ्गीत का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ "सगीत पारिजात" लिखा। इसी पंडित ने सर्व प्रथम वीणा के बजने वाले तार की लम्बाई पर भिन्न-भिन्न नाप से अपने शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना की। अहोवल का शुद्ध थाट भी लोचन की भांति आजकल प्रचलित काफी थाट के समान था। पारिजात का फारसी अनुवाद १७२४ ई० में श्री दीनानाथ द्वारा हुआ और हिन्दी अनुवाद श्री कलिन्द जी द्वारा १६४१ ई० में होकर सङ्गीत कार्यालय हाथरस से प्रकाशित हुआ।

हृदय कौतुक हृदय प्रकाश

पारिजात के पश्चात हृदयनारायणदेव ने "हृदय कौतुक" और "हृदय प्रकाश" यह दो ग्रन्थ लिखे, जिनमें अहोवल का अनुसरण करते हुए १२ स्वर स्थान वीणा के तार पर समझाये हैं।

भावभट्ट के ३ ग्रन्थ

सङ्गीत विद्वान प० भावभट्ट ने सङ्गीत के ३ ग्रथ भी (१६७४–१७०६ ई० के लगभग) लिखे (१) अनूपविलास (२) अनूपांकुश (३) अनूपसङ्गीत रत्नाकर। भावभट्ट दक्षिण पद्धति के लेखक थे, इनका शुद्ध थाट "मुखारी" है। २० मेल (थाटों) में इन्होंने सब रागों का विभाजन किया है।

* सङ्गीत दर्पण का हिन्दी अनुवाद १६५० ई० में सङ्गीत कार्यालय हाथरस से प्रकाशित हुआ है। गुजराती अनुवाद श्री रतनजी लीलाधर ठक्कर द्वारा इससे पहिले ही प्रकाशित होचुका था।

मुहम्मद शाह रँगीले—(अठारहवीं शताब्दी]

सदारंग
अदारंग

१८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (१७१६–१७४० ई०) में मुगल वंश के अन्तिम बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले हुए। सङ्गीत के यह अत्यन्त प्रेमी थे, बहुत से गीतों में इनका नाम प्रायः आजकल भी पाया जाता है। रँगीले के दरबार में दो अत्यन्त प्रसिद्ध गायक सदारंग और अदारंग थे, जिन्होंने हजारों ख्यालों की रचना करके अनेक शिष्य तैयार किये। वास्तव में ख्याल गायकी के प्रचार का श्रेय सदारंग और अदारंग को ही है, इन्हीं के ख्याल आज सर्वत्र प्रचार में आरहे हैं।* इसी समय में शोरी मियां ने "टप्पा" ईजाद करके प्रचलित किया।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सङ्गीत साधना साधारण रूप से चलती रही, इधर मुसलिम शासकों की शक्ति क्षीण होने लगी और अंग्रेजों का पंजा धीरे-धीरे भारत पर जमने लगा। इस उथल-पुथल में सङ्गीतकला बड़े-बड़े राजाश्रयों से पृथक होकर स्वतन्त्र रूप से एवं कुछ छोटी-छोटी रियासतों में पलने लगी।

श्रीनिवास
कृत
राग तत्वबोध

इसी समय में श्रीनिवास पंडित ने "राग तत्वबोध" नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। जिसमें इन्होंने भी पारिजात कार की भांति १२ स्वरस्थान बनाकर अपना शुद्ध थाट आधुनिक काफी थाट के समान निश्चित किया। मध्यकालीन ग्रन्थकारों में श्री निवास पंडित ही अन्तिम ग्रन्थकार हैं।

सङ्गीत सारामृत
और
रागलक्षणम्

इसीकाल में (१७६३–१७८६ ई०) तंजौर के मराठा महाराजा तुलाजीराव भोंसले द्वारा सङ्गीत सारामृत नामक पुस्तक लिखी गई। सङ्गीत सारामृत में दाक्षिणी सङ्गीत पद्धति का वर्णन किया है और ७२ थाट स्वीकार करते हुए २१ मेल (थाटों) द्वारा ११० जन्य रागों का वर्णन किया है।

राग लक्षणम् ग्रन्थ में रागोत्पादक ७२ थाट मानकर उनके द्वारा अनेक रागों का विवरण स्वरों सहित दिया है। यह ग्रन्थ भी दक्षिण की प्रचलित सङ्गीत पद्धति का आधार ग्रन्थ माना गया है। इस पर मूल लेखक का नाम तो नहीं दिया गया किन्तु इस ग्रन्थ की प्रस्तावना से पता चलता है कि तंजोर के ही एक गृहस्थ के यहाँ से यह प्राप्त हुआ था।

(४) आधुनिक काल (अँगरेजी राज्य)

अंग्रेज, भारतीय सङ्गीत को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे, साथ ही साथ अँग्रेजी सभ्यता का प्रभाव रियासतों पर भी पड़ने लगा। जिसके फल स्वरूप राजा लोग भी सङ्गीत के प्रति उदासीनता का भाव प्रकट करने लगे और इस प्रकार रियासतों से सङ्गीतज्ञों को

* कुछ लेखकों के मतानुसार कलावंती ख्याल गायकी का प्रचार जौनपुर के सुलतान हुसेन शर्की द्वारा माना जाता है।

जो आश्रय प्राप्त होरहा था उसमें बाधा पड़ने लगी। फिर भी कुछ खास-खास रियासतों में विभिन्न घरानों के सङ्गीतज्ञ सङ्गीत साधना में तल्लीन रहे। साथ ही उन दिनों सङ्गीत का प्रवेश भले घरों में निषिद्ध माना जाने लगा, इसका भी एक विशेष कारण था कि इस समय में शासन वर्ग की उदासीनता के कारण सङ्गीतकला निकृष्ट श्रेणी के व्यवसायी स्त्री-पुरुषों में पहुँच चुकी थी। अत नवीन शिक्षा प्राप्त सभ्य समाज का इसके प्रति उपेक्षा रखना स्वाभाविक ही था। किन्तु सङ्गीत के भाग्य ने फिर पलटा खाया और कुछ प्रसिद्ध अँग्रेजों (सर विलियम्स जोन, कैप्टेन डे, कैप्टेन विलर्ड आदि) ने भारतीय सङ्गीत का अध्ययन करके इस पर कुछ पुस्तकें लिखीं, जिनका प्रभाव शिक्षितवर्ग पर अच्छा पडा और सङ्गीत के प्रति अनादर का भाव धीरे-धीरे घटने लगा।

मुहम्मद रज्जा कृत नगमाते आसफी

आधुनिक काल में, सर्व प्रथम बिलावल को शुद्ध थाट मानकर १८१३ ई० में पटना के एक रईस मुहम्मद रज्जा ने 'नगमाते आसफी' नामक पुस्तक लिखी। इन्होंने पूर्व प्रचलित राग-रागनी पद्धति का खण्डन करके अपना एक नवीन मत चलाया, जिसमें ६ राग और ३६ रागनी मानकर उनका नये ढग से विभाजन किया।

सवाई प्रतापसिंह लिखित सगीत सार

१७७९-१८०४ ई० में जयपुर के महाराजा सवाई प्रतापसिंह ने एक विशाल सगीत कान्फ्रेंस का आयोजन करके बडे-बडे सगीत कलाविदों को इकट्ठा किया और उनसे विचार विनिमय करने के पश्चात् "सगीत सार" नामक एक पुस्तक लिखी, जिसमें बिलावल थाट को ही शुद्ध थाट स्वीकार किया गया है।

कृष्णानन्द व्यास कृत सगीत राग कल्पद्रुम

इसके पश्चात् १८४२ ई० में श्री कृष्णानन्द व्यास ने "सगीत राग कल्पद्रुम" नामक एक बडी पुस्तक लिखी, जिसमें उस समय तक के हजारों ध्रुपद, ख्याल तथा अन्य गीत (बिना स्वरलिपि के) दिये हैं।

उत्तरीय भारत में इस समय राग वर्गीकरण की नई पद्धति बनाने की योजना चल रही थी और उधर तजौर दक्षिणी सगीत का विशाल केन्द्र बन गया था, जहा अनेक प्रसिद्ध सङ्गीत विद्वान त्यागराज, श्यामशास्त्री मुत्तुस्वामी दीक्षित आदि सङ्गीत कला का प्रचार कर रहे थे।

इस परिवर्तन काल में भी बगाल के राजा सर सुरेन्द्र मोहन टैगोर ने तथा अन्य कुछ विद्वानों ने राग-रागनी पद्धति का ही समर्थन करते हुये कुछ पुस्तकें लिखीं, जिनमें "युनिवर्सल हिस्ट्री आफ म्यूजिक" का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

सङ्गीत प्रचार का आधुनिक काल (१९००-१९५० ई०)

इस आधुनिक काल में सङ्गीत के उद्धार और प्रचार का श्रेय भारत की २ महान विभूतियों को है, जिनके शुभ नाम हैं श्री विष्णुनारायण भातखण्डे और श्री विष्णु दिगम्बर पलुस्कर। दोनों ही महानुभावों ने देश में जगह-जगह पर्यटन करके सङ्गीत कला का उद्धार किया। जगह-जगह अनेक सङ्गीत विद्यालयों की स्थापना की। सङ्गीत सम्मेलनों द्वारा सङ्गीत पर विचार विनिमय हुए जिसके फल स्वरूप [illegible]

में सङ्गीत की रुचि विशेष रूप से उत्पन्न हुई। इस काल में शास्त्रीय साधना के साथ-साथ संगीत में नवीन प्रयोग द्वारा एक विशेषता पैदा करने का श्रेय विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को है, इन्होंने प्राचीन राग रागनियों के आकर्षक स्वर समुदाय लेकर तथा अन्य कलात्मक प्रयोगों द्वारा 'रवीन्द्र सङ्गीत' के रूप में एक नई चीज़ सङ्गीत प्रेमियों को दी।

श्री भातखण्डे और उनके ग्रन्थ

श्री विष्णु नारायण भातखण्डे का जन्म बम्बई प्रांत के बालकेश्वर नामक स्थान में १० अगस्त १८६० ई० को हुआ। इन्होंने १८८३ में बी० ए० और १८९० में एल-एल० बी० की परीक्षा पास की। इनकी लगन आरम्भ से ही सङ्गीत की ओर थी। १९०४ में आपकी ऐतिहासिक सङ्गीत यात्रा आरम्भ हुई, जिसमें आपने भारत के सैकड़ों स्थानों का भ्रमण करके सङ्गीत सम्बन्धी साहित्य की खोज की। बड़े-बड़े गायकों का सङ्गीत सुना और उनकी स्वरलिपियां तैयार करके "क्रमिक पुस्तक मालिका" में प्रकाशित कराईं, जिसके ६ भाग हैं। थ्योरी (शास्त्रीय) ज्ञान के लिये आपने हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति के ४ भाग मराठी भाषा में लिखे*। संस्कृत भाषा में भी आपने लक्ष्यसङ्गीत और "अभिनव राग मंजरी" नामक पुस्तकें लिखकर प्राचीन सङ्गीत की विशेषताओं एवं उसमें फैली हुई भ्रान्तियों पर प्रकाश डाला। श्री भातखण्डे जी ने अपना शुद्ध थाट बिलावल मानकर थाट पद्धति स्वीकार करते हुए १० थाटों में बहुत से रागों का वर्गीकरण किया।

१९१६ ई० में आपने बड़ौदा में एक विशाल सङ्गीत सम्मेलन किया, इसका उद्‌घाटन महाराजा बड़ौदा द्वारा हुआ। इसमें सङ्गीत के विद्वानों द्वारा सङ्गीत के अनेक तथ्यों पर गम्भीरता पूर्वक विचार हुए और एक "आल इण्डिया म्यूज़िक एकेडमी" की स्थापना का प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ। इस म्यूज़िक कान्फ्रेन्स में भातखण्डे जी के सङ्गीत सम्बन्धी जो महत्वपूर्ण भाषण हुये वे भी अँग्रेजी में "A Short Historical Survay of the Music of Upper India" नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। (इसका भी हिन्दी अनुवाद सङ्गीत कार्यालय से प्रकाशित हो चुका है)

बाद में आपके प्रयत्न से अन्य कई स्थानों में भी सङ्गीत सम्मेलन हुए तथा सङ्गीत विद्यालयों की स्थापना हुई जिनमें लखनऊ का मैरिस म्यूज़िक कालेज (अब "भातखण्डे कालेज आफ़ म्यूज़िक"), गवालियर का माधव सङ्गीत महा विद्यालय तथा बड़ौदा का म्यूज़िक कालेज विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार इन्होंने अपने अथक परिश्रम द्वारा सङ्गीत की महान सेवा की और संगीत जगत में एक नवीन युग स्थापित करके अन्त में १९ सितम्बर १९३६ को आप परलोक वासी हुए।

राजा नवाबअली लिखित "मारिफुन्नग़मात"

सन् १९११ के लगभग लाहौर के रहने वाले एक सङ्गीत विद्वान राजा नवाबअली खाँ भातखण्डे जी के संपर्क में आये। राजा साहेब ने अपने एक प्रसिद्ध गायक नजीर खां को आचार्य भातखण्डे जी के पास सङ्गीत के शास्त्रीय ज्ञान तथा लक्षणगीतों को सीखने के लिये भेजा और फिर उर्दू में सङ्गीत की एक सुन्दर पुस्तक "मारिफुन्नग़मात" लिखी। इस पुस्तक का यथेष्ट आदर हुआ और वह बी० ए० के म्यूज़िक कोर्स में शामिल

* इनका हिन्दी अनुवाद भातखण्डे सङ्गीत शास्त्र के नाम से सङ्गीत कार्यालय हाथरस से प्रकाशित हो गया है।

की गई बाद में (सन् १६५० में) इसका हिन्दी अनुवाद सङ्गीत कार्यालय हाथरस से प्रकाशित हुआ। जिससे हिन्दी के सङ्गीत विद्यार्थियों को बहुत लाभ हुआ।



श्री विष्णु दिगम्बर जी पलुस्कर का जन्म १८७२ ईसवी में श्रावणी पूर्णिमा के दिन कुरुन्दवाड (बेलगाव) में हुआ। आपको सङ्गीत शिक्षा गायनाचार्य प० बालकृष्ण बुवा से प्राप्त हुई। १८९६ ई० में आपने सङ्गीत प्रचार के हेतु भ्रमण आरम्भ किया। पलुस्कर जी ने अपने सुमधुर और आकर्षक सङ्गीत के द्वारा सङ्गीत प्रेमी जनता को आत्म विभोर कर दिया। पंडित जी के व्यक्तित्व के प्रभाव से सभ्य समाज में सङ्गीत की लालसा जाग उठी, जिसके फलस्वरूप सङ्गीत के कई विद्यालय स्थापित हुए, जिनमें लाहौर का गान्धर्व महाविद्यालय सर्व प्रथम ५ मई १६०१ ई० को स्थापित हुआ। बाद में बम्बई का गान्धर्व महाविद्यालय स्थापित हुआ और यही मुख्य केन्द्र बन गया। पंडित जी का कार्य आगे बढाने के लिये इनके शिष्यों के सामूहिक प्रयत्न से "गान्धर्व महाविद्यालय मण्डल" की स्थापना हुई, जिसके बहुत से केन्द्र विभिन्न नगरों में स्थापित हो चुके हैं।

सन् १६२० ई० से पलुस्कर जी कुछ विरक्त से रहने लगे थे, अत १६२२ में नासिक में रामनाम आधार आश्रम आपने खोला। तबसे आपका सङ्गीत भी "रामनाम मय" हो गया। इस प्रकार सङ्गीत को पवित्र वातावरण में स्थापित करके अन्त में यह सङ्गीत का पुजारी २१ अगस्त १६३१ को मिरज में प्रभु धाम को प्रस्थान कर गया।

पण्डित जी द्वारा सङ्गीत की कई पुस्तकें भी प्रकाशित हुई थीं, जिनमें से कुछ के नाम ये हैं—सङ्गीत बालबोध, सङ्गीत बाल प्रकाश, स्वल्पालाप गायन, सङ्गीत तत्वदर्शक, रागप्रवेश, भजनामृत लहरी इत्यादि।

आपकी स्वरलिपि भातखण्डे पद्धति से भिन्न है। प्रोफेसर डी० वी० पलुस्कर, जो वर्तमान गायकों में एक अच्छे गायक माने जाते हैं, आपके ही सुपुत्र हैं।

स्वतन्त्र भारत में सङ्गीत

भारत स्वतंत्र होकर जबसे अपनी राष्ट्रीय सरकार स्थापित हुई है, तबसे सङ्गीत का प्रचार द्रुतिगति से देश में बढ रहा है जगह–जगह स्कूल और कालेजों में सङ्गीत पाठ्यक्रम में सम्मिलित हो गया है, एव कुछ विश्व विद्यालयों की बी० ए० परीक्षाओं में सङ्गीत भी एक विषय के रूप में रख दिया गया है। इधर रेडियो द्वारा भी सगीत का प्रचार दिनो दिन बढ रहा है। कुछ सिनेमा फिल्मों में भी हमें अच्छा सगीत मिलसका है। सगीत की अनेक शिक्षण सस्थायें भी विभिन्न नगरों में सुचारु रूप से चल रही हैं। देश का शिक्षित वर्ग सगीत की ओर विशेष रूप से आकृष्ट होकर अब सगीत का महत्व समझने लगा है। कुलीन घराने के युवक–युवती और कन्यायें सगीत शिक्षा ग्रहण कर रही हैं एव जन-साधारण में भी सगीत के प्रति आशातीत अभिरुचि उत्पन्न हो रही है। इधर सगीत सम्बन्धी पुस्तकें भी अच्छी–अच्छी प्रकाशित होने लगी हैं। सगीत कला के विकास के लिये यह सब शुभ लक्षण हैं, आशा है निकट भविष्य में ही भारतीय सगीत उच्चतम शिखर पर आसीन होकर अपनी विशेषताओं से ससार का मार्ग दर्शन करेगा।

सङ्गीत

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते। (सङ्गीत रत्नाकर)

गीत वाद्य और नृत्य यह तीनों मिलकर 'संगीत' कहलाते हैं वास्तव में यह तीनों कलायें (गाना बजाना और नाचना) एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं, किन्तु स्वतन्त्र होते हुए भी गायन के अधीन वादन तथा वादन के अधीन नर्तन है। प्राचीनकाल में इन तीनों कलाओं के प्रयोग एक साथ ही अधिकतर हुआ करते थे।

सङ्गीत शब्द गीत शब्द में 'सम्' उपसर्ग लगाकर बना है। सम यानी सहित और गीत यानी गायन। गायन के सहित अर्थात् अंगभूत क्रियाओं (नृत्य) एवं वादन के साथ किया हुआ कार्य संगीत कहलाता है।

नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवृत्ति च।
अतो गीत प्रधानत्वादत्राऽऽदाव भिधीयते ॥

"सङ्गीत रत्नाकर"

अर्थात्—गायन के अधीन वादन और वादन के अधीन नर्तन है, अतः इन तीनों कलाओं में गायन को ही प्रधानता दी गई है।

स्वर

सङ्गीत में काम आने वाली वह आवाज़ जो मधुर हो, कानों को अच्छी लगे, जिसको सुनकर चित्त प्रसन्न हो, उसे स्वर कहते हैं।

आगे जो २२ श्रुतियों का विवरण बताया गया है, उन्हीं में से ७ शुद्ध स्वर चुने गये हैं जिनके पूरे नाम यह हैं:—(१) षड़ज (२) ऋषभ (३) गान्धार (४) मध्यम (५) पंचम (६) धैवत (७) निषाद। इन्हें ही संक्षेप में सा रे ग म प ध नि कहते हैं।

तीव्र और कोमल स्वर

ऊपर बताये हुये ७ शुद्ध स्वर कहे जाते हैं, इनमें स और प यह तो "अचल" स्वर माने गये हैं क्योंकि यह अपनी जगह पर कायम रहते हैं, बाकी पांच स्वरों के दो-दो रूप कर दिये हैं क्योंकि यह अपनी जगह से हटते रहते हैं। अतः इन्हें विकारी स्वर भी कहते हैं। इन्हें कोमल, तीव्र इन नामों से पुकारते हैं।

किसी स्वर की नियत आवाज को नीचे उतारने पर वह कोमल स्वर कहलाता है और कोई स्वर अपनी नियत आवाज से ऊँचा जाने पर तीव्र कहलाता है। रे, ग, ध, नि यह चारों स्वर जब अपनी जगह से नीचे हटते हैं तो कोमल बन जाते हैं और जब इन्हें फिर अपने नियत स्थान पर ऊपर पहुंचा दिया जायगा तो इन्हें तीव्र या शुद्ध कहेंगे।

किंतु 'म' यानी मध्यम स्वर जब अपने नियत स्थान मे हटता है तो वह नीचे नहीं जाता, क्योंकि उसका नियत स्थान पहिले ही नीचा है, अत म स्वर जब हटेगा यानी विकृत होगा तो ऊँचा जाकर म तीव्र कहलायेगा और जब फिर अपने नियत स्थान पर आजायगा तब कोमल या शुद्ध कहलायेगा। गवैयों की साधारण बोल चाल मे कोमल स्वरों को "उतरे स्वर" और तीव्र स्वरो को "चढे स्वर" कहते हैं। अंग्रेजी भाषा में कोमल स्वरो को Flat notes एव तीव्र स्वरो को Sharp Notes कहते हैं।

शुद्ध और विकृत स्वर

ऊपर हम बता चुके हैं कि स और प यह २ स्वर अचल हैं। यह कभी विकृत नहीं होते अर्थात् अपने स्थान मे नहीं हटते। बाकी पाच स्वर अपने स्थान से हटते रहते हैं। जब कोई स्वर अपने स्थान से हटता है, वह विकृत स्वर कहलाता है। रे ग ध नि अपनी जगह से हटकर नीचे आये तो इन्हें विकृत स्वर कहा जायगा या कोमल कहा जायगा और म अपने स्थान से हटकर ऊँचा होगा तब म विकृत या तीव्र कहा जायगा।

इस प्रकार २ अचल ५ शुद्ध और ५ विकृत सब मिलकर १२ स्वर हो गये।

इन्हे पहिचानने के लिये भातखण्डे पद्धति में इस प्रकार चिन्ह होते हैं—

स प अचल या शुद्ध स्वर। इन पर कोई चिन्ह नहीं होता।

रे ग म ध नि शुद्ध स्वर, इन पर भी कोई चिन्ह नहीं होता।

रे॒ ग॒ मे॑ ध॒ नि॒ विकृत स्वर (इनमे रे ग ध नि कोमल हैं और मध्यम तीव्र है।)

विष्णु दिगम्बर पद्धति मे निम्नलिखित चिन्ह होते हैं—

स प अचल व शुद्ध स्वर।

रे ग म ध नि शुद्ध स्वर

रि॒ ग॒ म॒ ध॒ नि॒ विकृत स्वर (इनमे रे ग ध नि कोमल हैं और मध्यम तीव्र है)

इनके अतिरिक्त उत्तरी सङ्गीत पद्धति मे कुछ अन्य चिन्ह प्रणालिया भी चल रही है, किंतु मुख्य रूप से उपरोक्त २ चिन्ह प्रणाली ही प्रचलित हैं। कोमल तीव्र के अतिरिक्त सप्तक तथा मात्रा आदि के अन्य चिन्ह भी लगाये जाते हैं, जिनका विवरण इस पुस्तक मे आगे चलकर नोटेशन (स्वरलिपि) पद्धति के लेख मे विस्तृत रूप से दिया गया है।

दक्षिणी (कर्णाटकी) और उत्तरी सङ्गीत के भेद

भारतवर्ष मे दो सङ्गीत प्रणालिया प्रसिद्ध हैं—

(१) कर्णाटकी सङ्गीत प्रणाली (२) हिन्दुस्थानी सङ्गीत प्रणाली। कर्णाटकी सङ्गीत पद्धति को ही दक्षिणी सङ्गीत पद्धति भी कहते हैं। यह मद्रास प्रात, मैसूर तथा [illegible] देश में प्रचलित है।

हिन्दुस्थानी सङ्गीत प्रणाली को ही उत्तरी सङ्गीत पद्धति भी कहते हैं यह मद्रास प्रांत, मैसूर तथा आंध्र देश को छोड़ कर शेष समस्त भारत में प्रचलित है।

वास्तव में इन दोनों सङ्गीत पद्धतियों के मूल सिद्धांतों में विशेष अन्तर नहीं है। इन दोनों पद्धतियों में जो समानता और भिन्नता है वह देखिये:—

समानता

१—दोनों पद्धतियों में ही शुद्ध व विकृत मिलकर कुल १२ स्वर स्थान हैं।

२—दोनों पद्धतियों में ही उपरोक्त १२ स्वरों से थाट उत्पत्ति होकर राग गाये बजाये जाते हैं।

३—दोनों पद्धतियों में आलाप गायन स्वीकार किया गया है।

४—दोनों में ही आलाप एवं तानों के साथ चीज़ें गाई जाती हैं।

५—जन्यजनक (थाट राग) का सिद्धान्त दोनों में ही स्वीकार किया गया है।

भेद

१—उत्तर सङ्गीत पद्धति में और दक्षिण सङ्गीत पद्धति में यद्यपि स्वर स्थान बारह ही माने गये हैं, किन्तु दोनों के स्वर तथा नामों में अन्तर है।

२—उत्तर सङ्गीत पद्धति में केवल १० थाटों से रागों की उत्पत्ति हुई है, किन्तु दक्षिण पद्धति में ७२ जनक थाटों का प्रमाण मिलता है।

३—दक्षिण पद्धति की चीज़ें, कानड़ी, तेलगू, तामिल इत्यादि भाषाओं में रची हुई होती हैं और उत्तरी सङ्गीत पद्धति के गीत व्रजभाषा, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, मारवाड़ी इत्यादि भाषाओं में होते हैं।

४—दोनों पद्धतियों के ताल भिन्न होते हैं।

५—दोनों सङ्गीत पद्धतियों में स्वर उच्चारण एवं आवाज़ निकालने की शैलियां भिन्न-भिन्न हैं।

६—इन पद्धतियों में राग अपने-अपने स्वतन्त्र हैं। अर्थात् दक्षिणी राग उत्तरी रागों से समानता नहीं रखते।

७—दक्षिण पद्धति की शुद्ध सप्तक को 'कनकांगी' अथवा मुखारी मेल कहते हैं, किन्तु उत्तरी सङ्गीत के शुद्ध स्वर सप्तक को 'विलावल थाट' कहा गया है।

उत्तरी और दक्षिणी स्वरों की तुलना

कर्नाटक (दक्षिणी) तथा हिन्दुस्तानी (उत्तरी) दोनों ही पद्धतियों में एक सप्तक में १२ स्वर माने गये हैं, किन्तु उनके नामों में कहीं-कहीं परिवर्तन हो गया है, जैसे

कर्नाटकीय शुद्ध रे, ध हमारी हिन्दुस्थानी पद्धति के कोमल रे, ध के समान हैं तथा हमारे शुद्ध रे – ध उनके शुद्ध ग – नि हैं।

हिन्दुस्थानी स्वर		कर्नाटकी (दक्षिणी) स्वर
१	सा	सा
२	कोमल रे	शुद्ध रे
३	शुद्ध रे	पच श्रुति रे या शुद्ध ग
४	कोमल ग	पट श्रुति रे, साधारण ग
५	शुद्ध ग	अन्तर ग
६	शुद्ध म	शुद्ध म
७	तीव्र म	प्रति म
८	प	प
९	कोमल ध	शुद्ध ध
१०	शुद्ध ध	पच श्रुति ध, या नि शुद्ध
११	कोमल नि	पट श्रुति ध, या कैशिक नि
१२	शुद्ध नि	काकली नि

क्योंकि हमारे कोमल रे ध उनके शुद्ध रे, ध हैं और हमारे शुद्ध रे ध उनके शुद्ध ग – नि हैं, अत उनके (कर्नाटकी) स्वरों के अनुसार शुद्ध स्वर सप्तक इस प्रकार होगा —

सा रे ग म प ध नि — कर्नाटकी

सा रे रे म प ध ध — हिन्दुस्तानी

उपरोक्त कर्नाटकी शुद्ध सप्तक को दक्षिणी विद्वान 'मुखारी मेल' कहते हैं। कर्नाटकी स्वरों में किसी स्वर को कोमल अवस्था में नहीं माना गया है, अर्थात् उनके शुद्ध स्वर ही सबसे नीची अवस्था में हैं। जब उनका रूप बदलता है अर्थात् विकृत होते हैं तो वे और नीचे न हटकर ऊपर को जाते हैं, जैसे शुद्ध रे के आगे उनका चतु श्रुति रे आता है, इसी को वे शुद्ध ग कहते हैं और शुद्ध ग के आगे साधारण ग फिर अन्तर ग नाम उन्होंने दिये हैं।



नाद, श्रुति और स्वर विवेचन

नाद

नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः ।
जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते ॥

—सङ्गीतरत्नाकर

अर्थात् 'नकार' यानी प्राण (वायु) वाचक तथा 'दकार' अग्नि वाचक है, अतः जो वायु और अग्नि के सम्बन्ध (योग) से उत्पन्न होता है, उसी को 'नाद' कहते हैं।

आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते ।
सोयं प्रकाशते पिंडे तस्मात् पिंडोऽभिधीयते ॥

अर्थात् नाद के २ प्रकार माने जाते हैं, आहत तथा अनाहत। जो देह (पिण्ड) से प्रकट हुआ है, उसे पिण्ड नाम प्राप्त होता है।

अनाहत नाद—जो नाद केवल ज्ञान से जाना जाता है, जिसके पैदा होने का कोई खास कारण न हो, यानी जो बिना संघर्ष या स्पर्श के पैदा हो जाय, उसे अनाहत नाद कहते हैं। जैसे दोनों कान जोर से बन्द करने पर भी अनुभव करके देखा जाय तो "घन्न-घन्न" या "साँय-साँय" की आवाज़ सुनाई देती है। इसी अनाहत नाद की उपासना हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि करते थे। यह नाद मुक्तिदायक तो है, किन्तु रक्तिदायक नहीं। इसलिये यह सङ्गीतोपयोगी भी नहीं है, अर्थात् सङ्गीत से अनाहत नाद का कोई सम्बन्ध नहीं है।

आहत नाद—जो कानों से सुनाई देता है और जो दो वस्तुओं के संघर्ष या रगड़ से पैदा होता है, उसे आहत नाद कहते हैं। इस नाद का सङ्गीत से विशेष सम्बन्ध है। यद्यपि अनाहत नाद को मुक्तिदाता माना गया है, किन्तु आहत नाद को भी भवसागर से पार लगाने वाला बताकर सङ्गीत दर्पण में दामोदर पण्डित ने लिखा है:—

स नादस्त्वाहतो लोके रंजको भवभंजकः ।
श्रुत्यादि द्वारतस्तस्मात्तदुत्पत्तिर्निरूप्यते ॥

भावार्थ—आहत नाद व्यवहार में श्रुति इत्यादि (स्वर ग्राम मूर्च्छना) से रंजक बनकर भव-भंजक भी बन जाता है इस कारण उसकी उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ।

उपरोक्त उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि आहतनाद ही सङ्गीत के लिये उपयोगी है। इसी नाद के द्वारा सूर-मीरा इत्यादि ने प्रभु सान्निध्य प्राप्त किया।

नाद के सम्बन्ध में तीन बातें ध्यान में रहनी चाहियेः—

(१) नाद का छोटा-बड़ापन (Magnitude)
(२) नाद की जाति अथवा गुण (Timbre)
(३) नाद का ऊंचा नीचापन (Pitch)

(१) नाद का छोटा-बड़ापन—जो आवाज नजदीक हो और धीरे-धीरे सुनाई पड़े, उसे छोटा नाद कहेंगे, और जो आवाज दूर से आरही हो, तथा जोर-जोर से सुनाई पड़े, उसे बड़ा नाद कहेंगे।

(२) नाद की जाति—नाद की जाति से यह मालुम होता है कि जो आवाज आ रही है, वह किसी मनुष्य की है, या किसी बाजे से निकल रही है। उदाहरणार्थ एक नाद हारमोनियम, सारंगी, सितार, बेला इत्यादि से प्रकट हो रहा है, और एक नाद किसी गवैये के गले से प्रकट हो रहा है, तो हम नाद प्रकट होने की उस क्रिया को देखे बिना ही यह बता देंगे कि यह नाद किसी साज का है या किसी मनुष्य का। इसी क्रिया को पहिचानना 'नाद की जाति' कहलाती है।

(३) नाद का ऊँचा-नीचापन—नाद की उच्च-नीचता से यह मालुम होता है कि जो आवाज आरही है, वह ऊँची है या नीची। मान लीजिये हमने सा स्वर सुना, इसके बाद रे स्वर सुनाई दिया और फिर ग सुनाई दिया। इस प्रकार नियमित ऊँचे स्वर सुनने पर हम उसे उच्च-नाद कहेंगे, और सा स्वर के नीचे नि, ध, प इत्यादि स्वर सुनाई दिये, तब उसे नीचा नाद कहेंगे। इसी बात को और अच्छी तरह इस प्रकार समझें, कि कोई भी नाद हवा में थरथराहट या कम्पन होने पर पैदा होता है। यह कम्पन एक नियमित वेग यानी रफ्तार से तथा शीघ्रतापूर्वक होता है, तभी हमारे कानों को वह सुनाई देता है। प्रत्येक नाद उत्पन्न होने के लिये कम्पन का वेग प्रति सैकिण्ड निश्चित होता है, कम्पन का वेग जितना अधिक होगा, उतना ही नाद ऊंचा होगा, और कम्पन संख्या कम होने पर उतना ही नाद नीचा हो जायगा। याद रहे कि यह कम्पन संख्या नियमित ही होगी, अनियमित कम्पन से शोरगुल ही पैदा होगा, नाद नहीं। जैसे—किसी बाजार की भीड़ में या मेले में कोई जोर से चिल्ला रहा है, कोई धीरे बोल रहा है, किसी ओर बच्चे रो रहे हैं, कोई हँस रहा है, तो इन क्रियाओं के द्वारा वायु में जो कम्पन होंगे, वे अनियमित ही तो होंगे, और यह अनियमित कम्पन शोरगुल ही कहलायेगा। इसके विरुद्ध एक व्यक्ति कुछ गा रहा है, या बाजा बजा रहा है, तो उसकी आवाज के कम्पन हवा में नियमित रूप से होंगे, और वे हमें अच्छे भी मालुम होंगे, बस उसे ही सङ्गीतोपयोगी 'नाद' कहेंगे।

श्रुति—

नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमप्युत ।
लक्ष्ये प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीतश्रुतिलक्षणम् ॥

अर्थात्—वह आवाज़ जो गीत में प्रयोग की जा सके और एक दूसरे से अलग एवं स्पष्ट पहिचानी जा सके, उसे "श्रुति" कहते हैं।

तस्य द्वाविंशतिर्भेदाः श्रवणात् श्रुतयो मताः ।
हृदयभ्यंतरसंलग्ना नाड्यो द्वाविंशतिर्मताः ॥

—स्वरमेलकलानिधि

अर्थात् हृदय स्थान में २२ नाड़ियां लगी हुई हैं, उनके सभी नाद स्पष्ट सुने जा सकते हैं। अतः उन्हें ही श्रुति कहते हैं। नाद के बाईस भेद माने गये हैं।

हमारे संगीत शास्त्रकार प्राचीन समय से ही २२ नाद मानते चले आ रहे हैं। वह नाद क्रमशः एक से दूसरा ऊँचा, दूसरे से तीसरा ऊँचा, तीसरे से चौथा ऊँचा, इस प्रकार चढ़ते चले गये हैं। इन्हीं २२ नादों को 'श्रुति' कहते हैं। क्योंकि २२ श्रुतियों पर गायन में सर्व साधारण को कठिनाई होती, अतः इन २२ में से १२ स्वर चुनकर गायन कार्य होने लगा। इन १२ स्वरों में ७ शुद्ध स्वर और ५ विकृत स्वर होते हैं। २२ श्रुतियों में यह ७ शुद्ध स्वर क्रमशः १, ५, ८, १०, १४, १८, २१ वीं श्रुतियों पर माने गये हैं। जिनका नाम षड्ज, रिषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद है; इन्हीं के संक्षिप्त नाम सा, रे, ग, म, प, ध, नि हैं।

स्वरों में श्रुतियों को बांटने का नियम—

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः ।
द्वे द्वे निषादगांधारौ त्रिस्त्रीरिषभधैवतो ॥

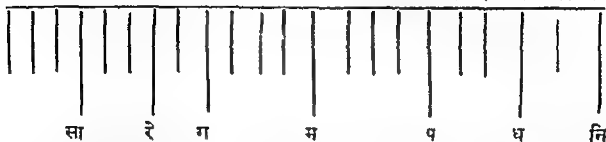
—संगीत रत्नाकर

अर्थात्—षड्ज, मध्यम और पंचम इन तीनों स्वरों में चार-चार श्रुतियां हैं। निषाद गान्धार इन दोनों स्वरों मे दो-दो श्रुतियां तथा रिषभ और धैवत में तीन-तीन श्रुतियां हैं, इस प्रकार २२ श्रुतियां ७ स्वरों में बांट दी गई। इसे अधिक स्पष्ट इस प्रकार समझ लीजिये कि हारमोनियम बाजे की एक सप्तक में जो १२ स्वर (परदे) होते हैं, वे इन २२ श्रुतियों में से ही चुनकर बनाये गये हैं। अतः हारमोनियम में तो श्रुतियां सुनाई नहीं दे सकतीं, किन्तु किसी भी तार-वाद्य वीणा, सारंगी, दिलरुबा, सितार इत्यादि पर श्रुतियां सुनी जा सकती हैं। कुशल गायक गले से भी इन्हें प्रकट कर सकते हैं। अब हम उदाहरणार्थ १ तार पर २२ श्रुतियां दिखाते हैं;—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२

छोटी-छोटी लकीरों पर श्रुतियां है, और बड़ी-बड़ी लकीरों वाले शुद्ध स्वर हैं।

यहां पर एक बात बता देना आवश्यक प्रतीत होता है कि यद्यपि पुराने और नये ग्रन्थकार २२ श्रुतियों को १२ स्वरों पर बांटने का उपरोक्त नियम स्वीकार करते हैं, किन्तु हमारे कुछ प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकार अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर अंतिम श्रुति पर कायम करके इस प्रकार मानते हैं।



अर्थात् चौथी श्रुति पर षडज, सातवीं पर रिषभ, नवीं श्रुति पर गान्धार, तेरहवीं पर मध्यम, सत्रहवीं पर पंचम, बीसवीं पर धैवत और बाईसवीं श्रुति पर निषाद।

इसके विपरीत आधुनिक विद्वानों एवं ग्रन्थकारों ने, जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं। पहिली श्रुति पर षडज, पांचवीं पर रिषभ, आठवीं पर गान्धार, दसवीं पर मध्यम, चौदहवीं पर पंचम, अठारहवीं पर धैवत और इक्कीसवीं श्रुति पर निषाद कायम किया है। आधुनिक प्रचलित सङ्गीत पद्धति में यही नियम मान्य है।

श्रुति और स्वर तुलना

श्रुतयः स्युः स्वराभिन्ना श्रावणत्वेन हेतुना।
अहिकुण्डलवत्तत्र भेदोक्तिः शास्त्रसम्मता॥
सर्वाश्च श्रुतयस्तत्तद्रागेषु स्वरतां गताः।
रागाः हेतुत्व एतासां श्रुतिसंज्ञैव सम्मता॥

—"सङ्गीत पारिजात"

अर्थात्—जो सुनी जा सकती है, श्रुति कहलाती है। श्रुति और स्वर में भेद इतना ही है कि जितना सर्प तथा उसकी कुण्डली में। यही भेद शास्त्र सम्मत है। और वे सब श्रुतियां ही रागों में स्वर का रूप धारण कर लेती हैं तथा इन श्रुतियों के कारण रूप राग ही हैं, अतएव श्रुति ऐसी संज्ञा ही सम्मत है।

विश्वावसु ने लिखा है—"कणस्पर्शाश्रुतिर्ज्ञेया स्थित्या सैवस्वरोच्यते"— अर्थात् कण, स्पर्श, मींड, सूत से श्रुति तथा उस पर ठहरने से वही स्वर हो जाता है।

भारत देश में प्रचलित है।

सङ्गीत दर्पणकार दामोदर पंडित ने श्रुति और स्वर का भेद इस प्रकार बताया है:—

श्रुत्यनंतरभावित्वं यस्यानुरणनात्मकः ।
स्निग्धश्च रंजकश्चासौ स्वर इत्यभिधीयते ॥
स्वयं यो राजते नादः स स्वरः परकीर्तितः ।

भावार्थ—श्रुति उत्पन्न होने के पश्चात् जो नाद तुरन्त निकलता है तथा जो प्रतिध्वनि रूप प्राप्त करके मधुर तथा रंजन करने वाला होता है, उसे स्वर कहते हैं। जो नाद स्वयं ही शोभित होता है (मधुर लगता है) तथा जिसे अन्य किसी नाद की अपेक्षा नहीं होती, उसे "स्वर" समझना चाहिए।

इस व्याख्या से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि टंकोर मात्र से जो क्षणिक ध्वनि (आवाज़) पैदा हुई, वह श्रुति है और फिर तुरन्त ही वह आवाज स्थिर होगई तो वह "स्वर" है।

श्रुतिस्वरूप:—

स्वरूपमात्रश्रवणान्नादोऽनुरणनं विना ।
श्रुतिरित्युच्यते भेदास्तस्या द्वाविंशतिर्मताः ॥

—सङ्गीतदर्पण

अर्थात्—प्रथमाघात से अनुरणन (प्रतिध्वनि) हुए बिना जो ह्रस्व (टंकोर) नाद उत्पन्न होता है, उसे श्रुति समझना चाहिए।

श्रुति और स्वर देखने में यह दो नाम अवश्य हैं; किन्तु ध्यानपूर्वक देखा जाय तो श्रुति और स्वर में कोई विशेष अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनों ही सङ्गीतोपयोगी आवाजें हैं, दोनों का ही प्रयोग गायन-वादन में होता है और दोनों ही आवाजें स्पष्ट सुनी जा सकती हैं अब श्रुति और स्वर का भेद सरलता पूर्वक समझाते हैं:—

श्रुति—सुरीली ध्वनियों के एक समूह में से सङ्गीत के प्राचीन पंडितों ने २२ स्थान ऐसे चुन लिये, जिनकी आवाजें परस्पर नीची ऊंची हैं और जो सङ्गीत में उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इन्हें ही श्रुति कहा है।

स्वर—इसके बाद उन्हीं २२ ध्वनियों में से १२ ध्वनि ऐसी चुनली गईं, जिनकी आवाजें परस्पर नीची ऊँची हैं, किन्तु उन २२ ध्वनियों में परस्पर जो अन्तर (INTERVAL) है, वह बहुत ही सूक्ष्म है और इन १२ ध्वनियों में जो परस्पर अन्तर है वह उनसे कुछ अधिक है। यही कारण है कि श्रुतियों के अन्तर को साधारण सङ्गीतज्ञ की अपेक्षा एक उत्तम सङ्गीतज्ञ ही अनुभव कर सकता है, किन्तु स्वरों के अन्तर (फ़ासले) को साधारण सङ्गीत प्रेमी भी पहचान लेते हैं। १२ ध्वनियों को फिर और भी संक्षेप किया तो ७ ध्वनि ही रह गईं। यह ७ शुद्ध स्वर हुए और वे १२ स्वर शुद्ध व विकृत मिलकर हुये।

किसी राग में कोई स्वर लगाते समय कोई-कोई गायक यह कहते देखे जाते हैं कि इस राग का कोमल धैवत कुछ ऊंचा है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि वहां पर कोमल की बजाय तीव्र धैवत लगेगा। उदाहरणार्थ राग पूर्वी में भी कोमल धैवत लगता है और भैरव मे भी किन्तु गुणी सङ्गीतज्ञों का कहना है कि पूर्वी मे लगने वाला कोमल धैवत भैरव राग के कोमल धैवत से १ श्रुति ऊँचा है। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि खमाज राग के अवरोह में लगने वाली कोमल निषाद से, खमाज के आरोह की कोमल निषाद १ श्रुति ऊंची है। इसका अर्थ यह हुआ कि खमाज के आरोह मे जो कोमल निषाद लगेगी वह तीव्र निषाद की ओर कुछ खींचकर इस प्रकार ले जाई जायगी कि तीव्र निषाद को तनिक छूकर शीघ्र ही अपने स्थान पर वापिस आजाय, क्योंकि यदि वहां अधिक देर लगगई तो वह श्रुति-प्रयोग न होकर स्वर प्रयोग होजायेगा। इस प्रकार दूसरे स्वर का तनिक स्पर्श करना या छूना "कण" कहलाता है और ऊपर कहा ही जा चुका है कि कण-मींड-सूत द्वारा जब स्वर दिखाया जाता है तब तक तो वह श्रुति है और उस पर ठहरने से वही स्वर कहलाता है उपरोक्त विवेचन से श्रुति और स्वर की तुलना में निम्नलिखित ४ सिद्धान्त निश्चित हुए —

१—श्रुति २२ होती हैं और स्वर ७ या १२

२—श्रुतियां का परस्पर अन्तर या फासला (Interval) स्वरों की अपेक्षा कम होता है। स्वरों का परस्पर अन्तर श्रुतियों की अपेक्षा अधिक होता है।

३—कण मींड और सूत द्वारा जब किसी सुरीली ध्वनि को व्यक्त किया जाता है तब तक तो वह श्रुति है और जहां उस पर ठहराव हुआ तो उसे स्वर कहेंगे।

४—श्रुति और स्वर की तुलना मे अहोबल पंडित ने सङ्गीत पारिजात में सर्प और कुंडली का जो उदाहरण दिया है, उसके अनुसार सर्प की कुंडली तो श्रुति है और सर्प स्वर है। कुंडली के अन्दर जिस प्रकार सर्प रहता है उसी प्रकार श्रुतियों के अन्दर स्वर स्थित हैं।

प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थकारों की श्रुतियां

प्राचीनकाल में सङ्गीत के दो मुख्य ग्रन्थकार भरत और शार्ङ्गदेव हुए हैं। पांचवी शताब्दी से पहिले ही भरत ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ "नाट्यशास्त्र" लिखा और तेरहवीं शताब्दी मे शार्ङ्गदेव ने "सङ्गीत रत्नाकर" नामक ग्रन्थ लिखा, जिसका प्रमाण आज भी बहुत सी सङ्गीत पुस्तकों द्वारा मिलता है। इन दोनो पंडितों ने अपने-अपने ग्रन्थो मे श्रुतियो का वर्णन भी किया है, जिसमें इन दोनो ने एक मत से कुल २२ श्रुतियां ही मानी हैं, साथ ही उनका श्रुति स्वरविभाजन भी एक ही सिद्धान्त पर हुआ है। अर्थात् ये दोनो ही पंडित अपने स्वरों का परस्पर सम्बन्ध मालुम करने के लिये श्रुति का एक निश्चित नाद स्वीकार करते थे, यानी

*नि कण, स्पर्श, मींड, सूत से श्रुति तथा उस पर ठहरने से वही स्वर हो जाता है।

वे सब श्रुतियों को समान मानते थे। उनकी पहली श्रुति से दूसरी श्रुति जितने फासले पर है उतना ही फासला उन्होंने समस्त श्रुतियों में रक्खा है। इसी फासले या अन्तर को "श्रुत्यांतर" कहते हैं।

"षड़ज ग्रामवीणा" पर भरत की श्रुतियां—

भरत का कहना है कि, ऐसी दो वीणा लेकर जिनमें सात-सात तार चढ़े हुये हों, षड़ज ग्राम में मिलाओ। दोनों वीणाओं में जो सात-सात तार चढ़े हुये हैं, उनको ७ स्वरों में मिलाने का ढङ्ग भरत इस प्रकार बताते हैं:—

षड़ज—	यह स्वर	चौथी	श्रुति पर रहे।
रिषभ—	"	सातवीं	"
गंधार—	"	नवीं	"
मध्यम—	"	तेरहवीं	"
पंचम—	"	सत्रहवीं	"
धैवत—	"	बीसवीं	"
निषाद—	"	बाईसवीं	"

इस प्रकार की वीणा जो तैयार हुई, वह "षड़ज ग्राम की" "अचल वीणा" कही जायगी।

इसके पश्चात् षड़ज ग्राम वाली इन दो वीणाओं में से एक वीणा लेकर उसका केवल पंचम का तार १ श्रुति कम करदो, और अन्य तारों को उसी प्रकार रहने दो अर्थात् इस वीणा का पंचम वाला तार १ श्रुति नीचा होगया, बाकी सा रे ग म ध नि यह ६ तार अपने-अपने स्थान पर कायम रहे। यह मध्यमग्राम वीणा कही जायगी।

इसके बाद, इसी वीणा के शेष ६ तारों को भी एक-एक श्रुति कम कर दो, तो यह "चलवीणा" कही जायगी। इस चल वीणा पर स्वरों की स्थिति इस प्रकार हो जायगी:—

स्वर—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
श्रुति नं०—	३	६	८	१२	१६	१९	२१

अर्थात् उपरोक्त सातों स्वर क्रमशः तीसरी, छटी, आठवीं, बारहवीं, सोलहवीं, उन्नीसवीं और इक्कीसवीं श्रुति पर पहुँच गये। ऐसा होने से यह स्पष्ट है कि पहिली षड़जग्राम वीणा या 'अचल वीणा' से चलवीणा के सातों स्वरों में एक श्रुति का अन्तर होगया।

इसके पश्चात् भरत लिखते हैं कि चलवीणा के पंचम को फिर एक श्रुति से कम करदो, और उसी प्रकार शेष ६ स्वरों को भी एक-एक श्रुति नीचे करदो तो स्वरों की स्थिति इस प्रकार हो जायगी।

सा रे ग म प ध नि
२ ५ ७ ११ १५ १८ २०

ऐसा होने से चलवीणा के ग और नि जोकि ७ और २० नम्बर की श्रुतियों पर स्थिति हैं, अचल वीणा के रे और ध से मिलने लगेंगे क्योंकि अचल वीणा के रे-ध भी क्रमश ७ और २० नम्बर की श्रुतियों पर स्थित हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि चलवीणा और अचल वीणा के स्वरो में २ श्रुतियों का अन्त हो गया।

इसी प्रकार भरत ने चलवीणा के स्वरो को १-१ श्रुति कम करके आगे और बताया है, इसमे यह सिद्ध होता है कि, उनकी श्रुतिया परस्पर समानता रखती थीं, क्योकि यदि उनके आपसी-फासले कम या ज्यादा होते तो "अचल वीणा" का उपरोक्त स्वर निर्देशन सम्भव ही नहीं था। भरत के इसी सिद्धात अर्थात् "समान श्रुत्यान्तर" को शाङ्गदेव भी मानते हैं।

इसके विरुद्ध मध्यकालीन विद्वानों ने श्रुतिया तो एक सप्तक मे २२ ही मानी हैं, किंतु वे "समान श्रुत्यान्तर" वाले सिद्धात को स्वीकार नहीं करते।

१४ वीं सदी से १८ वीं शताब्दी तक के मध्यकालीन विद्वानों मे मुख्य चार विद्वानों के सङ्गीत-ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

(१) रागतरंगिणी—यह ग्रन्थ लोचनकवि ने १५ वी शताब्दी के आरम्भ मे लिखा।

(२) सङ्गीत पारिजात—यह ग्रन्थ प० अहोबल ने १७ वी शताब्दी के पूर्वार्ध मे लिखा।

(३) हृदय कौतुक और हृदयप्रकाश—यह दोनों ग्रथ हृदय नारायण देव ने १७ वी शताब्दी के उत्तरार्ध में लिखे।

(४) राग तत्व विबोध—१८ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध मे यह ग्रथ श्रीनिवास पडित ने लिखा।

वीणा के तार पर १२ स्वरो के स्थान निश्चित करने का सर्व प्रथम प्रयास "सङ्गीत पारिजात" के लेखक अहोबल पण्डित ने किया, इसके बाद हृदय नारायण और श्री निवास ने भी वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना अहोबल के अनुसार ही की है।

यद्यपि मध्यकालीन विद्वान "चतुश्चतुश्चतुश्चैव " वाले श्लोक के अनुसार सात स्वरों का विभाजन २२ श्रुतियों पर स्वीकार करते हैं, तथा प्राचीन पण्डितों के अनुसार ही उन्होंने भी प्रत्येक शुद्ध स्वर को उस स्वर की अन्तिम श्रुति पर स्थित किया है, किन्तु प्राचीन और मध्यकालीन विद्वानों में श्रुतियों के समान अन्तर पर मत भेद है।

आधुनिक ग्रन्थकारों की श्रुतियां—

ऊपर बताये हुए प्राचीन और मध्यकालीन ग्रथकारों के विवेचन द्वारा यह बताया जा चुका है कि इन्होंने अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर अन्तिम श्रुति पर निश्चित किया है है।

इसके विरुद्ध हमारे आधुनिक ग्रन्थकार अपना प्रत्येक शुद्ध स्वर श्रुति प्रथम पर स्थापित करते हैं। आधुनिक ग्रन्थकारों में "अभिनव राग मंजरी" के लेखक श्री विष्णु नारायण भातखण्डे का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने श्रुतियों के विभाजन के बारे में इस प्रकार लिखा है:—

वेदाचलांकश्रुतिषु त्रयोदश्यां श्रुतौ तथा ।
सप्तदश्यां च विंश्यां च द्वाविंश्यां च श्रुतौ क्रमात् ॥
षड्जादीनां स्थितिः प्रोक्ता शुद्धाख्या भरतादिभिः ।
हिन्दुस्थानीयसंगीते श्रुतिक्रमविपर्ययः ।
ऐते शुद्धस्वराः सप्त स्वस्वाद्यश्रुतिसंस्थिताः ॥

अर्थात्—भरत इत्यादि प्राचीन शास्त्रकारों ने श्रुतियां शुद्ध स्वरों में इस क्रम से बांटी हैं कि षड्ज चौथी श्रुति पर, रिषभ सातवीं श्रुति पर, गान्धार नवीं पर, मध्यम तेरहवीं पर, पंचम सत्रहवीं पर, धैवत बीसवीं पर और निषाद बाईसवीं श्रुति पर स्थित है। किन्तु हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति में श्रुतियों को ७ शुद्ध स्वरों पर बांटने का क्रम इसके विपरीत रखकर प्रत्येक शुद्ध स्वर प्रथम श्रुति पर स्थापित किया गया है।

इस प्रकार आधुनिक ग्रंथकार पहिली श्रुति पर षड्ज, पांचवी पर रिषभ, आठवीं पर गांधार, दसवीं पर मध्यम चौदहवीं पर पंचम, अठारहवीं पर धैवत और इक्कीसवीं श्रुति पर निषाद कायम करते हैं।

प्राचीन व आधुनिक श्रुति स्वर विभाजन—

निम्न लिखित कोष्ठक में प्राचीन ग्रन्थों द्वारा, श्रुतियों का शुद्ध स्वरों पर विभाजन दिखाया गया है, साथ ही आधुनिक सङ्गीत ग्रन्थकारों ने शुद्ध स्वर कौन-कौन सी श्रुतियों पर माने हैं, यह भी दिखाया गया है।

श्रुति नं०	श्रुति नाम	प्राचीन ग्रन्थों के शुद्ध स्वर स्थान	आधुनिक संगीत पद्धति के अनुसार शुद्ध स्वर विभाजन
१	तीव्रा ··· ··· ···	··· ··· ··· ···	षड्ज
२	कुमुद्वती ··· ···	··· ··· ··· ····	
३	मन्दा ·· ··· ···	··· ··· ··· ····	
४	छन्दोवती ··· ···	षड्ज ··· ··· ····	
५	दयावती ··· ···	··· ···· ··· ···	रिषभ
६	रंजनी ··· ··· ··	··· ·· ··· ···	
७	रक्तिका ··· ···	रिषभ ··· ···	
८	रौद्री ··· ··· ···	··· ··· ··· ···	गांधार

१०	चन्त्रिका		मध्यम
११	प्रसारिणी		
१२	प्रीति		
१३	मार्जनी	मध्यम	
१४	क्षिती		पंचम
१५	रक्ता		
१६	संदीपिनी		
१७	अलापिनी	पंचम	
१८	मदन्ती		धैवत
१९	रोहिणी		
२०	रम्या	धैवत	
२१	उग्रा		निषाद
२२	क्षोभिणी	निषाद	

यह तो हुआ श्रुतियों का शुद्ध स्वर विभाजन। अब रहे ५ विकृत स्वर। उनके लिये यह नियम है कि जिस श्रुति पर शुद्ध स्वर कायम हुआ है, उससे तीसरी श्रुति पर आगे वाला विकृत स्वर आयेगा। इस प्रकार शुद्ध स्वरों से दो-दो श्रुति पर विकृत स्वरों की स्थापना करने पर यह तालिका बनेगी —

२२ श्रुतियों पर आधुनिक पद्धति के १२ स्वरों की स्थापना—

नं०	श्रुति नाम	स्वर	स्वर आंदोलन
१	तीव्रा	सा (अचल)	२४०
२	कुमुद्वती		
३	मंदा	रे॒ (कोमल)	२५४, $\frac{२}{७}$
४	छंदोवती		
५	दयावती	रे (तीव्र)	२७०
६	रंजनी		
७	रक्तिका	ग॒ (कोमल)	२८८
८	रौद्री	ग (तीव्र)	३०१$\frac{१७}{४३}$
९	क्रोधी		
१०	वज्रिका	म (कोमल)	३२०
११	प्रसारिणी		
१२	प्रीति	मं (तीव्र)	३३८$\frac{१}{५}$

१३	मार्जनी	....	.. ..
१४	क्षिती...	प (अचल)	३६०
१५	रक्ता...	... ...	... ...
१६	संदीपनी	ध (कोमल)	३८४ $\frac{3}{17}$
१७	अलापनी	... ...	... ...
१८	मदन्ती...	ध (तीव्र)	४०५
१९	रोहिणी	... .	... ...
२०	रम्या...	नि (कोमल)	४३२
२१	उग्रा	नि (तीव्र)	४५५ $\frac{5}{13}$
२२	क्षोभिणी	... ...	... .
१	तीव्रा	सां (तार)	४८०

अब हम प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक संगीत ग्रन्थकारों का एक तुलनात्मक चार्ट देकर यह बताते हैं कि श्रुति स्वर के बारे में उनके विचारों में कहां-कहां एकता और मतभेद है:—

प्राचीन-मध्यकालीन और आधुनिक ग्रन्थकारों का श्रुति-स्वर के बारे में

तुलनात्मक विवेचन

(१) वे सिद्धान्त जिनपर तीनों ग्रन्थकार एकमत हैं।

प्राचीन ग्रंथकार (भरत-शार्ङ्गदेव आदि)	मध्यकालीन ग्रन्थकार (अहोबल, श्रीनिवास, लोचन)	आधुनिक ग्रन्थकार (भातखण्डे आदि)
२२ श्रुतियां एक सप्तक में मानते हैं।	२२ श्रुतियां एक सप्तक में मानते हैं।	२२ श्रुतियां एक सप्तक में मानते हैं।
शुद्ध तथा विकृत १२ स्वर इन्हीं २२ श्रुतियों पर बांटते हैं।	शुद्ध तथा विकृत १२ स्वर इन्हीं २२ श्रुतियों पर बांटते हैं।	शुद्ध तथा विकृत १२ स्वर इन्हीं २२ श्रुतियों पर बांटते है।
षड्ज, मध्यम, पञ्चम की ४-४ श्रुतियां, निषाद गंधार की २-२ श्रुतियां और रिषभ-धैवत की ३-३ श्रुतियां मानकर स्वरों की स्थापना करते हैं।	प्राचीन ग्रन्थकारों की तरह ही इन्होंने भी उसी प्रकार यह विभाजन स्वीकार करके प्राचीन सिद्धान्त स्वीकार किया है।	प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रंथकारों के अनुसार इन्होंने भी इसी नियम का पालन करके उनका मत स्वीकार किया है।

इस प्रकार यदि किसी स्वर का गुणांतर हमें मालुम हो तो षड्ज की आंदोलन संख्या २४० को उसमे गुणा कर देने से उस स्वर की आंदोलन संख्या निकल आती है। चाहें जिस स्वर का आंदोलन संख्या निकाली जाय, किंतु षडज की मदद बिना वह नहीं निकल सकेगी क्योंकि षडज ही सब स्वरों का आधार है।

तार की लम्बाई के नाप से भी स्वरों का गुणांतर निकल आता है। जैसे षडज के तार की लम्बाई ३६ इन्च है और मध्यम की लम्बाई २७ इन्च है। अब हमने इसका गुणान्तर निकाला तो ३६ में २७ का भाग दिया, इसका अर्थ हुआ $\frac{३६}{२७}$ या $\frac{४}{३}$ इस प्रकार षड्ज और मध्यम मे ४ ३ का या $\frac{४}{३}$ का स्वरान्तर है। अब इसी गुणान्तर या स्वरान्तर को लेकर मध्यम स्वर की आन्दोलन संख्या मालुम की जावे तो इस प्रकार निकलेगी $\frac{४}{३} \times २४० = ३२०$ क्योंकि षडज की मानी हुई आन्दोलन संख्या २४० है और षडज मध्यम का स्वरान्तर $\frac{४}{३}$ है इसलिये $\frac{४}{३}$ को २४० से गुणा करके आसानी से मध्यम की आन्दोलन संख्या ३२० निकल आई। इसी प्रकार पंचम की आन्दोलन संख्या निकालने के लिये सा=३६ इंच, प=२४ इंच इनका स्वरान्तर हुआ $\frac{३६}{२४}$ यानी $\frac{३}{२}$ इसको षडज की आन्दोलन संख्या २४० मे गुणा कर दिया तो $\frac{३}{२} \times २४० = ३६०$ 'प' की आन्दोलन संख्या निकल आई।

यह तो हुआ स्वरों की लम्बाई से आन्दोलन संख्या निकालने का नियम। अब यह बताते हैं कि आन्दोलन संख्या से स्वरों की लम्बाई किस प्रकार निकलती है—

आन्दोलन संख्या से लम्बाई निकालना

अगर दो स्वरों की आन्दोलन संख्या हमें मालुम हो तो उनकी लम्बाई भी निकाली जा सकती है और यदि इनमें से एक ही स्वर की लम्बाई मालुम हो तो गुणान्तर (स्वरान्तर) निकाल कर लम्बाई मालुम की जायेगी। उदाहरणार्थ—षडज और मध्यम की आन्दोलन संख्याओं से हमें मध्यम स्वर की लम्बाई मालुम करनी है, तो इस प्रकार करेंगे—षडज=२४०" मध्यम ३२०" इनका गुणान्तर हुआ $\frac{३२०}{२४०} = \frac{४}{३}$ इस गुणान्तर का षडज की लम्बाई ३६ इञ्च में भाग दिया गया $३६ \div \frac{४}{३} = २७$ इंच मध्यम की लम्बाई निकल आई। यहा पर एक बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि लम्बाई से आन्दोलन निकालने मे तो स्वरान्तर का षडज की आन्दोलन संख्या मे गुणा करना होगा और जब आन्दोलन से लम्बाई निकाली जायगी तब षडज की लम्बाई मे उस स्वरान्तर का भाग देना होगा। इस प्रकार मालुम होगा कि तार की लम्बाई और स्वर की आन्दोलन संख्या का सम्बन्ध बिल्कुल उल्टा है। लम्बाइ घटेगी तो नाद या आवाज ऊँची होगी, जैसे सा की लम्बाई ३६ इंच है प की २४ इंच ही रह गई। सा से प की आवाज तो ऊँची हो गई किन्तु लंबाई कम हो गई। इसके विरुद्ध स्वर ऊँचा होता है तो आन्दोलन संख्या बढती है और स्वर नीचा होता है तो आन्दोलन संख्या कम होती है। जैसे सा की आन्दोलन संख्या २४० है और प की बढकर ३६० हो गई।

॥ता॥ है।

इस प्रकार ध्वनि (नाद) की दृष्टि से स्वर स्थानों का स्पष्टीकरण करने के लिये दो साधन हुए:—

(१) प्रत्येक ध्वनि के एक सैकिण्ड में होने वाले तुलनात्मक आन्दोलन बताना।

(२) वीणा के बजने वाले तार की लंबाई के भिन्न-भिन्न भागों से ध्वनि की ऊँचाई निचाई बताना।

हमारे प्राचीन ग्रन्थकारों को इनमें से पहिला साधन या तो मालुम नहीं था या उन्होंने उसका उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा। उन्होंने अपने ग्रन्थों में दूसरे साधन की ही चर्चा विशेष रूप से की है। प्रथम साधन की चर्चा आधुनिक ग्रन्थकारों तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा की गई है।

सङ्गीत के इतिहास का मध्यकाल १४ वीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक माना जाता है, इसमें सङ्गीत के विद्वानों ने सङ्गीत पर कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। जिनके नाम हैं—

(१) सङ्गीत पारिजात (२) हृदय कौतुक (३) हृदय प्रकाश (४) रागतत्वविवोध इत्यादि।

इनमें से मुख्य ग्रन्थ 'सङ्गीत पारिजात' है, जिसके लेखक हैं अहोबल पंडित। इन्होंने ही सर्व प्रथम वीणा के तार की लम्बाई के विभिन्न भागों से १२ स्वरों के ठीक-ठीक स्थान निश्चित किये। इसके पश्चात् श्रीनिवास पंडित ने भी अपने लिखे हुए ग्रन्थ 'राग तत्व विवोध' में १२ स्वरों के स्थान बताये हैं।

पं० श्रीनिवास ने वीणा के ३६ इंच लम्बे खुले तार पर षड्ज स्वर मानकर क्रमशः वारहों स्वरों के परदे बांधने का ढङ्ग बताया है।

पण्डित श्रीनिवास के स्वरों की स्थापना का नियम समझने से पहले हमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि श्री निवास का शुद्ध थाट आधुनिक "काफी थाट" था, अर्थात् इनके शुद्ध थाट में गन्धार और निषाद कोमल थे, जबकि हमारे सङ्गीतज्ञ आजकल शुद्ध थाट विलावल मानते हैं। इसी प्रकार अन्य मध्यकालीन ग्रंथकारों के ७ शुद्ध स्वरों में ग—नि कोमल होते थे। उनके ७ शुद्ध स्वर इस प्रकार थे:—

सा (शुद्ध)	प (शुद्ध)
रे (तीव्र)	ध (तीव्र)
ग (कोमल)	नि (कोमल)
म (कोमल)	

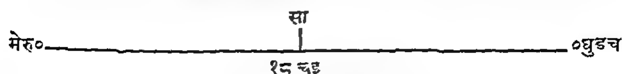
वीणा के तार पर श्रीनिवास के स्वर—

सबसे पहले श्रीनिवास पण्डित, तार षड्ज और मध्य षड्ज का स्थान वीणा पर इस प्रकार वताते हैं:—

पूर्वांत्ययोश्चमेर्वोश्च मध्ये तारकसः स्थितिः।
तदर्धे खतितारस्य सस्वरस्य स्थितिर्भवेत्॥

षड्ज (तार सप्तक)

मेरु से घुडच तक जो वीणा का तार खिंचा हुआ है, इसके ठीक बीचों बीच मे तार षडज स्थित है। अर्थात् ३६ इंच लम्बा तार मानकर उसके २ भाग करने पर ३६ − २ = १८ इंच पर तार षडज बोलेगा।



सा (षड्ज मध्य सप्तक)

पूरे ३६ इंच लम्बे खुले तार को बिना किसी जगह दबाये छेड़ा जाये तो मध्य सप्तक का षडज बोलेगा।



इसके बाद बताते हैं, अतितार षडज और मध्यम स्वरों के स्थान —

मध्यस्थानादिमषड्जमारभ्यातारषड्जगम् ।
यत्र कुर्यात्तदर्धे तु स्वरम् मध्यममाचरेत् ॥

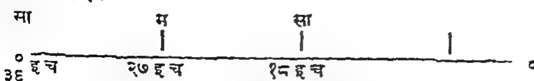
सां (अतितार षड्ज)

घुडच और तार षड्ज (सा) के बीच में जो १८ इन्च स्थान है उसके मध्य स्थान में अतितार षडूज स्थापित है अर्थात सा से ६ इन्च आगे जाकर अति तार षडूज बोलेगा।



मध्यम—

मेरु और तार षड्ज के बीच में जो १८ इंच तार है, उसके २ भाग ६-६ इंच के हुए, अत मध्यम स्वर १८ + ६ = २७ इंच पर बोलेगा। अर्थात् सा और सा के बीच में मध्यम स्वर है।



पंचम—

भागत्रयसमायुक्त तत्सूत्रं कारितम् भवेत् ।
पूर्वभागद्वयादग्रे स्थापनीयोऽथ पचमः ॥

पचम स्वर को इस प्रकार बताते हैं कि मेरु और तार सा के बीच के [illegible]
ता इ ता [illegible] स्वर है।
की चढकर ३६० हो गई
६।

३ बराबर भागों में बांटा जाय तो १८÷३=६ इंच पर पञ्चम स्वर बोलेगा। इस प्रकार पञ्चम स्वर लम्बाई घुड़च से १८+६=२४ इंच हुई।

प　　सां
मेरु सा ० ——|——|——|—— ०
३६　　२४　　१८

गान्धार

षडजपंचममध्ये तु गान्धारस्थानमाचरेत्।
षडजपंचमगं सूत्रमंशत्रयसमन्वितम् ॥

षडज और पञ्चम के बीच में गन्धार है। अर्थात् गन्धार स्वर पञ्चम से ६ इंच बांई ओर होगा और घुड़च से गन्धार की लम्बाई २४+६=३० इंच होगी।

सा　　ग　　प　　सां
|——|——|——|——
३६　　३०　　२४　　१८

ध्यान रहे श्री निवास का यह गन्धार वर्तमान प्रचलित कोमल गन्धार है क्योंकि इन्होंने अपने शुद्ध थाट में ग – नि कोमल लिये हैं।

रिषभ

तत्रांशद्वयसंत्यागात् पूर्वभागे तु रिर्भवेत्।

रिषभ स्वर को इस प्रकार बताते हैं कि षड़ज और पञ्चम के बीच के स्थान के ३ भाग करके मेरु के पूर्व भाग में रिषभ स्वर बोलेगा मेरु और पञ्चम के बीच का स्थान १२ इंच है तो १२÷३=४ मेरु से चार इंच पर रिषभ हुआ, इस प्रकार घुड़च से रिषभ की लम्बाई ३६—४=३२ इंच हो जायगी।

सा　　रे　　　　प　　सां
|——|——|——|——|——
३६　　३२　　　　२४　　१८

धैवत

पंचमोत्तरषड़जाख्यमध्ये धैवतमाचरेत् ॥

पञ्चम और तार षड़ज के मध्य स्थान में धैवत स्वर स्थित है ऐसा श्री निवास पंडित का कहना है, किन्तु प – सां के बीचोबीच में धैवत स्थापित करके जब हम बजाते हैं तो कुछ ऊंचा अर्थात् चढ़ा हुआ बोलता है, इस थोड़े से अन्तर के लिये श्री निवास का कहना है कि "स्वरसंवादिताज्ञानं स्वरस्थापन कारणम्" इसका भावार्थ यही है कि रिषभ का स्थान निश्चित् होजाने पर धैवत का स्थान "षड़जपञ्चम भाव" से कायम कर लेना चाहिए। धैवत के उपरोक्त श्लोक में "मध्ये" का अर्थ बीच न मानकर चेत्र मान लेने से सब ठीक होजाता है। षड़ज पञ्चम भाव का अर्थ यही है कि जिस प्रकार [illegible]

डेढगुना ऊ चा है उसी प्रकार रिषभ से डेढगुना ऊंचा धैवत है, गन्धार से डेढगुना ऊ चा निषाद है और मध्यम स्वर से डेढगुना ऊ चा तारषडज होगा।

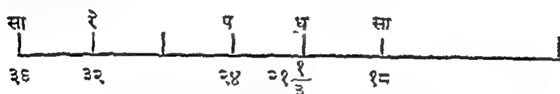
इस हिसाब मे रिषभ का पचम हुआ धैवत। गधार का पचम हुआ निषाद। मध्यम का पचम होगा तार षडज। इस प्रकार "षडजपञ्चम भाव" की निम्नलिखित ४ जोडिया बनीं।

सपयो रिधयोश्चैव तथैव गनिषादयोः ।
सवादः समतो लोके मसयोः स्वर्योमिथः ॥

अर्थात, सा – प, रे – ध, ग – नि, म – सा। ये सवाद सङ्गीतज्ञों में प्रसिद्ध हैं ही।

षडज और पञ्चम स्वरों की ऊ चाई नीचाई का सम्बन्ध ही षडजपञ्चम भाव कहलाता है, जिसका गुणान्तर $१\frac{१}{२}$ अर्थात डेढ होता है। षडज की लम्बाई ३६ इच है इसमे डेढ का भाग दिया तो ३६—$१\frac{१}{२}$=२४ इंच पर पञ्चम होगया। इसी प्रकार पञ्चम, जो कि २४ इच पर स्थित है डेढ से गुणा कर दिया तो २४×$१\frac{१}{२}$= ३६ इच पर षडज होगया। अब इसी हिसाब को लेकर अर्थात् षड्ज पञ्चम भाव से रे – ध की दूरी निकाली गई तो इस प्रकार निकली —

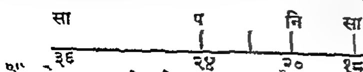
चू कि रिषभ की लम्बाई ३२ इच है तो ३२—$१\frac{१}{२}$=$२१\frac{१}{३}$ इसलिये $२१\frac{१}{३}$ इच पर धैवत स्वर स्थित हुआ।



निषाद

पसयोर्मध्यभागे स्यात् भागत्रयसमन्विते ।
पूर्वभागद्वय त्यक्त्वा निषादो राजते स्वरः ॥

पचम और तारषडज की लम्बाई के ३ भाग करके पहिले २ भागों को छोड़ दिया जाये तो तीसरे भाग पर निषाद स्वर होगा। पञ्चम और तारषडज के बीच की लम्बाई ६ इन्च है, इसके तीन भाग किये गये ६—३=२ इन्च। क्योंकि षडज की लम्बाई १८ इच है, अत १८+२=२० इच पर निषाद स्वर स्थापित हुआ।



प की बढकर ३६० हो गई।

ध्यान रहे यह निषाद हमारा कोमल निषाद है, ऊपर हम बता चुके हैं कि श्री निवास ने अपने शुद्ध थाट में ग – नि यह दोनों स्वर वे लिये हैं, जिन्हें हम आजकल कोमल ग – नि कहते हैं।

उपरोक्त वर्णन के अनुसार श्रीनिवास पंडित के शुद्ध स्वर स्थानों की लम्बाई आन्दोलनों सहित इस प्रकार हुई:—

श्रीनिवास के शुद्ध स्वर—

स्वर	स्वर का पूरा नाम	तार की लंबाई	आन्दोलन संख्या
सा	षड्ज (मध्य सप्तक)	३६ इन्च	२४०
सां	षड्ज (तार सप्तक)	१८ "	४८०
सां	षड्ज (अति तार सप्तक)	९ "	९६०
म	मध्यम (मध्य सप्तक)	२७ "	३२०
प	पंचम (")	२४ "	३६०
ग	गंधार (")	३० "	२८८
रे	रिषभ (")	३२ "	२७०
ध	धैवत (")	२१$\frac{१}{३}$ "	४०५
नि	निषाद (")	२० "	४३२

वह तो हुए श्रीनिवास के शुद्ध स्वर, अब रहे ५ विकृत स्वर (यानी कोमल रिषभ, कोमल धैवत, तीव्रतर मध्यम, तीव्र गंधार और तीव्र निषाद। श्रीनिवास पंडित गधार और निषाद के विकृत होने पर उन्हें तीव्र गंधार और तीव्र निषाद कहते हैं, जबकि हमारी पद्धति में ग – नि विकृत होने पर कोमल ग – नि कहलाते हैं।

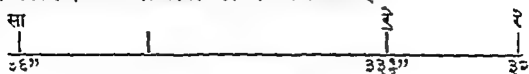
श्रीनिवास के विकृत स्वर

कोमल रे

भागत्रमोदिते मध्ये मेरोर्ष्टमसंज्ञितात्।
भागद्वयोत्तरं मेरोः कूर्यात् कोमलरिस्वरम्॥

मध्य सा और शुद्ध रे के बीच में तार की जितनी लम्बाई है उसके तीन भाग किये तो सा से दूसरे भाग पर या मेरु से दूसरे भाग पर कोमल रे स्वर बोलेगा।

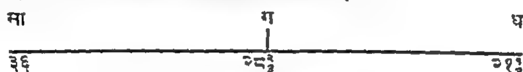
सा और रे का अन्तर ४ इंच है, इसके तीन भाग किये तो प्रत्येक भाग ४/३ इंच हुआ। क्योंकि रे की लंबाई घुडच से ३२ इंच दूर है अत ३२+४/३=३३ १/३ इंच पर कोमल रे स्थापित हुआ। नीचे के चित्र मे षडज और शुद्ध रिषभ के तार की ४ इंच ई दिखाकर ३ भाग करके कोमल रिषभ दिखाया जाता है —



तीव्र ग

मेरुधैवतयोर्मध्ये तीव्रगाधारमाचरेत् ।

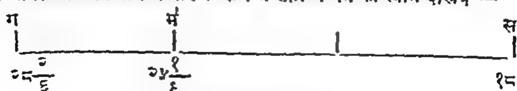
मेरु (षडज) और धैवत के बीच में तीव्र गन्धार है। मेरु और ध का अन्तर इस प्रकार है —स ३६—ध २१ १/३=१४ २/३ इसका आधा हुआ ७ १/३ इंच। अत तीव्र गान्धार की लंबाई धैवत से ७ १/३ हुई और घुडच से हुई २१ १/३+७ १/३=२८ २/३ इंच। नीचे के चित्र मे सा और ध के बीच मे तीव्र गन्धार दिखाया है।



तीव्रतर मध्यम

भागत्रयविशिष्टेस्मन् तीव्रगान्धारषड्जयोः ।
पूर्वभागोत्तर मध्ये म तीव्रतरमाचरेत् ॥

तीव्र गान्धार और तार षडज के मध्यम के तीन भाग करके प्रथम भाग पर तीव्रतर मध्यम स्थापित होगा। तीव्र ग और तार सा का अन्तर =२८ २/३—१८=१० २/३ अर्थात ३२/३ हुआ इसके ३ भाग किये गये तो ३२/३ × १/३ = ३२/९ इंच का प्रत्येक भाग होगा। अतः तीव्रतर मध्यम घुडच से १८+ ३२/९ + ३२/९ =२५ १/९ इंच की दूरी पर होगा। नीचे के चित्र म तारषडज और तीव्र गन्धार के बीच में तीव्र मध्यम का स्थान देखिये —



कोमल धैवत

भागत्रयान्विते मध्ये पंचमोत्तरषड्जयोः ।
कोमलो धैवतः स्थाप्यः पूर्वभागे विवेकिभिः ॥

पंचम और तारषडज के बीच के तार की ६ इंच लंबाई के ३ भाग करें तो कोमल धैवत पंचम से पहले भाग पर होगा। क्योंकि पंचम की लंबाई घुडच से २४ इंच है इसमे से २ घटाये जायेंगे तो २२ इंच पर कोमल धैवत उपरोक्त श्लोक के अनुसार होना चाहिये।

षडज पंचम भाव से ही निकालना होगा तभी कोमल धैवत का सही-सही स्थान मालुम हो सकेगा।

जिस प्रकार षडज पंचम भाव द्वारा शुद्ध धैवत की ! बाई शुद्ध रिषभ की सहायता से निकाली गई थी उसी प्रकार कोमल रिषभ की सहायता से कोमल धैवत की लंबाई निकलेगी:—

रे॒ की लंबाई ३३$\frac{१}{३}$ है इसमें डेढ़ का भाग दिया ३३$\frac{१}{३}$ ÷ १$\frac{१}{२}$ = $\frac{१००}{३}$ × $\frac{२}{३}$ = २२$\frac{२}{९}$ इंच।

अर्थात कोमल धैवत की लंबाई घुडच से २२$\frac{२}{९}$ इंच बिलकुल ठीक है।

तीव्र निषाद—

तथैव धसयोर्मध्ये भागत्रयसमन्विते।
पूर्वभागद्वयादूर्ध्वं निषादं तीव्रमाचरेत् ॥

धैवत और तार षड़ज की लम्बाई (जो कि $\frac{१०}{३}$ इन्च है) इसके तीन भाग किये जायें तो धैवत से दूसरे भाग पर तीव्र निषाद स्थित होगा। अर्थात्:—

धैवत २१$\frac{१}{३}$ − तार षड़ज १८ = $\frac{१०}{३}$ ÷ ३ = $\frac{१०}{९}$ इंच का प्रत्येक भाग हुआ और घुड़च से तीव्र निषाद की लम्बाई १८ + $\frac{१०}{९}$ = १९$\frac{१}{९}$ इंच हुई। नीचे के चित्र में धैवत और तार षड़ज के ३ भागों में तीव्र निषाद देखिये:—

ध	नि	सां
२१$\frac{१}{३}$	१९$\frac{१}{९}$	१८

इस प्रकार श्री निवास के पाचों विकृत स्वर निश्चित हुए जिनकी लम्बाई निम्नलिखित नक्शे में देखिये।

—श्री निवास के ५ विकृत स्वर—

स्वर	स्वर का पूरा नाम	तार की लम्बाई	आन्दोलन
रे॒	कोमल रिषभ (मध्य सप्तक)	३३$\frac{१}{३}$ इंच	२५९$\frac{४}{५}$
ग	तीव्र गांधार "	२८$\frac{२}{३}$ "	३०१$\frac{१७}{४३}$
मं	तीव्रतर मध्यम "	२५$\frac{१}{९}$ "	३४४$\frac{८}{११३}$
ध॒	कोमल धैवत "	२२$\frac{२}{९}$ "	३८८$\frac{४}{५}$
नि	तीव्र निषाद "	१९$\frac{१}{[illegible]}$ "	४५२$\frac{४}{[illegible]}$

वीणा के तार पर

श्री निवास तथा मंजरीकार के स्वर स्थान तथा आंदोलन संख्या

श्री निवास के स्वर स्थान			मंजरीकार के स्वर स्थान		
स्वर नाम	लम्बाई	आन्दोलन	स्वर नाम	लम्बाई	आन्दोलन
षडज शुद्ध	३६ इंच	२४०	षड्ज	३६ इंच	२४०
रिषभ कोमल	$३३\frac{१}{३}$ "	$२५९\frac{१}{५}$	रिषभ कोमल	३४ "	$२५४\frac{२}{१७}$
रिषभ शुद्ध	३२ "	२७०	रिषभ तीव्र	३२ "	२७०
गन्धार शुद्ध	३० "	२८८	गंधार कोमल	३० "	२८८
गन्धार तीव्र	$२८\frac{२}{३}$ "	$३०१\frac{१७}{४३}$	गंधार तीव्र	$२८\frac{२}{३}$ "	$३०१\frac{१७}{४३}$
मध्यम शुद्ध	२७ "	३२०	मध्यम कोमल	२७ "	३२०
मध्यम तीव्रतर	$२५\frac{१}{६}$ "	$३४४\frac{८}{११३}$	मध्यम तीव्र	$२५\frac{१}{२}$ "	$३३८\frac{१४}{१७}$
पंचम शुद्ध	२४ "	३६०	पंचम	२४ "	३६०
धैवत कोमल	$२२\frac{२}{६}$ "	$३८८\frac{४}{५}$	धैवत कोमल	$२२\frac{२}{३}$ "	$३८१\frac{३}{१७}$
धैवत शुद्ध	$२१\frac{१}{३}$ "	४०५	धैवत तीव्र	$२१\frac{१}{३}$ "	४०५
निषाद शुद्ध	२० "	४३२	निषाद कोमल	२०	४३२
निषाद तीव्र	$१९\frac{१}{६}$ "	$४५०\frac{४}{४३}$	निषाद तीव्र	$१९\frac{१}{६}$ "	$४५०\frac{४}{४३}$
षडज शुद्ध (तार)	१८ "	४८०	तार षडज	१८	४८०

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि श्री निवास के सभी शुद्ध स्वर स्थान मंजरीकार ने मान लिये हैं, केवल कुछ विकृत स्वर स्थानों के बारे में इन दोनों विद्वानों के मत नहीं मिलते अत आगे हम यह लिखते हैं कि इनका मतैक्य तथा मतभेद कौन–कौन सी बातों पर है।

मतैक्य (समानता)

(१) दोनों ही विद्वान कोमल धैवत तथा शुद्ध धैवत को षड्ज पंचम भाव से निकालकर वीणा के तार पर स्थापित करते हैं।

२—दोनों ही विद्वानों ने तीव्र निषाद को भिन्न रीति से वीणा के तार पर स्थापित करके एकमत से उसकी लम्बाई (१९ $\frac{१}{९}$ इञ्च) स्वीकार की है।

३—दोनों ही विद्वानों ने कोमल रिषभ, तीव्र मध्यम और कोमल धैवत यह ३ स्वर वीणा के तार पर भिन्न-भिन्न रीति से स्थापित किये हैं।

४—कोमल रे, कोमल ध, और तीव्र म को छोड़कर शेष स्वर स्थान दोनों ही विद्वानों के एक से हैं।

५—दोनों ही विद्वानों के शुद्ध स्वरों तथा कोमल गन्धार और कोमल निषाद के स्थानों को वर्तमान सङ्गीतज्ञ मानते हैं और वे हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति में प्रचलित हैं।

मतभेद (असमानता)

श्रीनिवास	मंजरीकार (भातखण्डे)
१—शुद्ध थाट में गन्धार निषाद कोमल रखते हैं।	१—शुद्ध थाट में गन्धार निषाद तीव्र (शुद्ध) रखते हैं।
२—हमारे काफी ठाठ को शुद्ध थाट मानते हैं।	२—बिलावल थाट को शुद्ध थाट मानते हैं।
३—सा और रे के तार की लम्बाई के तीन भाग करके सा से दूसरे भाग पर कोमल रे स्थापित करते हैं, जिसकी लम्बाई घुड़च से ३३ इञ्च होती है।	३—सा और रे के तार की लम्बाई के दो भाग करके इन दोनों स्वरों के ठीक मध्य में कोमल रे की स्थापना करते हैं, जिसकी लम्बाई घुड़च से ३४ इञ्च होती है।
४—कोमल धैवत २२ $\frac{२}{९}$ इञ्च पर स्थापित करते हैं।	४—कोमल धैवत २२ इन्च पर स्थापित करते हैं।
५—तीव्र निषाद १९ $\frac{१}{९}$ इन्च पर स्थापित करते हैं।	५—तीव्र निषाद १९ इन्च पर स्थापित करते हैं।
६—तीव्र निषाद का स्थान निकालने के लिये तीव्र ध और तार षड़ज के तार की लम्बाई के तीन भाग करके तीव्र ध से दूसरे भाग पर तीव्र नि वीणा पर करते हैं।	६—षड़ज पंचम भाव से तीव्र निषाद की लम्बाई निकाल कर वीणा पर इसका स्थान निश्चित करते हैं।
७—तीव्रतर मध्यम ३५ $\frac{१}{९}$ इन्च पर स्थापित करते हैं।	७—तीव्र मध्यम २५ $\frac{१}{२}$ इन्च पर स्थापित करते हैं।
८—कोमल रिषभ ३३ $\frac{१}{३}$ इन्च पर स्थापित करते हैं, क्योंकि इन्होंने सा और रे की लम्बाई के ३ भाग करके कोमल रे को सा से दूसरे भाग पर रक्खा है।	८—कोमल रिषभ ३४ इन्च पर स्थापित करते हैं। क्योंकि इन्होंने सा और रे की लम्बाई के २ भाग करके उनके मध्य में कोमल रिषभ माना है।

६—कोमल रे, कोमल ध और तीव्रतर म को छोड़कर बाकी सब शुद्ध और विकृत स्वर वर्तमान हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति में प्रचलित हैं।

१०-कोमल रे, तीव्रतर म और कोमल ध यह तीन स्वर सङ्गीत पारिजात तथा अन्य मध्यकालीन ग्रन्थकारों के आधार पर हैं।

६—इनके कोमल तीव्र या शुद्ध और विकृत सभी स्वर एक मत से वर्तमान हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति में प्रचलित हैं।

१०-कोमल रे तीव्र म और कोमल ध इनके यह तीनों स्वर स्थान मध्यकालीन ग्रन्थकारों से मेल नहीं खाते। यह इनके स्वय आविष्कारक हैं।

भारतीय तथा योरोपीय स्वर सम्वाद

हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति में जिन स्वरों को सा, रे, ग, म, प, ध, नि कहा जाता है, पश्चिमी (अंग्रेजी) सङ्गीत पद्धति में इन्हें Do Re Mi Fa Sol La Se कहते हैं उन्होंने अपने निर्धारित स्वर स्टैंडर्ड के लिये सप्त स्वरों के संक्षिप्त नाम या इशारे इस प्रकार कायम किये हैं।

C D E F G A B इन स्वर संकेतों के आधार पर ही पश्चिमी तथा अन्य देशों के सङ्गीत कलाकार (Artist) अपने-अपने वाद्य (Music Instrument) तैयार करते हैं।

अंग्रेजी के उपरोक्त स्वरों की तुलना यदि हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति के स्वरों से की जावे तो दोनों में काफी अन्तर दिखाई देता है। यद्यपि पश्चिमी सङ्गीतज्ञ अपने ७ स्वरों को हमारी सङ्गीत पद्धति के लगभग बिलावल थाट अर्थात् शुद्ध स्वर सप्तक के समान मानते हैं, फिर भी हमारे और उनके स्वरों की आन्दोलन संख्या में कुछ अन्तर दिखाई पड़ता है। इसका कारण यह है कि हमारे और उनके स्वरान्तर अलग-अलग हैं।

वे अपने सात स्वरों को तीन भागों में विभाजित करते हैं (१) मेजरटोन Major-Tone (२) माइनरटोन Minor Tone (३) सेमीटोन Semi Tone। पश्चिमी विद्वानों ने अपने सात स्वरों का परस्पर अन्तर अर्थात स्वरान्तर निकाल कर उनकी आन्दोलन संख्या निश्चित की है, इनके स्वरान्तर (फासिले) इस प्रकार हैं —

C–D	D–E	E–F	F–G	G–A	A–B	B–C
९/८	१०/९	१६/१५	९/८	१०/९	९/८	१६/१५

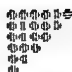
इन स्वरान्तरों में पहला, चौथा और छटा स्वरान्तर मेजरटोन दूसरा और पांचवा स्वरांतर माइनरटोन तथा तीसरा और सातवा स्वरान्तर सेमीटोन कहलाता है।

उपरोक्त स्वरान्तरों के द्वारा ही पश्चिमी सङ्गीत पण्डितों ने स्वरों की आन्दोलन संख्या इस प्रकार निश्चित की है —

पश्चिमी स्वर	हिन्दुस्थानी में उनके स्वर नाम	पश्चिमी आंदोलन संख्या	हिन्दुस्थानी आंदोलन संख्या (मंजरीकार)
C	सा (अचल)	२४०	२४०
	रे॒ कोमल	२५६	२५४ २/१७
D	रे तीव्र	२७०	२७०
	ग॒ कोमल	२८८	२८८
E	ग तीव्र	३००	३०१ १७/४३
F	म कोमल	३२०	३२०
	मं तीव्र	३३७ १/२	३३८ १४/१७
G	प (अचल)	३६०	३६०
	ध॒ कोमल	३८४	३८१ ३/१७
A	ध तीव्र	४००	४०५
	नि॒ कोमल	४३२	४३२
B	नि तीव्र	४५०	४५२ ४/४३
C	सां (तार)	४८०	४८०

उपरोक्त नकशे से यह स्पष्ट है कि पश्चिमी विद्वानों द्वारा निर्धारित किये हुए रे॒ कोम ग तीव्र, मं तीव्र ध॒ कोमल, ध तीव्र तथा नि तीव्र इन ६ स्वरों के आन्दोलन मंजरी अथवा हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति के आंदोलनों से मेल नहीं खाते। केवल सा अचल, रे ती ग॒ कोमल, म कोमल, प अचल और नि॒ कोमल के स्वरान्दोलन ही हमारी पद्धति से ठीक-ट मिलते हैं।

नोट:—कुछ सङ्गीत विद्वानों का मत है कि अँग्रेजी स्वरों में से E को सा मान ही सप्तक कायम करनी चाहिये।


आठ


थाट पद्धति का विकास

१५ वी शताब्दी के अन्तिम काल मे रागतरंगिणी के लेखक लोचन कवि ने रागों के वर्गीकरण की परम्परागत शैली ग्राम और मूर्च्छना का परिमार्जन करके मेल अथवा थाट को सामने रक्खा। इस समय तक लोचन कवि के लेखानुसार १६०० राग थे जिन्हे गोपिया कृष्ण के सामने गाया करती थीं, किन्तु उनमे से ३६ राग प्रसिद्ध थे। उन्होंने इन सब बखेडों को समाप्त करके १२ थाट या मेल इस प्रकार कायम किये —

१-भैरवी २-टोडी ३-गौरी ४-कर्नाट ५-केदार ६-इमन ७-सारग ८-मेघ ९-धनाश्री १०-पूर्वी ११-मुरारी १२-दीपक।

लोचन के मेल थाटों की अन्य राग व्यवस्था इस प्रकार है:—

१-भैरवी —१-भैरवी २-नीलाम्बरी।

२-तोडी —१-तोड़ी।

३-गौरी —१-मालव २-श्री गौरी ३-चैती गौरी ४-पहाडी गौरी ५-देशी तोडी ६-देशिकार ७-गौर ८-त्रिवण ९-मुल्तानी १०-धनाश्री ११-बसत १२-रामकरी १३-गुर्जरी १४-बहुली १५-रेवा १६ भटियार १७-पट १८-पचम १९-जयतश्री २०-आसावरी २१-देवगधार २२-सैंधव्यासावरी २३-गुणकरी।

४-कर्णाट—१-कानर २-बागीश्वरी कानर ३-रम्भावती ४-सोरट ५-परज ६-मारू ७-जैजयती ८-ककुभा ९-कामोद १०-कामोदी ११-गौर १२-मालकौशिक १३-हिंडोल १४-सुघराई १५-अडाणा १६-गौर कानर १७-श्री राग।

५-केदार —१-केदारनाट २-आभीरनाट ३-रम्भावती ४-शकराभरण ५-विहागरा ६-हम्मीर ७-श्याम ८-छायानाट ९-भूपाली १०-भीमपलासका ११-कौशिक १२-मारू।

६-इमन —१-इमन २-शुद्धकल्याण ३-पूरिया ४-जयतकल्याण।

७-सारग —१-सारग २-पटमजरी ३-वृन्दावनी ४-सामत ५-बड़हमक।

८-मेघ —१-मेघमल्लार २-गौडसारग ३-नाट ४-वेलावली ५-अलैया ६-सुहू ७-देशी सुहु ८-देशाख्य ९-शुद्ध नाट।

९-धनाश्री –१-धनाश्री २ ललित।

१०-पूर्वी —१-पूर्वी।

११-मुरारी –१-मुरारी।

लोचन के बाद बहुत समय तक मेल या थाट के बारे में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। १६५५ ई० के लगभग श्री हृदयनारायण देव ने लोचन के उक्त थाटों के वर्गीकरण की पुष्टि करते हुए इस प्रकार व्याख्या की:—

१—भैरवी- शुद्ध स्वर 'सांशन्यासा च सम्पूर्णा षड्जादिर्भैरवीभवेत्।

२—कर्नाट—'कर्णाटस्त्रय सम्पूर्णः षड्जादिः परिकीर्तित': ॥

३—मुखारी-कोमल धैवत 'ध कोमला मुखारी स्यात्पूर्णाधादिक मूर्धना।'

४—टोड़ी —कोमलर्षभधैवतो, तीव्रतरगांधारनिषादौ च।
कोमलर्षभधा पूर्णा गांशा तोड़ी निरूप्यते॥

५—केदार—गांधार और निषाद।

६—यमन —तीव्रतर गान्धार, धैवत और निषाद।

७—मेघ—

८—हृदयराम—तीव्रतम गांधार, मध्यम और निषाद
'गस्यतीव्रतमत्वेऽथ तथा तीव्रतमौ मनी।
इहैवोत्प्रेक्षिता पूर्णा हृदयाद्यारिभोच्यते॥'

९—गौरी—
१०-सारंग—
११-पूर्वा—
१२-धनाश्री—

सत्रहवीं शताब्दी में थाटों के अन्तर्गत रागों का वर्गीकरण प्रचार में आगया था जो उस समय के प्रसिद्ध ग्रन्थ सङ्गीत पारिजात और रागविबोध से स्पष्ट है। इसी काल में श्रीनिवास ने मेल की परिभाषा करते हुए बताया कि राग की उत्पत्ति थाट से होती है और थाट के तीन रूप हो सकते हैं औड़व, षाड़व और संपूर्ण। उसके पश्चात सत्रहवीं शताब्दि के अन्त तक थाटों की संख्या में विद्वानों का विशेष मतभेद रहा। उदाहरणार्थ राग विबोध के लेखक ने थाटों की संख्या २३ बताई, स्वरमेलकलानिधि के लेखक ने २० बताये, चतुर्दण्डिप्रकाशिका के लेखक ने १९ लिखे आदि।

दक्षिणी सङ्गीत पद्धति के विद्वान लेखक पं० व्यंकटमखी ने थाटों की संख्या निश्चित करने के लिये गणित का सहारा लिया और पूर्ण रूप से हिसाब लगाकर थाटों की कुल निश्चित संख्या ७२ बताई। इसके बारे में अपने दृढ़ विश्वास के साथ उन्होंने कहा कि इस संख्या में सङ्गीत के जनक भगवान शंकर भी घटाबढ़ी नहीं कर सकते। ७२ में से व्यंकटमखी ने १९ थाट काम चलाऊ चुनलिये, जिनकी तालिका आगे दी जायगी। व्यंकटमखी की इस थाट

संख्या को दक्षिणी सङ्गीतज्ञों ने तो अपनाया किन्तु उत्तरी विद्वानों पर इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। फिर भी उत्तर भारत के सङ्गीतज्ञ थाटों की कुल निर्धारित ७२ वाली संख्या को गलत नहीं मानते। थाटों की यह संख्या अधिक होने के कारण उत्तरी पद्धति के लिये अनुकूल नहीं रही, अतः आधुनिक काल के विद्वान सङ्गीताचार्य प० विष्णुनारायण भातखंडे ने उक्त ७२ थाटों में से केवल १० थाट चुनकर समस्त प्रचलित रागों का वर्गीकरण किया, जिसे उत्तर भारतीय सङ्गीत विद्यार्थियों ने अपना कर राग-रागिनी की प्राचीन पद्धति से अपना पीछा छुड़ाया। इस प्रकार लोचन कवि से आरम्भ होकर यह थाट पद्धति चक्कर काटती हुई श्री भातखण्डे के समय में आकर वैज्ञानिक रूप में स्थिर होगई।

थाट व्याख्या

मेलः स्वरसमूहः स्याद्रागव्यञ्जनशक्तिमान्।

—अभिनवरागमञ्जरी

अर्थात्—'मेल' (थाट) स्वरों के उस समूह को कहते हैं, जिससे राग उत्पन्न हो सके। नाद से स्वर, स्वरों से सप्तक और सप्तक से थाट तैयार होते हैं।

एक सप्तक में शुद्ध विकृत (कोमल तीव्र) मिलकर कुल १२ स्वर होते हैं, यह पहले बताया ही जा चुका है। इन्हीं १२ स्वरों की सहायता से थाट तैयार होते हैं। थाट को ही संस्कृत में 'मेल' कहते हैं।

(१) यद्यपि थाट १२ स्वरों से तैयार किये गये हैं, किन्तु एक थाट में ७ स्वर ही लिये जाते हैं, यह ७ स्वर उन्हीं १२ स्वरों में से चुन लिये जाते हैं।

(२) वे सात स्वर, सा रे ग म प ध नि इसी क्रम से और इन्हीं नामों से होने चाहिये। यह हो सकता है कि उपरोक्त ७ स्वरों में कोई कोमल या कोई तीव्र लेलिया जाय, किन्तु सिलसिला यही रहेगा। राग में यह स्वर इस क्रम से हों या न हों, किन्तु थाट में इस क्रम का होना आवश्यक है। राग में ७ स्वर से कम भी हो सकते हैं, किन्तु थाट में ७ स्वरों का होना जरूरी है। अर्थात् थाट का सम्पूर्ण होना आवश्यक है, क्योंकि बहुत से ऐसे राग हैं जिनमें सातों स्वर लगते हैं, इसलिये थाट में सातों स्वरों का होना आवश्यक है, अन्यथा उनसे सम्पूर्ण जाति के राग तैयार करने में असुविधा होगी।

(३) थाट में आरोह-अवरोह दोनों का होना जरूरी नहीं है, बल्कि इसमें केवल आरोह ही होता है।

(४) थाट में एक ही स्वर के दो रूप (कोमल व तीव्र) साथ-साथ भी आ सकते हैं।

(५) थाट में रंजकता का होना आवश्यक नहीं है, यानी यह जरूरी नहीं कि थाट सुनने में कानों को अच्छा ही लगे। कारण, थाट में क्रमानुसार ७ स्वर लेने जरूरी होते हैं और कभी-कभी एक स्वर के २ स्वरूप (कोमल तीव्र) भी साथ-साथ आ सकते हैं, इसलिये प्रत्येक थाट में रंजकता का रहना सम्भव है ही नहीं।

(६) थाट को पहचानने के लिये, उसमें से उत्पन्न हुए किसी प्रमुख राग का [illegible]

उत्पन्न (पैदा) हुआ है, इसीलिये इस थाट का नाम भी "भैरव थाट" रख दिया। इसी प्रकार अन्य थाटों के नाम रखे गये हैं। प्रत्येक थाट में स्वर तो केवल ७ ही होते हैं लेकिन उनके स्वरों में कोमल तीव्र का अन्तर पड़ जाता है। इस अन्तर या फर्क से ही तरह-तरह के थाट बना लिये गये हैं।

यमन बिलावल और खमाजी, भैरव पूरवि मारुव काफी।
आसा भैरवि तोड़ि बखाने, दशमित ठाठ चतुर गुन माने ॥

चतुर पंडित की इस कविता से १० थाटों के नाम आसानी से याद हो जाते हैं। नीचे १० थाटों में लगने वाले कोमल व तीव्र स्वर दिखाये गये हैं:—

दस थाटों के सांकेतिक चिन्ह

१	यमन या कल्याण थाट—	सा	रे	ग	म॑	प	ध	नि	सां
२	बिलावल थाट—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
३	खमाज थाट—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि॒	सां
४	भैरव थाट—	सा	रे॒	ग	म	प	ध॒	नि	सां
५	पूर्वी थाट—	सा	रे॒	ग	म॑	प	ध॒	नि	सां
६	मारवा थाट—	सा	रे॒	ग	म॑	प	ध	नि	सां
७	काफी थाट—	सा	रे	ग॒	म	प	ध	नि॒	सां
८	आसावरी थाट—	सा	रे	ग॒	म	प	ध॒	नि॒	सां
६	भैरवी थाट—	सा	रे॒	ग॒	म	प	ध॒	नि॒	सा
१०	तोड़ी थाट—	सा	रे॒	ग॒	म॑	प	ध॒	नि	सां

७२ थाट कैसे बनते हैं ?

एक सप्तक के १२ स्वरों से ७२ थाट कैसे बनते है, इसे समझाते हैं।

सा रे॒ रे ग॒ ग म म॑ प ध॒ ध नि॒ नि।

इन १२ स्वरों में से कुछ देर के लिये म॑ (तीव्र मध्यम) हटा दीजिये और ऊपर की सप्तक का सां जोड़कर स्वर संख्या १२ पूरी कर लीजिये। अब यह स्वरूप होगया।

सा रे॒ रे ग॒ ग म प ध॒ ध नि॒ नि सां।

इस स्वर समुदाय के २ भाग कर दिये तो पहिले ६ स्वर वाले समुदाय का नाम पूर्वार्ध और आगे के ६ स्वरों के समुदाय को उत्तरार्ध कहेंगे।

पूर्वार्ध	उत्तरार्ध
सा रे॒ रे ग॒ ग म	प ध॒ ध नि॒ नि सां

अब यह देखिये कि प्रत्येक ६ स्वरों के समुदाय को उलट-पलट कर रखने से चार-चार स्वरों वाले कितने "मेल" बन सकते हैं। पहिले पूर्वार्ध वाले स्वर समुदाय को लेकर चलते हैं:—

पूर्वार्ध				उत्तरार्ध			
१—सा	रे	रे	म	१—प	ध	ध	सा
२—सा	रे	ग	म	२—प	ध	नि	सा
३—सा	रे	ग	म	३—प	ध	नि	सा
४—सा	रे	ग	म	४—प	ध	नि	सा
५—सा	रे	ग	म	५—प	ध	नि	सा
६—सा	ग	ग	म	६—प	नि	नि	सा

उपरोक्त प्रकारों के अलावा और कोई नवीन प्रकार का मेल इन स्वरों से नहीं बन सकता। अब इन दोनों को आपस में मिलाया गया तो ६×६=३६ थाट बने, जो निम्नलिखित हैं —

पूर्वार्ध और उत्तरार्ध के ३६ थाट—

(१)								(२)							
१—सा	रे	रे	म	प	ध	ध	सा	७—सा	रे	ग	म	प	ध	ध	सा
२—सा	रे	रे	म	प	ध	नि	सा	८—सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा
३—सा	रे	रे	म	प	ध	नि	सा	९—सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा
४—सा	रे	रे	म	प	ध	नि	सा	१०—सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा
५—सा	रे	रे	म	प	ध	नि	सा	११—सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा
६—सा	रे	रे	म	प	नि	नि	सा	१२—सा	रे	ग	म	प	नि	नि	सा
(३)								**(४)**							
१३—सा	रे	ग	म	प	ध	ध	सा	१९—सा	रे	ग	म	प	ध	ध	सा
१४—सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा	२०—सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा
१५—सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा	२१—सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा
१६—सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा	२२—सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा
१७—सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा	२३—सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा
१८—सा	रे	ग	म	प	नि	नि	सा	२४—सा	रे	ग	म	प	नि	नि	सा

(५)								(६)							
२५–सा	रे	ग	म	प	ध	ध	सां	३१–सा	ग	ग	म	प	ध	ध	सां
२६–सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	३२–सा	ग	ग	म	प	ध	नि	सां
२७–सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	३३–सा	ग	ग	म	प	ध	नि	सां
२८–सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	३४–सा	ग	ग	म	प	ध	नि	सां
२९–सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	३५–सा	ग	ग	म	प	ध	नि	सां
३०–सा	रे	ग	म	प	नि	नि	सां	३६–सा	ग	ग	म	प	नि	नि	सां

उपरोक्त पूर्वार्ध और उत्तरार्ध के मेल से उत्पन्न हुए ३६ थाटों में केवल शुद्ध मध्यम ही लिया गया है। अब अगले ३६ थाट भी इसी तरह तैयार होंगे। फर्क केवल इतना हो जायगा कि शुद्ध मध्यम की जगह उनमें तीव्र मध्यम लग जायगा। इस प्रकार ७२ थाट होजाते हैं। अर्थात् दोनों मध्यमों से ३६ × २ = ७२ थाट उत्पन्न होगये। उपरोक्त ७२ प्रकारों के अलावा अन्य कोई नवीन प्रकार इन स्वरों से नहीं बन सकता।

एक शंका—

यहां पर यह शंका होना स्वाभाविक है कि जब थाट सदैव सम्पूर्ण होता है अर्थात् उसमें सातों स्वरों का होना ज़रूरी है तो क्या कारण है कि थाट नम्बर १ में ग नि वर्जित होगया है, तथा थाट नम्बर ३१ में रे नि वर्जित होगया है, एवं अन्य कुछ थाटों में भी रे व कुछ थाटों में ग वर्जित होगया है?

इसका उत्तर यह है कि पं० व्यंकटमखी के बारहों स्वर हमारे प्रचलित १२ स्वरों के समान नहीं थे। उनमें प्रति सैकिण्ड में होने वाले आंदोलन आधुनिक १२ स्वरों के आंदोलनों से भिन्न थे। व्यंकटमखी ने थाट को सम्पूर्ण बनाने के लिये अपने स्वरों के कुछ और ही नाम रख लिये थे। जैसे—पूर्वार्ध सप्तक में हमारे यहां सा रे रे म रखा गया है उन्होंने वहां इसे सा रा गा मा इस प्रकार नाम दिया है, देखिये:—

व्यंकटमखी पंडित के कल्पित स्वरों के पूर्वार्ध—

हमारी पूर्वार्ध सप्तक				व्यंकटमखी के कल्पित नाम			
१—सा	रे	रे	म	१—सा	रा	गा	मा
२—सा	रे	ग	म	२—सा	रा	गी	मा
३—सा	रे	ग	म	३—सा	रा	गू	मा
४—सा	रे	ग	म	४—सा	री	गी	मा
५—सा	रे	ग	म	५—सा	रू	गी	मा
६—सा	ग	ग	म	६—सा	रू	गू	मा

हमारी उत्तरार्ध सप्तक				व्यंकटमखी के कल्पित नाम			
१—प	ध॒	ध	सा	१—प	धा	ना	सा
२—प	ध॒	नि॒	सा	२—प	धा	नि	सा
३—प	ध॒	नि	सा	३—प	धा	नू	सा
४—प	ध	नि॒	सा	४—प	धी	नी	सा
५—प	ध	नि	सा	५—प	धू	नी	सा
६—प	नि॒	नि	सा	६—प	धू	नू	सा

इस प्रकार स्वरों को कल्पित सञ्ज्ञाएं देकर उन्होंने थाट की सम्पूर्णता कायम रखी है। इस युक्ति से उनके ७२ थाटों में कोई भी स्वर वर्जित दिखाई नहीं देगा।

उपरोक्त ७२ थाटों में से हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति में केवल १० थाट ही प्रचलित हैं, क्योंकि इनसे ही हमारा काम भली भाति चल जाता है। इनके नाम और स्वर इस लेख के आरम्भ में बताये ही जा चुके हैं।

उत्तरी सङ्गीत पद्धति के १२ स्वरों से ३२ थाट

यह बताया जा चुका है कि व्यंकटमखी पद्धति के स्वर हमारे स्वरों के समान नहीं थे, इसलिये उन्होंने अपने स्वरों के हिसाब से ७२ थाट बनाये। किंतु यदि हम व्यंकटमखी के स्वरों पर ध्यान न देकर अपनी हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति के १२ स्वरों के अनुसार थाट रचना करें तो उनके अनुसार केवल ३२ थाट ही बनने सम्भव हैं। वह किस प्रकार बनेंगे, यह बताया जाता है।

सप्तक के पूर्वाङ्ग और उत्तराग २ भाग पहिले की तरह कर लीजिये (१) सा रे॒ रे ग॒ ग म और (२) प ध॒ ध नि॒ नि सा।

सप्तक के प्रथम भाग से				सप्तक के दूसरे भाग से			
१—सा	रे॒	ग॒	म	१—प	ध॒	नि॒	सा
२—सा	रे॒	ग	म	२—प	ध॒	नि	सा
३—सा	रे	ग॒	म	३—प	ध	नि॒	सा
४—सा	रे	ग	म	४—प	ध	नि	सा

इस प्रकार चार स्वर वाले ८ मेल बनाने के बाद अब इनको मिलाकर ७ स्वर वाले मेल बनाये जाएँ तो ४×४=१६ मेल इस प्रकार बनेंगे —

शुद्ध मध्यम वाले १६ मेल

* १— सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि॒ सां	५— सा रे॒ ग म प ध॒ नि॒ सां
२— सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि सां	* ६— सा रे॒ ग म प ध॒ नि सां
३— सा रे॒ ग॒ म प ध नि॒ सां	७— सा रे॒ ग म प ध नि॒ सां
४— सा रे॒ ग॒ म प ध नि सां	८— सा रे॒ ग म प ध नि सां
* ९— सा रे ग॒ म प ध॒ नि॒ सां	१३— सा रे ग म प ध॒ नि॒ सां
१०— सा रे ग॒ म प ध॒ नि सां	१४— सा रे ग म प ध॒ नि सां
* ११— सा रे ग॒ म प ध नि॒ सां	* १५— सा रे ग म प ध नि॒ सां
१२— सा रे ग॒ म प ध नि सां	* १६— सा रे ग म प ध नि सां

उपरोक्त १६ थाटों में शुद्ध मध्यम लगाया गया है, अब यदि हम शुद्ध की बजाय तीव्र मध्यम लगाकर बिलकुल इसी प्रकार से स्वर लिखें तो १६ मेल और बन जायेंगे।

तीव्र मध्यम वाले १६ थाट (मेल)

१— सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नि॒ सां	५— सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नि॒ सां
*२— सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नि सां	*६— सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नि सां
३— सा रे॒ ग॒ म॑ प ध नि॒ सां	७— सा रे॒ ग म॑ प ध नि॒ सां
४— सा रे॒ ग॒ म॑ प ध नि सां	*८— सा रे॒ ग म॑ प ध नि सां
९— सा रे ग॒ म॑ प ध॒ नि॒ सां	१३— सा रे ग म॑ प ध॒ नि॒ सां
१०— सा रे ग॒ म॑ प ध॒ नि सां	१४— सा रे ग म॑ प ध॒ नि सां
११— सा रे ग॒ म॑ प ध नि॒ सां	१५— सा रे ग म॑ प ध नि॒ सां
१२— सा रे ग॒ म॑ प ध नि सां	*१६— सा रे ग म॑ प ध नि सां

इस प्रकार १६ मेल शुद्ध मध्यम वाले और १६ मेल तीव्र मध्यम वाले मिलकर १६ + १६ = ३२ मेल हमारी पद्धति से बन सकते हैं और इनमें सिलसिले बार स्वरों में से कोई स्वर भी नहीं छूटा तथा एक स्वर के दो रूप पास-पास भी नहीं आये।

* उपरोक्त ३२ मेलों में फूल के निशान वाले हमारे प्रचलित १० थाट भी मौजूद हैं। देखिये:—

शुद्ध मध्यम वाले १६ मेलों मे—	तीव्र मध्यम वाले १६ मेलों मे —
न० १ पर भैरवी थाट	२ पर तोड़ी थाट
न० ६ पर भैरव थाट	६ पर पूर्वी थाट
न० ८ पर आसावरी थाट	८ पर मारवा थाट
न० ११ पर काफी थाट	१६ पर कल्याण थाट
न० १५ पर खमाज थाट	
न० १६ पर विलावल थाट	

यद्यपि हमारी पद्धति से उपरोक्त ३२ थाट ही सम्भव हैं, फिर भी व्यंकटमखी के ७२ थाट का सिद्धान्त इसलिये मानना पडता है कि इसके आविष्कारक व्यंकटमखी पंडित ही थे और उन्होंने अपने देश की अर्थात् कर्नाटकी पद्धति के स्वरों से ७२ थाट बनाने का जो सिद्धान्त सब से पहले ईजाद किया, गणित के अनुसार वह बिलकुल ठीक था। किन्तु उन्होंने ७२ थाटों में से १६ थाट अपना काम चलाने को ऐसे चुन लिये जिनमे दक्षिणी रागों का वर्गीकरण किया जा सकता था। इसी प्रकार उत्तरीय विद्वानों ने उपरोक्त ७२ थाटों में से ३२ थाट ऐसे चुने जिनके अन्तर्गत उत्तरीय हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति के रागो का वर्गीकरण सम्भव हो सकता था। फिर अपना काम चलाने के लिये ३२ में से केवल १० थाट उत्तरीय सङ्गीत मे चालू रक्खे गये, जो आजतक प्रचलित हैं।

इन १० थाटों को भी ३ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है —

प्रथम वर्ग

कल्याण
विलावल
खमाज } — रे, ध, ग, शुद्ध वाले रागों के लिये

दूसरा वर्ग

भैरव
पूर्वी
मारवा } — रे॒ कोमल तथा ग, नि शुद्ध वाले रागो के लिये

तीसरा वर्ग

काफी
भैरवी
आसावरी
तोडी } — ग॒, नि॒ कोमल वाले रागों के लिये

इस प्रकार इन १० थाटों के अन्तर्गत हमारे प्रत्येक समय के राग आ सकते हैं इसीलिये भातखण्डे जी ने १० थाट लेकर शेष सब थाट विदेशीय समझ कर छोड दिये।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के १० थाट

और

उनसे उत्पन्न कुछ राग

(१) कल्याण थाट के राग

१–यमन २–भूपाली ३–शुद्ध कल्याण ४–चन्द्रकान्त ५–जयतकल्याण ६–मालश्री ७–हिन्दोल ८–हमीर ९–केदार १०–कामोद ११–श्याम १२–छायानट १३–गौडसारङ्ग।

(२) बिलावल थाट के राग

१–बिलावल शुद्ध २–अल्हैया बिलावल ३–शुक्लबिलावल ४–देवगिरी ५–यमनी ६–ककुभ ७–नटबिलावल ८–लच्छासाख ९–सरपर्दा १०–विहाग ११–देशकार १२–हेमकल्याण, १३–नटराग १४–पहाड़ी १५–मांड १६–दुर्गा १७–सलुहा १८–शंकरा, इत्यादि।

(३) खमाज थाट के राग

१–झिंझोटी २–खमाज ३–द्वितीय दुर्गा ४–तिलंग ५–रागेश्वरी ६–खम्बावती ७–गारा ८–सोरठी ९–देस १०–जैजैवन्ती ११–तिलककामोद, इत्यादि

(४) भैरव थाट के राग

१–भैरव २–रामकली ३–बंगाल भैरव ४–सौराष्ट्रटंक ५–प्रभात ६–शिवभैरव ७–आनन्द भैरव ८–अहीर भैरव ९–गुणकली १०–कालिङ्गड़ा ११–जोगिया १२–विभास १३–मेघरंजनी, इत्यादि।

(५) पूर्वी थाट के राग

१–पूर्वी २–पूर्याधनाश्री ३–जेताश्री ४–परज ५–श्रीराग ६–गौरी ७–मालवी ८–त्रिवेणी ९–टंकी १०–बसन्त, इत्यादि।

(६) मारवा थाट के राग

१–मारवा २–पूरिया ३–जेत ४–मालीगौरा ५–साजगिरी ६–वराटी ७–ललित ८–सोहनी ९–पचम १०–भटियार ११–विभास १२–भग्गार इत्यादि ।

(७) काफी थाट के राग

१–काफी २–सैंधवी ३–सिंदूरा ४–धनाश्री ५–भीमपलासी ६–बानी ७–पटमजरी ८–पटदीपकी ९–हसकरणी १०–पीलू ११–बागेश्वरी १२–सहाना १३–सूहा १४–सुघराई १५–नायकीकान्हरा १६–देवसाग १७–बहार १८–वृन्दावनीसारङ्ग १९–मध्यमादिसारङ्ग २०–सामतसारङ्ग २१–शुद्धसारङ्ग २२–मियासारङ्ग २३–बडहमसारङ्ग २४–शुद्धमल्लार २५–मेघ २६–मियामल्हार २७–सूरमल्लार २८–गौडमल्लार, इत्यादि ।

(८) सावरी थाट के राग

१–आसावरी २–जौनपुरी ३–देवगान्धार ४–सिंधुभैरवी ५–देसी ६–पटराग ७–कौशिककानडा ८–दरबारीकान्हडा ९–अडाणा १०–द्वितीय नायकी, इत्यादि ।

(९) भैरवी थाट के राग

१–भैरवी २–मालकौंस ३–आसावरी ४–धनाश्री ५–बिलासखानीतोडी, इत्यादि ।

(१०) तोड़ी थाट के राग

१–तोडी (१४ प्रकार की) २–मुलतानी इत्यादि ।

यद्यपि उपरोक्त १० थाटों द्वारा और भी बहुत से राग उत्पन्न होते हैं, किन्तु यहा खास–खास प्रचलित रागों का ही उल्लेख किया गया है ।

व्यंकटमखी पंडित के ७२ मेल (थाट)

१—कनकाम्बरी	२५—शरावती	४९—धवलाङ्ग
२—फेनद्युति	२६—तरङ्गिणी	५०—नामदेशी
३—सामवराली	२७—सौरसेना	५१—रामक्रिया
४—भानुमती	२८—केदारगौल	५२—रमामनोहरी
५—मनोरंजनी	२९—शंकराभरण	५३—गमकक्रिया
६—तनुकीर्ति	३०—नागाभरण	५४—वन्शावती
७—सेनाग्रणी	३१—कलावती	५५—शामला
८—तोड़ी	३२—चूड़ामणि	५६—चामरा
९—भिन्नषड्ज	३३—गंगातरंगिणी	५७—समद्युति
१०—नटाभरण	३४—छायानाट	५८—सिंहरव
११—कोकिलरव	३५—देशाक्षी	५९—धामवती
१२—रूपवती	३६—चलनाट	६०—नैषध
१३—हेजुज्जी	३७—सौगन्धिनी	६१—कुन्तल
१४—बसन्त भैरवी	३८—जगमोहिनी	६२—रविप्रिया
१५—मायामालवगौल	३९—वरालिका	६३—गीतप्रिया
१६—वेगवाहिनी	४०—नभोमणी	६४—भूषावती
१७—छायावत	४१—कुम्भिनी	६५—शान्तकल्याण
१८—शुद्ध मालवी	४२—रविक्रिया	६६—चतुरङ्गिणी
१९—झंकार भ्रमरी	४३—गीर्वाणी	६७—सन्तानमंजरी
२०—रीतिगौल	४४—भवानी	६८—ज्योति
२१—किरणावली	४५—शैवपन्तुवराली	६९—धौतपंचम
२२—श्रीराग	४६—स्तवराज	७०—नासामणि
२३—गौरि वेलावली	४७—सौवीरा	७१—कुसुमाकर

व्यकटमखी पडित के १६ थाट (मेलं) और उनके स्वर

थाट नाम	सा	रि	ग	म	प	ध	नि
१—मुखारी	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध
२—सामवराली	"	"	साधारण	"	"	"	काकली
३—भूपाल	"	"	"	"	"	"	कैशिक
४—हेजुज्जी	"	"	अन्तर	"	"	"	शुद्ध
५—वसन्त भैरवी	"	"	"	"	"	"	कैशिक
६—गौल	"	"	"	"	"	"	काकली
७—भैरवी	"	पचश्रुति	साधारण	"	"	"	कैशिक
८—आहीरी	"	"	"	"	"	"	"
६—श्री	"	"	"	"	"	पचश्रुति	"
१०—काम्भोजी	"	"	अन्तर	"	"	"	"
११-शकरा भरण	"	"	"	"	"	"	काकली
१२-सामत	"	"	"	"	"	षटश्रुति	"
१३-देशाक्षी	"	षटश्रुति	"	"	"	पचश्रुति	"
१४-नाट	"	"	"	"	"	षटश्रुति	"
१५-शुद्ध वराली	"	शुद्ध	शुद्ध	वराली	"	शुद्ध	"
१६-पतुवराली	"	"	साधारण	"	"	"	"
१७-शुद्धरामक्रिया	"	"	अन्तर	"	"	"	"
१८-सिंहरव	"	पचश्रुति	साधारण	"	"	पचश्रुति	कैशिक
१६-कल्याणी	"	"	अन्तर	"	"	"	काकली

पं० व्यंकटमखी के जनकमेल तथा जन्यराग

"चतुर्दण्डिप्रकाशिका" में पं० व्यंकटमखी के १६ थाटों से उत्पन्न हुए रागों की नामावली इस प्रकार दीगई है:—

जनक मेल	जन्य राग
१ मुखारी	१ मुखारी
२ सामवराली	१ सामवराली
३ भूपाल	१ भूपाल २ भिन्नषड्ज
४ वसन्त भैरवी	१ वसंत भैरवी
५ गौल	१ गौल २ गुंडक्रिया ३ सालंगनाट ४ नादरामक्रिया ५ ललिता ६ पाडी ७ गुर्जरी ८ वहुली ६ मल्लहरी १० सावेरी ११ छायागौल १२ पूर्वगौल १३ कर्णाटक १४ बंगाल १५ सौराष्ट्र
६ आहीरी	१ आभेरी २ हिन्दोलवसन्त
७ भैरवी	१ भैरवी २ हिंदोल ३ आहीरी ४ घंटारव ५ रीतिगौल
८ श्रीराग	१ श्री २ सालगभैरवी ३ धन्यासी ४ मालवश्री ५ देवगांधार ६ आंधाली ७ वेलावली ८ कन्नडगौल
९ हेजुज्जी	१ हेजुज्जी २ रेवगुप्ति
१० कांभोजी	१ कांभोजी २ केदारगौल ३ नारायणगौल
११ शंकराभरण	१ शंकराभरण २ आरभी ३ नागध्वनि ४ साम ५ शुद्धवसन्त ६ नारायणदेशाक्षी ७ नारायणी
१२ सामन्त	१ सामन्त
१३ देशाक्षी	१ देशाक्षी
१४ नाट	१ नाट
१५ शुद्धवराली	१ वराली
१६ पंतुवराली	१ पन्तुवराली
१७ शुद्धरामक्रिया	१ शुद्धरामक्रिया
१८ सिंहरव	१ सिंहरव
१९ कल्याणी	१ कल्याण

रागलक्षणम् के ७२ कर्नाटकी मेल

पण्डित व्यंकटमखी के बाद कर्नाटकी सङ्गीत की एक पुस्तक "रागलक्षणम" और लिखी गई, उसके लेखक ने भी ७२ थाट मानकर उनमें लगभग ५०० जन्य रागों की उत्पत्ति बताई है। इस ग्रन्थ के अनुसार ७२ थाट आजकल कर्नाटकी सङ्गीत पद्धति में प्रचलित हैं। इसे वे अपना आधार ग्रथ मानते हैं।

राग लक्षणम के लेखक के स्वरों में और व्यंकटमखी के स्वर नामों में कहीं-कहीं अन्तर पाया जाता है। नीचे की तालिका में हम अपने प्रचलित हिन्दुस्तानी पद्धति के १२ स्वरों के साथ-साथ व्यंकटमखी और राग लक्षणम् के स्वर दिखाते हैं।

हिन्दुस्तानी स्वर	व्यंकटमखी के स्वर	रागलक्षणम् के स्वर
१—सा	सा	सा
२—रे॒ (कोमल)	शुद्ध रि	शुद्ध रि
३—रे (शुद्ध)	पचश्रुति रि या शुद्ध ग	चतुश्रुति रि या शुद्ध ग
४—ग॒ (कोमल)	षट श्रुति रि या साधारण ग	षट श्रुति रि या साधारण ग
५—ग (शुद्ध)	अन्तर ग	अन्तर ग
६—म (शुद्ध)	शुद्ध म	शुद्ध म
७—मं (तीव्र)	प्रति म या वराली म	प्रति म
८—प	प	प
९—ध॒ (कोमल)	शुद्ध ध	शुद्ध ध
१०—ध (शुद्ध)	पच श्रुति ध या शुद्ध नि	चतुश्रुति ध या शुद्ध नि
११-नि॒ (कोमल)	षटश्रुति ध या कैशिक नि	षटश्रुति ध या कैशिक नि
१२-नि (शुद्ध)	काकली नि	काकली नि

अब आगे की तालिका में रागलक्षणम ग्रन्थ के अनुसार ७२ मेल नाम और स्वरों सहित दिये जाते हैं। इसमें आरम्भ के ३६ मेल शुद्ध मध्यम वाले हैं और उसके बाद के ३६ मेल प्रति मध्यम वाले हैं।

रागलक्षणम्—(कर्नाटकी पद्धति) के ७२ थाट (मेल) और उनके स्वर

(शुद्ध मध्यम वाले ३६ मेल)

थाट (मेल) नाम	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
१—कनकांगी	सा	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	प	शुद्ध	शुद्ध.
२—रत्नागी	,,	,,	,,	,,	,,	,,	कै.
३—गानमूर्ति	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का
४—वनस्पति	,,	,,	,,	,,	,,	च.	कै.
५—मानवती	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का
६—तानरूपी	,,	,,	,,	,,	,,	ष.	,,
७—सेनावती	,,	,,	साधारण	,,	,,	शु.	शु.
८—हनुमत्तोड़ी	,,	,,	,,	,,	,,	,,	कै.
९—धेनुका	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
१०—नाटकप्रिय	,,	,,	,,	,,	,,	च.	कै.
११—कोकिलप्रिय	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
१२—रूपवती	,,	,,	,,	,,	,,	ष.	,,
१३—गायकप्रिय	,,	,,	,,	,,	,,	शु.	शु.
१४—बकुलाभरण	,,	,,	,,	,,	,,	,,	कै.
१५—मायामालवगौल	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
१६—चक्रवाल	,,	,,	,,	,,	,,	च.	कै.
१७—सूर्यकांत	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
१८—हाटकांवरी	,,	,,	,,	,,	,,	ष.	,,
१९—झंकार ध्वनि	,,	च.	साधारण	,,	,,	शु.	शु.
२०—नट भैरवी	,,	,,	,,	,,	,,	,,	कै.

२१–कीरवाणी	सा	शुद्ध	साधारण	शुद्ध	प	शु	का
२२–खरहरप्रिय	"	"	"	"	"	च	कै
२३–गौरीमनोहरी	"	"	"	"	"	"	का
२४–वरुणप्रिय	"	"	"	"	"	प	"
२५–माररजनी	"	"	अन्तर	"	"	शु	शु
२६–चारुकेशी	"	"	"	"	"	"	कै
२७–सागी	"	"	"	"	"	"	का
२८–हरिकाभोजी	"	"	"	"	"	च	कै
२९–धीरशकराभरण	"	"	"	"	"	"	का
३०–नागानन्दिनी	"	"	"	"	"	प	"
३१–यागप्रिया	"	प शु	"	"	"	शु	शु
३२–रागवर्धिनी	"	"	"	"	"	"	कै
३३–गांगेयभूषणा	"	"	"	"	"	"	का
३४–वागधीश्वरी	"	"	"	"	"	च	कै
३५–शूलिनी	"	"	"	"	"	"	का
३६–चलनाट	"	"	"	"	"	प	"

(शुद्ध मध्यम वाले ३६ मेल)

३७–सालग	सा	शु	शुद्ध	प्रति	"	शु	शु
३८–जलार्णव	"	"	"	"	"	"	कै
३९–झालवराली	"	"	"	"	"	"	का
४०–नवनीत	"	"	"	"	"	च	कै
४१–पावनी	"	"	"	"	"	"	का
४२–रघुप्रिय	"	"	"	"	"	प	"
४३–गवाम्बोधी	"	"	साधारण	"	"	शु	श

४४–भवप्रिय	सा	शुद्ध	साधारण	प्रति	,,	शु.	कै.
४५–शुभपन्तुवराली	,,	,,	,,	,,	,,	शु.	का.
४६–षड्विधमार्गिणी	,,	,,	,,	,,	,,	च.	कै.
४७–सुवर्णाङ्गी	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
४८–दिव्यमणि	,,	,,	,,	,,	,,	ष.	,,
४९–धवलाम्बरी	,,	,,	अन्तर	,,	,,	शु.	शु.
५०–नामनारायणी	,,	,,	,,	,,	,,	,,	कै.
५१–कामवर्धनी	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
५२–रामप्रिय	,,	,,	,,	,,	,,	च.	कै.
५३–गमनश्रिय	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
५४–विश्वम्भरी	,,	,,	,,	,,	,,	ष.	,,
५५–श्यामलांगी	,,	च.	साधारण	,,	,,	शु.	शु.
५६–षण्मुखप्रिय	,,	,,	,,	,,	,,	,,	कै.
५७–सिंहद्रमध्यम	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
५८–हेमवती	,,	,,	,,	,,	,,	च.	कै.
५९–धर्मवती	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
६०–नीतिमणी	,,	,,	,,	,,	,,	ष.	,,
६१–कांतामणी	,,	,,	अन्तर	,,	,,	शु.	शु.
६२–ऋषभप्रिय	,,	,,	,,	,,	,,	,,	कै.
६३–लतांगी	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
६४–वाचस्पति	,,	,,	,,	,,	,,	च.	कै.
६५–मेचकल्याणी	,,	,,	,,	,,	,,	,,	का.
६६–चित्राम्बरी	,,	,,	,,	,,	,,	ष.	,,
६७–सुचरित्र	,,	ष.	,,	,,	,,	शु.	शु.

६८–ज्योति स्वरूपिणी	सा	शुद्ध	अन्तर	प्रति	”	शु	कै
६९–धातुवर्धिनी	”	”	”	”	”	”	का
७०–नासिका	”	”	”	”	”	च	कै
७१–कोसल	”	”	”	”	”	”	का
७२–रसिकप्रिया	”	”	”	”	”	प.	”

इन ७२ थाटों से लगभग ५०० रागों की उत्पत्ति भी बताई गई है। उपरोक्त तालिका में स्वरों के संक्षिप्त इशारे इस प्रकार समझिये —

शु — शुद्ध
प — पटश्रुतिक
च — चतु श्रुतिक
कै — कौशिक निषाद
का — काकली निषाद
साधारण—साधारण गंधार
अन्तर— अन्तर गन्धार
प्रति — प्रति मध्यम

राग लक्षणम के ७२ थाटों की जो तालिका ऊपर दी गई है, उसमें अपने हिन्दुस्थानी पद्धति के १० थाट भी मिलते हैं, उनके नाम और नम्बर इस प्रकार हैं —

हिन्दुस्थानी १० थाट	दक्षिणी पद्धति के मेल व नम्बर	
१ कल्याण	मेच कल्याणी	६५
२ बिलावल	धीर शंकराभरण	२९
३ खमाज	हरि काम्भोजी	२८
४ भैरव	मायामालवगौल	१५
५ पूर्वी	कामवर्धिनी	५१
६ मारवा	गमनप्रिय	५३
७ काफी	खरहरप्रिय	२२
८ आसावरी	नट भैरवी	२०
९ भैरवी	हनुमत्तोडी	८
१० तोडी	शुभपन्तुवराली	४५

स्थान

नाद अर्थात आवाज़ की ऊँचाई और नीचाई के आधार पर उसके मन्द्र, मध्य और तार ऐसे तीन भेद माने जाते हैं। इनको "नाद स्थान" (Voice Register) कहते हैं। इन तीन नाद स्थानों में एक-एक सप्तक मानकर क्रमशः मन्द्र सप्तक, मध्य सप्तक और तार सप्तक कहलाते हैं। इस प्रकार ३ सप्तक होती हैं। यथा:—

प्रथमं सप्तकं मन्द्रं द्वितीयं मध्यमं स्मृतम्।
तृतीयं तारसंज्ञं स्यादवं स्थानत्रयं मतम्॥

—अभिनवरागमंजरी

अर्थात्—पहिली सप्तक को मन्द्र, दूसरी को मध्य और तीसरी सप्तक को तार सप्तक कहते हैं। इस प्रकार तीन सप्तक मानी गई हैं।

सप्तक

सप्तक—का अर्थ है सात। क्योंकि एक स्थान पर ७ शुद्ध स्वर निवास करते हैं, अतः इसका नाम 'सप्तक' हुआ।

ध्वनि की साधारण ऊँचाई में जब मनुष्य बात करता है अथवा आ ऽ ऽ ऽ इस प्रकार आलाप लेता है, उसे 'मध्य सप्तक' कहते हैं, किन्तु जब कभी गाने बजाने में नीचे को आवाज़ ले जाने की आवश्यकता होती है, वहां पर "मन्द्र सप्तक" के स्वर काम देते हैं और जब मध्य सप्तक से भी ऊंचा गाने की आवश्यकता पड़ती है, तब "तार सप्तक" के स्वर स्तैमाल किये जाते हैं।

मन्द्र सप्तक के स्वरों को बोलने या गाने में हृदय पर, मध्य सप्तक के स्वरों को बोलने में कण्ठ पर और तार सप्तक के स्वरों का व्यवहार करने पर तालू पर ज़ोर लगाना पड़ता है।

मन्द्र सप्तक—जिस सप्तक के स्वरों की आवाज़ सबसे नीची हो, अथवा मध्य सप्तक से आधी हो, उसे मन्द्र सप्तक कहते हैं, भातखंडे पद्धति में इसके स्वरों की पहिचान यह है:—

सा़ रे़ ग़ म़ प़ ध़ नि़ (मन्द्र सप्तक)

मध्य सप्तक—मन्द्र सप्तक से दुगुनी आवाज़ होने पर मध्य सप्तक कहलाता है। मध्य का अर्थ है बीच, यानी न अधिक नीचा न अधिक ऊंचा। इसके स्वरों पर कोई चिन्ह नहीं होता।

सा रे ग म प ध नि (मध्य सप्तक)

तार सप्तक—मध्य सप्तक से दुगुनी ऊँची आवाज होने पर तार सप्तक कहलाता है। इसे उच्च सप्तक भी कहते हैं। इसकी पहिचान के लिये स्वरों के ऊपर एक बिन्दु लगा दिया जाता है, जैसे:—

सां रें गं मं पं धं निं (तार सप्तक)

नोट—यद्यपि एक सप्तक में ७ स्वर कहे गये हैं, किन्तु पिछले पृष्ठों मे बताया जाचुका है कि कोमल-तीव्र रूप करके स्वरों की संख्या एक सप्तक मे १२ हो जाती है, देखिये बारह-बारह स्वरों की इस प्रकार तीन सप्तक होती हैं —

सा रे रे ग ग म मं प ध ध नि नि	मन्द्र सप्तक
सा रे रे ग ग म मं प ध ध नि नि	मध्य सप्तक
सा रें रें गं गं मं मं पं धं धं निं निं	तार सप्तक

वर्ण

गान क्रियोच्यते वर्णः स चतुर्धा निरूपितः ।
स्थाय्यारोह्यवरोही च सचारीत्यथ लक्षणम् ॥

—अभिनवरागमंजरी

अर्थात्—गाने की जो क्रिया है उसे वर्ण कहते हैं। वर्ण ४ प्रकार के होते हैं जिन्हें (१) स्थायी, (२) आरोही, (३) अवरोही और (४) संचारी वर्ण कहते हैं।

(१) स्थायी वर्ण—एक ही स्वर बारम्बार ठहर-ठहर कर बोलने या गाने की क्रिया को स्थायी वर्ण कहते हैं, जैसे—सा सा सा सा, रे रे रे रे या ग ग ग ग। स्थायी का अर्थ है ठहरा हुआ।

(२) आरोही वर्ण—नीचे स्वर से ऊँचे स्वरों तक चढने या गाने की क्रिया को आरोही वर्ण कहते हैं। जैसे हम षडज से आगे स्वर बोलते हैं—सा रे ग म प ध नि यह आरोही वर्ण हुआ।

(३) अवरोही वर्ण—ऊँचे स्वर से नीचे स्वरों पर आने या गाने की क्रिया को अवरोही वर्ण कहते हैं। जैसे षड्ज स्वर से नीचे के स्वर बोलते हैं तो सा नि ध प म ग रे सा यह अवरोही वर्ण हुआ।

(४) संचारी वर्ण—स्थायी, आरोही और अवरोही उपरोक्त तीनों वर्णों के संयोग यानी मिलावट से जब स्वरों की उलट-पलट की जाती है, अर्थात् जब तीनों वर्ण मिलकर अपना रूप दिखाते हैं, तब इस क्रिया को संचारी वर्ण कहते हैं।

नोट—गाते बजाते समय उपरोक्त चारों वर्ण काम मे लाये जाते हैं। कोई गायक जब गाना गा रहा हो तो उसके गाने में उपरोक्त चारों वर्ण अवश्य ही मिलेंगे, क्योंकि इनके बिना गायन क्रिया चल नहीं सकती।

अलंकार

प्राचीन ग्रंथकार 'अलंकार' की परिभाषा इस प्रकार करते हैं:—

विशिष्टवर्णसंदर्भमलंकारं प्रचक्षते ।

अर्थात कुछ नियमित वर्ण समुदायों को अलंकार कहते हैं।

अलंकार का अर्थ है आभूषण या गहना। जिस प्रकार आभूषण शारीरिक शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार अलंकारों के द्वारा गायन की शोभा बढ़ जाती है। 'अभिनवरागमंजरी' में लिखा है:—

शशिना रहितेव निशा विजलेव नदी लता विपुष्पेव ।
अविभूषितेव कांता गीतिरलंकारहीना स्यात् ॥

अर्थात—जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि, जल के बिना नदी, बिना फूलों के लता एवं बिना आभूषणों के स्त्री शोभा नहीं देती, उसी प्रकार अलंकार बिना गीत भी शोभा को प्राप्त नहीं होते।

अलंकारों को पल्टे भी कहते हैं। गायन सीखने से पहिले विद्यार्थियों को अलंकार सिखाये जाते हैं, क्योंकि इनके बिना न तो अच्छा स्वर ज्ञान ही होता है और न उन्हें आगे संगीतकला में सफलता ही मिलती है। अलंकारों से राग विस्तार में भी काफी सहायता मिलती है। अलंकारों के द्वारा राग की सजावट करके उसमें चार चाँद लगाये जा सकते हैं। तान इत्यादि भी अलंकारों के आधार पर ही बनती हैं, जैसे सारे गरे गम गम पऽ। रेग रेग मप मप धऽ। इत्यादि।

अलंकार 'वर्ण समुदायों' में ही होते हैं। उदाहरण के लिये एक वर्ण समुदाय को लीजिये, सा रे ग सा इसमें आरोही और अवरोही दोनों वर्ण आगये हैं। यह एक सीढी मान लीजिये, अब इसी आधार पर आगे बढ़िये, और पिछला स्वर छोड़कर आगे का स्वर बढ़ाते जाइये, रे ग म रे यह दूसरी सीढ़ी हुई, ग म प ग यह तीसरी सीढ़ी हुई, इसी प्रकार बहुत से अलंकार तैयार किये जा सकते हैं। शुद्ध स्वरों के अलावा कोमल तीव्र स्वरों के अलंकार भी तैयार किये जा सकते हैं, किन्तु उनमें यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि जिस राग में जो स्वर लगते हैं, वे ही स्वर उस राग के अलंकारों में लिये जावें।

राग—

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः ।
रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधै ॥

—सङ्गीतरत्नाकर

अर्थात्—ध्वनि की वह विशिष्ट रचना जिसमें स्वर तथा वर्णों के कारण सौन्दर्य होता है, जो मनुष्य के चित्त का रंजन करे यानी जो श्रोताओं के मन को प्रसन्न करे बुद्धिमान लोग उसे "राग" कहते हैं।

राग में निम्नलिखित बातों का होना जरूरी है:—

(१) राग किसी थाट से उत्पन्न होना चाहिए।

(२) ध्वनि (आवाज) की एक विशेष रचना हो।

(३) उसमें स्वर तथा वर्ण हों।

(४) रंजकता यानी सुन्दरता हो।

(५) राग में कम से कम ५ स्वर अवश्य होने चाहिये।

(६) *राग में एक ही स्वर के दो रूप पास-पास लेने को शास्त्रकारों ने निषेध किया है। जैसे—ग॒ ग या म म॑ इत्यादि।

(७) राग में आरोह तथा अवरोह का होना आवश्यक है। क्योंकि इनके बिना राग का रूप पहिचाना नहीं जा सकता।

(८) किसी भी राग में षडज (सा) स्वर वर्जित नहीं होता।

(९) मध्यम और पंचम यह दो स्वर एक साथ तथा एक ही समय कभी भी वर्जित नहीं होते।

(१०) राग में वादी-सम्वादी स्वर अवश्य रहते हैं, इन स्वरों पर ही विशेष जोर रहता है।

रागों की जाति—

पहिले यह बताया जा चुका है कि थाट के ७ स्वरों में से ही राग तैयार होते हैं, और यह भी बताया गया था कि थाट में ७ स्वर होने जरूरी हैं, किन्तु राग में यह जरूरी नहीं कि ७ ही स्वर हों, अतः किसी थाट के ७ स्वरों में से ५-६ या ७ स्वरों को लेकर जब कोई राग तैयार किया जाता है, तो जितने स्वर उस थाट में से लिये गये हों, उसी आधार पर उनकी जाति निश्चित की जाती है।

इस प्रकार स्वरों की संख्या के अनुसार रागों के ३ भेद माने गये हैं जिन्हें औडव, षाडव और सम्पूर्ण कहते हैं—

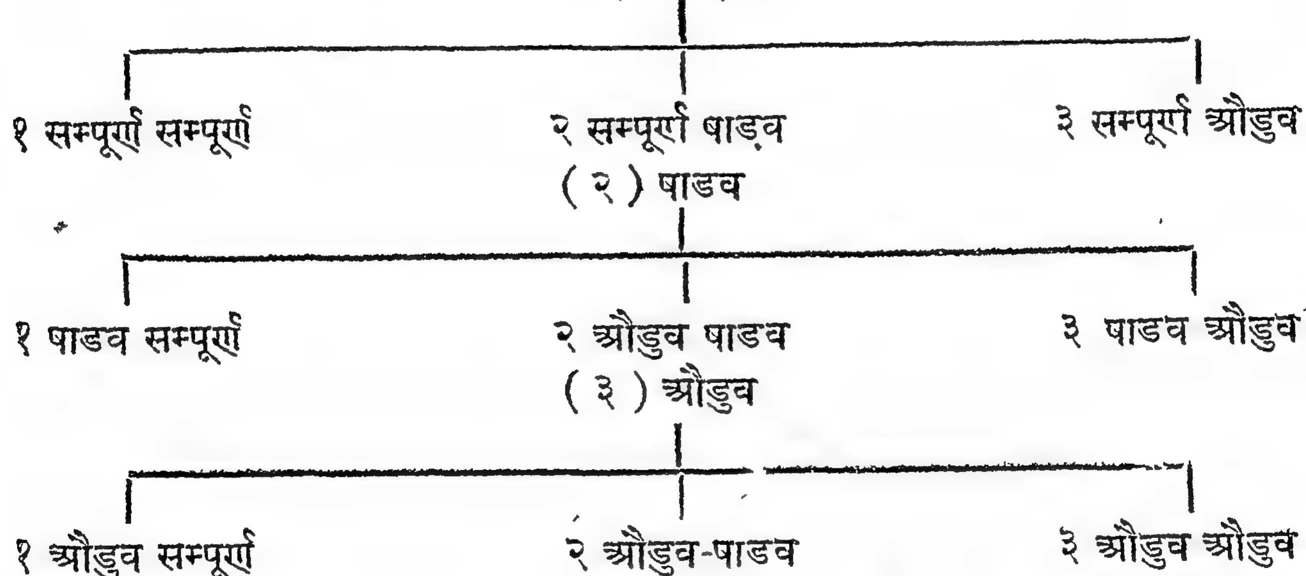
(१) औडव राग—जब किसी थाट में से कोई से दो स्वर घटाकर (वर्जित करके) कोई राग उत्पन्न होता है अर्थात् जिस राग में ५ स्वर लगते हैं उसे

* नोट—नियम नं० ६ के विरुद्ध कुछ राग ऐसे भी हैं जिनमें एक ही स्वर के दो रूप पास पास आजाते हैं, जैसे—ललित बिहाग, केदार इत्यादि। किन्तु इन्हें इस नियम के अपवाद स्वरूप ही समझना चाहिये।

"औडुव राग" कहते हैं, जैसे—भूपाली मालकोंप इत्यादि। ध्यान रहे कि सा स्वर कभी भी वर्जित नहीं किया जाता।

(२) षाड़व राग—किसी थाट में से केवल १ स्वर वर्जित करके जब कोई राग उत्पन्न होता है, अर्थात् जिस राग में ६ स्वर स्तैमाल किये जाते हैं, उसे षाडव राग कहते हैं। जैसे—मारवा, पूरिया इत्यादि।

(३) सम्पूर्ण राग—थाट से कोई भी स्वर रचना न घटाकर सातों स्वर जिस राग में लगते हैं, उसे संपूर्ण जाति का राग कहते हैं। जैसे यमन, बिलावल, भैरव और भैरवी इत्यादि। ऊपर बताई हुई तीन जातियों के रागों के आरोह तथा अवरोह में क्रमशः ५-६ स्वर हैं, लेकिन कुछ राग ऐसे भी हैं जिनके आरोह में ५ तथा अवरोह में ६ स्वर लगते हैं अथवा आरोह में ७ और अवरोह में ५ स्वर लगते हैं, ऐसे रागों को पहिचानने के लिए ग्रंथकारों ने उपरोक्त ३ जातियों में से हर एक जाति की तीन-तीन उप-जातियां और बनादी हैं, इस प्रकार ६ प्रकार की जातियां बनी।



इस प्रकार ३ जातियों से ९ उप जातियों की उत्पत्ति हुई, अब इनका पूर्ण विवरण देखिये:—

१—सम्पूर्ण-सम्पूर्ण—जिस राग के आरोह में भी ७ स्वर हों और अवरोह में भी ७ स्वर हों, उसे सम्पूर्ण-सम्पूर्ण जाति का राग कहेंगे।

२—सम्पूर्ण-षाडव—जिस राग के आरोह में सात स्वर और अवरोह में ६ स्वर लगते हों, उसे सम्पूर्ण-षाडव जाति का राग कहेंगे।

३—सम्पूर्ण औडुव—जिस के आरोह में ७ स्वर और अवरोह में ५ स्वर हों।

४—षाडव सम्पूर्ण—आरोह में ६ स्वर और अवरोह में ७ स्वर।

५—षाडव-षाडव—आरोह में भी ६ स्वर हों तथा अवरोह में भी ६ स्वर हों।

६—षाडव-औडुव—आरोह में ६ स्वर और अवरोह में पांच स्वर हों।

७—औडुव सम्पूर्ण—जिसके आरोह में ५ स्वर और अवरोह में ७ स्वर हों।

८—औडुव षाडव—जिसके आरोह में ५ स्वर और अवरोह में ६ स्वर हों।

९—औडुव*औडुव—जिसके आरोह में भी ५ स्वर हों तथा अवरोह में भी ५ स्वर लगते हों।

रागों की इन जातियों से राग संख्या मालुम हो जाती है। देखिये उपरोक्त ९ जातियों में किस प्रकार १० थाटों के द्वारा ४८४ राग तयार हुए।

सम्पूर्ण-सम्पूर्ण—इसमें केवल १ राग ही बन सका, क्योंकि आरोह में भी ७ स्वर हैं और अवरोह में भी ७ स्वर हैं।

सम्पूर्ण षाडव—इस जाति के ६ राग बन सकते हैं क्योंकि आरोह तो सम्पूर्ण रखते जाइये और अवरोह में प्रत्येक बार १ स्वर बदल कर छोडते जाइये।

सम्पूर्ण औडुव—इसके आरोह में ७ स्वर रखते जाइये और अवरोह में २ स्वर (बदल-बदलकर) छोडते जाइये तो इससे १५ राग बने।

षाडव सम्पूर्ण—आरोह में ६ स्वर होने के कारण, ६ बार एक-एक बदलकर छोडने से, इसके भी ६ राग बने।

षाडव-षाडव—इसके आरोह में ६ बार एक-एक स्वर बदलकर रखा तो ६ टुकडे हुए इसी प्रकार अवरोह में भी ऐसा ही किया तो ६ × ६ = ३६ राग इस जाति से बने।

षाडव-औडुव—इस जाति के ९० राग हो सकते हैं, क्योंकि आरोह में १ स्वर छोडने से ६ और अवरोह में दो-दो स्वर छोडने से १५ अर्थात १५ × ६ = ९० राग बने।

औडुव सम्पूर्ण—आरोह में २ स्वर छोडने से १५ प्रकार बने, और अवरोह तो इसका सम्पूर्ण है, अतः इस जाति से १५ राग हुए।

औडुव षाडव—क्योंकि इसके आरोह में प्रतिबार कोई से २ स्वर छोडने पड़े तो १५ प्रकार बने और अवरोह में १ स्वर प्रतिबार छोडना पड़ा तो ६ प्रकार बने, इसलिये १५ × ६ = ९० राग इस जाति से उत्पन्न हुए।

औडुव-औडुव—इस जाति के सबसे अधिक अर्थात् २२५ राग हो सकते हैं, क्योंकि आरोह में प्रतिबार २ स्वर छोडने से १५ प्रकार बने और अवरोह में भी ऐसे ही २ स्वर छोडने से १५ प्रकार बने तो १५ × १५ = २२५ राग तैयार हुए।

इस प्रकार एक थाट की ९ जातियों से ४८४ राग बने, जो निम्नलिखित नक्शे द्वारा स्पष्ट किये जाते हैं —

न०	जाति	आरोह के स्वर	अवरोह के स्वर	राग तैयार हो सकते हैं
१	सम्पूर्ण-सम्पूर्ण	७	७	१
२	सम्पूर्ण-षाडव	७	६	६
३	सम्पूर्ण-औडुव	७	५	१५
४	षाडव-सम्पूर्ण	६	७	६

५	षाड़व–षाड़व	६	६	३६
६	षाड़व–औड़व	६	५	६०
७	औडुव–सम्पूर्ण	५	७	१५
८	औडुव–षाडव	५	६	६०
९	औडुव–औडुव	५	५	२२५
	१ थाट की ९ जातियों से उत्पन्न रागों का कुल जोड़			४८४

जब १ थाट से ४८४ राग तैयार हो सकते हैं तो उत्तरी सङ्गीत पद्धति के १० थाटों से ४८४×१०=४८४० राग बने और दक्षिणी सङ्गीत पद्धति के ७२ थाटों से ४८४×७२=३४८४८ राग तैयार हो सकते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ और भी राग केवल वादी स्वर को बदल देने से उत्पन्न हो सकते हैं, इस प्रकार यद्यपि रागों की संख्या और भी अधिक बढ़ सकती है, किन्तु प्रचार में २०० रागों से अधिक दिखाई नहीं देते, क्योंकि राग में रंजकता होनी आवश्यक है इस बन्धन के कारण राग संख्या मर्यादित सी होजाती है।

ग्राम

अथ ग्रामास्त्रयः प्रोक्ताः स्वर सन्दोहरूपिणः।
षड्जमध्यमगांधारसंज्ञाभिस्ते समन्विताः ॥६७॥

—सङ्गीत पारिजात

ग्राम के सम्बन्ध में अहोबल पंडित उक्त श्लोक में बताते हैं कि स्वरों का एक समूह ही ग्राम कहलाता है। ग्राम ३ होते हैं, जिन्हें षड़ज, मध्यम तथा गान्धार इन नामों से घोषित करते हैं।

दामोदर पंडित 'सङ्गीत दर्पण' में लिखते हैं:—

ग्रामः स्वरसमूहः स्यात्मूर्च्छनादेः समाश्रयः।
तौ द्वौ धरातले तत्र स्यात् षड्जग्राम आदिमः ॥७५॥
द्वितीयो मध्यमग्रामस्तयोर्लक्षणमुच्यते ॥ ७६ ॥

अर्थात्—ग्राम स्वरों का समुदाय है। ग्राम का आधार मूर्च्छना है, इस लोक में ग्राम दो हैं, उनमें से पहला षड़ज ग्राम है और दूसरा मध्यम ग्राम है........ ॥

इस प्रकार संस्कृत ग्रन्थों में ग्रामों की परिभाषा देखने में आती है। श्री भातखंडे जी का कहना है कि प्राचीन ग्राम रचना प्राचीन सङ्गीत में उत्तम रूप से प्रयुक्त थी; परन्तु इस समय हमारे सङ्गीत में वैसी नहीं है। फिर भी सङ्गीत के विद्यार्थियों को ग्राम के विषय में जानकारी तो रखनी ही चाहिए।

ऊपर दिये पारिजात के श्लोक के अनुसार ग्राम तीन प्रकार के हुए —

१—षडजग्राम   २—मध्यमग्राम   ३—गंधारग्राम

गन्धार ग्राम के बारे मे यह बताया जाता है कि यह किसी प्रकार धरातल से हटकर देवलोक पहुँच गया। यह वास्तव में निषाद ग्राम था क्योंकि इसका आरम्भ निषाद स्वर में होता था, किन्तु गन्धर्वों द्वारा उसका प्रयोग होने के कारण उसका नाम गन्धर्वग्राम हुआ फिर आगे चलकर इसका अपभ्रन्श रूप गंधारग्राम होगया।

७ स्वरों मे जो २२ श्रुतिया हैं उनके समूह को ग्राम कहते हैं। स्वरों पर श्रुतियों के बाटने के सिद्धान्त —

चतुश्चतुश्चतुश्चैव	के अनुसार	४	७	९	१३	१७	२०	२२
इन श्रुतियों पर क्रमश —		सा	रे	ग	म	प	ध	नि

इस प्रकार स्वरों को स्थापित करने पर जो ग्राम बनता है उसे षडज ग्राम कहेंगे। यदि इस श्रुत्यन्तर में तनिक भी फरक पडेगा तो वह षडज ग्राम नहीं माना जायगा। अब मध्यम ग्राम इस प्रकार होगा कि पचम स्वर को जो कि १७ वीं श्रुति पर है, हटाकर १६ वीं पर ले आया जाय। जैसे —

४	७	९	१३	१६	२०	२२
सा	रे	ग	म	प	ध	नि

यह होगया मध्यम ग्राम। अब गन्धार ग्राम इस प्रकार होगा कि रिषभ स्वर एक श्रुति नीचे उतरकर ६ वीं श्रुति पर, गान्धार १ श्रुति ऊपर चढकर १० वीं पर, धैवत १ श्रुति नीचे उतरकर १९ वीं पर और निषाद १ श्रुति ऊपर चढकर पहली श्रुति पर स्थिर होगा। इस प्रकार —

४	६	१०	१३	१६	१९	१
सा	रे	ग	म	प	ध	नि

जिस प्रकार भिन्न-भिन्न गावों मे भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्य रहते हैं, उसी प्रकार सङ्गीत के भिन्न-भिन्न 'ग्रामों' मे भिन्न प्रकार के अन्तर (फासले) पर स्वर रहते हैं। अत स्वरों को भिन्न-भिन्न प्रकार मे श्रुतियों पर स्थिर करने के लिये ही प्राचीनकाल में "ग्राम" की उत्पत्ति हुई। अब आगे के एक नक्शे मे प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर तीनों ग्रामों को २२ श्रुतियों पर एक साथ दिखाया जाता है —

प्राचीन ग्रन्थों में
२२ श्रुतियों पर तीन ग्राम

श्रुति नं०	श्रुति नाम	षड्जग्राम	मध्यमग्राम	गंधारग्राम
१	तीव्रा	...	...	...
२	कुमुद्वती	...	...	...
३	मंदा	...	...	...
४	छंदोवती	षडज	षडज	षडज
५	दयावती	...	...	...
६	रंजनी	...	...	रिषभ
७	रक्तिका	रिषभ	रिषभ	...
८	रौद्री	...	...	...
९	क्रोधी	गन्धार	गन्धार	...
१०	वज्रिका	...	...	गन्धार
११	प्रसारिणी	...	...	...
१२	प्रीति	...	...	...
१३	मार्जनी	मध्यम	मध्यम	मध्यम
१४	क्षिति	...	...	...
१५	रक्ता	...	...	...
१६	संदीपिनी	...	पंचम	पंचम
१७	अलापिनी	पंचम	...	...
१८	मदंती	...	...	...
१९	रोहिणी	...	...	धैवत
२०	रम्या	धैवत	धैवत	...
२१	उग्रा	...	...	...
२२	क्षोभिणी	निषाद	निषाद	...
१	तीव्रा	...	...	निषाद

यद्यपि प्राचीन ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार से श्रुतियों पर ग्राम दिखाये गये हैं, किन्तु बहुमत इसी पक्ष में हैं, जैसा कि उपरोक्त कोष्ठक (नक्शे) में दिखाया गया है। उपरोक्त कोष्ठक को देखने पर विदित होगा कि मध्यम ग्राम के स्वरान्तर अधिकांश रूप में षड्ज ग्राम के ही अनुसार हैं, केवल पंचम को १ श्रुति नीचे माना गया है। गन्धार ग्राम में रिषभ तथा धैवत स्वर उपरोक्त दोनों ग्रामों के रिषभ धैवत स्वरों से एक-एक श्रुति नीचे माने गये हैं और गन्धार निषाद स्वर एक-एक श्रुति ऊँचे माने गये हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थकार इस प्रकार ग्राम योजना से अपने भिन्न-भिन्न ... करने, भिन्न-भिन्न मेल बनाने होंगे किन्तु ग्राम रचना का यह ढङ्ग

आज की १२ स्वरों की प्रणाली पर लागू नहीं होता, 'इसलिये वर्तमान सङ्गीतज्ञ उपरोक्त प्राचीन ग्राम योजना को आधुनिक सङ्गीत के लिये निरर्थक ही समझते हैं।

सङ्गीत के कुछ आधुनिक ग्रन्थों में तीन ग्रामों का कोष्ठक वर्तमान १२ स्वरों के हिसाब से इस प्रकार दिया है —

आधुनिक ग्राम चक्र—

१	३	५	६	८	१०	१२				
सा	रे	ग	म	प	ध	नि	षड्ज ग्राम			
		सा	रे	ग	म	प	ध	नि	गंधार ग्राम	
			सा	रे	ग	म	प	ध	नि	मध्यम ग्राम

स्वरों के ऊपर जो नम्बर दिये हैं, ये हारमोनियम के परदों के नम्बर मान लिये जाय तो इस ग्राम चक्र से हमारे शुद्ध और विकृत १२ स्वर आसानी से निकल आते हैं। क्योंकि हारमोनियम बाजे की जिस चाभी या परदे पर षड्ज स्वर माना जाता है, उससे तीसरे पर शुद्ध रे, पाचवे पर शुद्ध ग, छटे पर शुद्ध म, आठवे पर प, दसवे पर शुद्ध ध और बारहवे पर शुद्ध नि होते हैं। इस प्रकार इन ७ शुद्ध स्वरों का "षड्ज ग्राम" होगया। इसे हम अपना शुद्ध विलावल थाट भी कह सकते हैं। इसके बाद हमने षडज ग्राम के ५ नम्बर के शुद्ध ग को सा मानकर स्वर खींचे तो हमें भैरवी थाट के सभी कोमल स्वर मिलगये, क्योंकि गन्धार स्वर को सा मानकर हमने स्वर खींचे थे, अत यह "गधार ग्राम" हुआ। इसके पश्चात् हमने षडज ग्राम के ६ नम्बर "म" स्वर को सा मानकर स्वर खींचे तो इस सप्तक में हमे तीव्र मध्यम मिलगई, क्योंकि षडज ग्राम के पचम पर रिषभ बोली, धैवत पर शुद्ध गधार और निषाद पर तीव्र मध्यम। इस प्रकार यह "मध्यमग्राम" हुआ और इससे हमे कल्याण थाट के स्वर प्राप्त होगये।

ग्रामों का यह विवेचन आधुनिक "स्केल चेन्ज" की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध हो सकता है, किन्तु यदि बारीकी से देखा जाय और स्वरों के आन्दोलनों का हिसाब लगाकर स्वरान्तरों की जाच की जावे तो यह विवेचन गणित की कसौटी पर ठीक नहीं उतरेगा। फिर भी हारमोनियम बाजे पर उपरोक्त नियम से ३ ग्रामों के द्वारा शुद्ध विकृत १२ स्वर निकालने का यह ढङ्ग सरल और सुबोध है।

मूर्च्छना

क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहेश्चावरोहणम् ।
मूर्च्छनेत्युच्युते ग्रामत्रये ताः सप्तसप्त च ॥ ६३ ॥

अर्थात्—सात स्वरों का क्रम से आरोह तथा अवरोह करना मूर्च्छना कहलाता है। तीन ग्राम हैं, उनमें से प्रत्येक की ७–७ मूर्च्छनाऐं है।

तत्र मध्यस्थषड्जेन षड्जग्रामस्य मूर्च्छना ।
प्रथमारभ्यतेऽन्यास्तु निषादाद्यैरधस्तनैः ॥ ६४ ॥

—सङ्गीत दर्पण

मध्यस्थान के षड्ज स्वर से षड्ज ग्राम की पहिली मूर्च्छना आरम्भ होती है। शेष छै मूर्च्छनाऐं स्वर (षड्ज) के नीचे के निषादादि स्वरों से शुरू होती हैं।

इस प्रकार ३ ग्रामों से २१ मूर्च्छना प्राचीन शास्त्रकार बताते हैं। नीचे उनके नाम और स्वर दिये जाते हैं:—

षड्ज ग्राम की मूर्च्छना—

नं०	नाम मूर्च्छना	आरोह	अवरोह
१	उत्तरामन्द्रा	सा रे ग म प ध नि	नि ध प म ग रे सा
२	रजनी	नि़ सा रे ग म प ध	ध प म ग रे सा नि़
३	उत्तरायता	ध़ नि़ सा रे ग म प	प म ग रे सा नि़ ध़
४	शुद्ध षड्जा	प़ ध़ नि़ सा रे ग म	म ग रे सा नि़ ध़ प़
५	मत्सरीकृता	म़ प़ ध़ नि़ सा रे ग	ग रे सा नि़ ध़ प़ म़
६	अश्वक्रान्ता	ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा रे	रे सा नि़ ध़ प़ म़ ग़
७	अभिरुद्गता	रे़ ग़ म़ प़ ध़ नि़ सा	सा नि़ ध़ प़ म़ ग़ रे़

मध्यम ग्राम की मूर्च्छना—

१	सौवीरी	म	प	ध	नि	सा	रें	ग	ग	रें	सा	नि	ध	प	म
२	हरिणाश्वा	ग	म	प	ध	नि	सा	रे	रें	सा	नि	ध	प	म	ग
३	कलोपनता	रे	ग	म	प	ध	नि	सा	सा	नि	ध	प	म	ग	रे
४	शुद्धमध्या	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	नि	ध	प	म	ग	रे	सा
५	मार्गी	नि	सा	रे	ग	म	प	ध	ध	प	म	ग	रे	सा	नि
६	पौरवी	ध	नि	सा	रे	ग	म	प	प	म	ग	रे	सा	नि	ध
७	हृष्यका	प	ध	नि	सा	रे	ग	म	म	ग	रे	सा	नि	ध	प

गन्धार ग्राम की मूर्च्छना—

नोट—प्राचीन शास्त्रों में गन्धार ग्राम को ही निषाद ग्राम भी कहा है, अतः इस ग्राम की पहली मूर्च्छना निषाद स्वर से ही आरम्भ होती है —

१	नन्दा	नि	सा	रें	ग	म	प	ध	ध	प	म	ग	रें	सा	नि
२	विशाला	ध	नि	सा	रें	ग	म	प	प	म	ग	रें	सा	नि	ध
३	सुमुखी	प	ध	नि	सा	रें	ग	म	म	ग	रें	सा	नि	ध	प
४	विचित्रा	म	प	ध	नि	सा	रें	ग	ग	रे	सा	नि	ध	प	म
५	रोहिणी	ग	म	प	ध	नि	सा	रें	रें	सा	नि	ध	प	म	ग
६	सुखा	रे	ग	म	प	ध	नि	सा	सा	नि	ध	प	म	ग	रे
७	आलापा	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	नि	ध	प	म	ग	रे	सा

गान्धार ग्राम की इन ७ मूर्च्छनाओं के बारे में दर्पणकार कहता है —

तारश्चस्वर्गे प्रयोक्तव्या विशेषादत्र नोदिताः ॥६६॥

अर्थात्—इनका प्रयोग स्वर्गलोक में होता है। इसलिए विशेष वर्णन नहीं किया गया। इस प्रकार दर्पणकार ने केवल १४ मूर्च्छनाओं का ही उल्लेख किया है, यद्यपि नाम २१ मूर्च्छनाओं के दे दिये हैं।

संगीत के विद्यार्थियों को यहां पर यह बता देना उचित होगा कि हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने मूर्च्छनाओं के जो स्वर दिये हैं, उन्हें केवल आरोह-अवरोह ही न समझ

लिया जावे, बल्कि इनके अन्दर जो रहस्य छिपा हुआ है, उस पर ध्यान देकर ही प्राचीन मूर्च्छनाओं की उपयोगिता जानी जा सकती है। वह रहस्य क्या है, यह नीचे के उदाहरणों से भली प्रकार जाना जा सकता है।

जिस प्रकार हमारे यहां रागों की उत्पत्ति थाटों से हुई है, उसी प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में मूर्च्छनाओं के द्वारा भिन्न-भिन्न राग उत्पन्न करके बताये हैं। प्राचीन ग्रन्थकार अपने किसी राग का वर्णन करते समय यह नहीं कहते थे कि इसमें अमुक स्वर तीव्र या कोमल हैं बल्कि वे कहते थे कि इस राग में अमुक मूर्च्छना है। उदाहरणार्थः—

षड़जग्राम की पहली मूर्च्छना "उत्तरामन्द्रा" को लीजिये, इसमें सा, रे, ग, म, प, ध, नि, यह सात शुद्ध स्वर हैं।

आजकल की बोलचाल में हम इसे अपना शुद्ध ठाठ 'बिलावल' कहेंगे और इसी बिलावल ठाठ के अन्तर्गत जब किसी राग में शुद्ध स्वर प्रयुक्त होंगे, जैसे 'गुणकली' तो हम कहेंगे कि गुणकली में सब शुद्ध स्वर लगते हैं और यह बिलावल ठाठ का राग है। किन्तु ऐसे राग का वर्णन करते समय प्राचीन ग्रन्थकार कहेंगे कि गुणकली में षड़ज ग्राम की पहली मूर्च्छना है।

अब दूसरी मूर्च्छना लीजिये, जिसका नाम 'रजनी' है। ध्यान दीजिये प्रथम मूर्च्छना (उत्तरामन्द्रा) के षड़ज स्वर पर इसका निषाद है, रिषभ पर इसका षड़ज है, गांधार पर इसका रिषभ है एवं इसी क्रम से उसके म प ध नि स्वरों पर इस मूर्च्छना के ग म प ध स्वर हैं, तो पहली मूर्च्छना के रिषभ को दूसरी मूर्च्छना में षड़ज स्वर मानकर हमने स्वर खींचे तो नतीजा क्या हुआ ?

सा　रे　ग　म　प　ध　नि—पहली मूर्च्छना
नि़　सा　रे　ग़　म　प　ध—दूसरी मूर्च्छना

नतीजा यह हुआ कि इस प्रयोग से हमें दूसरी मूर्च्छना में निषाद और गन्धार कोमल मिल गये और चूँकि रिषभ स्वर को षडज मानकर यह मूर्च्छना निकली है, इसलिये ग्रन्थकार इसे 'रिषभ की मूर्च्छना' या 'रजनी' इन नामों से सम्बोधित करेंगे और हम अपनी भाषा में इस दूसरी मूर्च्छना को 'काफी ठाठ' कहेंगे; क्योंकि इसमें हमें ग़ नि़ कोमल स्वर प्राप्त हुए हैं।

इसी प्रकार तीसरी मूर्च्छना (उत्तरायता) में सब स्वरों की स्थिति कोमल होजायगी क्योंकि पहली मूर्च्छना (उत्तरामन्द्रा) के गन्धार को इसमें षड़ज माना गया है:—

सा　रे　ग　म　प　ध　नि—पहली मूर्च्छना
ध़　नि़　सा　रे़　ग़　म　प—तीसरी मूर्च्छना

इस प्रकार के कोमल स्वर जब हमारी किसी रचना में आयेंगे तो हम उसे भैरवी थाट का राग ही तो कहेंगे; किन्तु प्राचीन ग्रन्थकारों की भाषा में ऐसे राग को गन्धार की मूर्च्छना का राग कहा जायगा, क्योंकि इसमें शुद्ध गंधार को स्वर मानकर तीसरी मूर्च्छना निकाली गई थी। अथवा वे इसे "उत्तरायता" की मूर्च्छना का राग कहेंगे।

(३) संकीर्ण—जिस राग में २ रागों से अधिक रागों का मिश्रण या मिलावट हो उसे संकीर्ण राग कहते हैं।

वादी, सम्वादी, अनुवादी, विवादी।

राग के नियमों में वादी, सम्वादी आदि स्वरों का भी एक महत्वपूर्ण स्थान होता है उसे बताते हैं —

वादी स्वरस्तु राजा स्यान्मंत्री संवादिसंज्ञितः।
स्वरो विवादी वैरी स्यादनुवादी च भृत्यवतः॥

—अभिनवरागमंजरी

अर्थात्—वादी स्वर को राजा के समान और सम्वादी स्वर को मंत्री के समान, विवादी स्वर को वैरी (दुश्मन) के समान और अनुवादी स्वर को सेवक के समान समझना चाहिए।

(१) वादी—राग में लगने वाले स्वरों में जिस स्वर पर सब से अधिक जोर रहता है, अथवा जिसका प्रयोग अधिक या बारम्बार किया जाता है, उसे उस राग का 'वादी स्वर' कहते हैं।

(२) सम्वादी—यह वादी स्वर का सहायक होता है, तभी तो इसे मन्त्री की पदवी शास्त्रों ने दी है। यह वादी स्वर से कम तथा अन्य स्वरों से अधिक प्रयोग किया जाता है। वादी स्वर से चौथे या पाचवें नम्बर पर सम्वादी स्वर होता है।

(३) अनुवादी—वादी और सम्वादी के अतिरिक्त जो स्वर राग में लगते हैं, वे अनुवादी कहलाते हैं।

(४) विवादी—विवादी का वास्तविक अर्थ तो बिगाड़ पैदा करने वाला ही होता है अर्थात् ऐसा स्वर जिससे राग का स्वरूप बिगड़ जावे। इसीलिये विवादी को शत्रु (वैरी) की उपमा शास्त्रों में दीगई है। इसे वर्जित स्वर भी कह सकते हैं। इतना सब होते हुए भी कभी-कभी राग में विवादी स्वर का प्रयोग भी ऐसी कुशलता से कर दिया जाता है जिससे कि राग में एक विचित्रता पैदा होजाती है। जैसे यमन राग में दो शुद्ध गधारों के बीच में शुद्ध म लगादिया जाता है तो उसका सौन्दर्य कुछ बढ ही जाता है। इस प्रकार विवादी स्वर का प्रयोग कुशल गायक करते हैं।

आश्रयराग

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में ऐसा नियम है कि किसी थाट का नाम उस थाट से पैदा होने वाले राग के नाम पर रख दिया जाता है। अत जिस जन्य (पैदा होने वाले) राग का नाम थाट को दिया जाता है, उसीको 'आश्रय राग' कहते हैं जैसे — स रे॒ ग म प ध॒ नि इस स्वर समुदाय से विदित होता है कि यह भैरव थाट है। इसका नाम भैरव थाट इस लिए रक्खा गया, क्योंकि इन्हीं स्वरों से और इसी थाट से प्रसिद्ध राग 'भैरव' की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार यह "भैरव" आश्रय राग हुआ। इसीलिये किसी भी थाट में पैदा होने वाले जन्य रागों में आश्रय राग का थोड़ा-बहुत अन्श अवश्य ही दिखाई

देता है, किन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिये कि आश्रय राग सभी जन्य रागों का उत्पादक है। जन्य रागों का उत्पादक तो थाट ही माना जायगा।

आश्रय राग को ही थाट वाचक राग भी कहते हैं। उत्तरी पद्धति में कुल १० आश्रय राग माने गये हैं, जो निम्न लिखित नकशे में दिखाये जाते हैं:—

१० आश्रय राग

नाम थाट	थाट के स्वर	आश्रय राग	रागों के आरोह अवरोह
१ बिलावल	सा रे ग म प ध नि सां	बिलावल	सा रे ग म प ध नि सां सां नि ध प म ग रे सा
२ कल्याण	सा रे ग मं प ध नि सां	यमन	सा रे ग मं प ध नि सां सां नि ध प मं ग रे सा
३ खमाज	सा रे ग म प ध नि सां	खमाज	सा ग म प ध नि सां सां नि ध प म ग रे सा
४ भैरव	सा रे ग म प ध नि सां	भैरव	सा रे ग म प ध नि सां सां नि ध प म ग रे सा
५ पूर्वी	सा रे ग मं प ध नि सां	पूर्वी	सा रे ग मं प ध नि सां सां नि ध प मं ग रे सा
६ मारवा	सा रे ग मं प ध नि सां	मारवा	सा रे ग मं ध नि सां सां नि ध मं ग रे सा
७ काफी	सा रे ग म प ध नि सां	काफी	सा रे ग म प ध नि सां सां नि ध प म ग रे सा
८ आसावरी	सा रे ग म प ध नि सां	आसावरी	सा रे म प ध सां सां नि ध प म ग रे सा
९ भैरवी	सा रे ग म प ध नि सां	भैरवी	सा रे ग म प ध नि सां सां नि ध प म ग रे सा
१० तोड़ी	सा रे ग मं प ध नि सां	तोड़ी	सा रे ग मं प ध नि सां सां नि ध प मं ग रे सा

ध्यान रहे कि थाट में केवल आरोह ही होता है तथा सातों स्वर पूरे होते हैं, किन्तु राग में आरोह व अवरोह दोनों का होना आवश्यक है चाहे स्वर सात हों या कम हों।

राग गाने का समय विभाजन

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में रागों का गायन समय दिन और रात के २४ घंटों के २ भाग करके बांटा गया है। पहला भाग—१२ बजे दिन से १२ बजे रात्रि तक और दूसरा भाग १२ बजे रात्रि से १२ बजे दिन तक। इनमें पहले भाग को पूर्व भाग और दूसरे भाग को उत्तर भाग कहते हैं।

पूर्व राग—जो राग दिन के १२ बजे से रात्रि के १२ बजे तक के (पूर्व भाग) समय में गाये बजाये जाते हैं, उन्हें "पूर्वराग" कहते हैं।

उत्तर राग—जो राग १२ बजे रात्रि से दिन के १२ बजे तक के (उत्तर भाग) समय में गाये बजाये जाते हैं, उन्हें "उत्तर राग" कहते हैं।

पूर्वराग और उत्तरराग को ही प्रचार में पूर्वांग वादी तथा उत्तराग वादी राग भी कहते हैं। यहां पर यह बता देना भी आवश्यक है कि इनको पूर्वांग वादी या उत्तराग वादी राग क्यों कहते हैं?

सप्तक के ७ शुद्ध स्वरों में तार सप्तक का सा मिलाकर सा रे ग म, प ध नि सा इस प्रकार स्वरों की संख्या ८ करली जावे और फिर इसके २ हिस्से करदिये जाय तो "सा रे ग म" यह सप्तक का पूर्वाङ्ग होगा और "प ध नि सा" यह उत्तराग कहा जायेगा।

पूर्वांग वादी राग—

जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के पूर्वाङ्ग अर्थात "सा रे ग म" इन स्वरों में से होता है, वे पूर्वाङ्ग वादी राग कहलाते हैं। ऐसे राग प्राय दिन के पूर्व भाग यानी १२ बजे दिन से १२ बजे रात्रि तक के समय में गाये जाते हैं।

उत्तराग वादी राग—

जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के उत्तराग अर्थात् प ध नि सा इन स्वरों में से होता है, वे उत्तराग वादी राग कहे जाते हैं। ऐसे राग प्राय दिन के उत्तर भाग अर्थात् १२ बजे रात्रि से १२ बजे दिन तक ही गाये बजाये जाते हैं।

उपरोक्त वर्गीकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि राग के वादी स्वर को जान लेने पर उस राग के गाने का समय मालूम होजाता है, जैसे—आसावरी का वादी स्वर धैवत है यानी सप्तक का उत्तराग स्वर है तो इसके गाने का समय भी प्रातःकाल है। यानी रात्रि के १२ बजे से दिन के बारह बजे तक का जो समय (उत्तर भाग) है, उसी के अन्तर्गत प्रातःकाल का समय आजाता है। और यमन का वादी स्वर गन्धार है, जो कि सप्तक के पूर्वांग में से लिया हुआ स्वर है, अतः यमन राग के गाने का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है जोकि दिन के १२ बजे से रात्रि के १२ बजे तक के (पूर्व भाग) क्षेत्र में आता है। इसलिये यमन पूर्वाङ्गवादी राग कहा जायगा और आसावरी को उत्तराग वादी राग कहेंगे।

उपरोक्त विवेचन पर सङ्गीत विद्यार्थियों को यह शंका होना स्वाभाविक है कि भैरवी में मध्यम वादी स्वर है जोकि सप्तक का पूर्वांग स्वर हुआ, फिर क्या कारण है कि भैरवी का गायन समय प्रातःकाल बताया गया है। उपरोक्त वर्णन के अनुसार तो भैरवी का गायन समय दिन का उत्तरभाग अर्थात् १२ बजे दिन से १२ बजे रात्रि होना चाहिए? प्रातःकाल का समय तो "उत्तरभाग" के अन्तर्गत आता है, फिर भैरवी का वादी स्वर

वादी है, जो कि सप्तक का उत्तरांग स्वर है फिर क्यों इसे पूर्व भाग (रात्रि के प्रथम प्रहर) में गाते हैं ?

उपरोक्त शंकाओं का समाधान यह है कि हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति में यद्यपि सा रे ग म को सप्तक का पूर्वाङ्ग और प ध नि सां को उत्तरांग कहा गया है, किन्तु कुछ पूर्वाङ्ग वादी तथा उत्तरांग वादी स्वरों को उपरोक्त वर्गीकरण में लाने के लिये पूर्वाङ्ग का क्षेत्र सा रे ग म प और उत्तरांग का क्षेत्र म प ध नि सां इस प्रकार बढ़ाकर माना गया है। इस प्रकार सप्तक के २ भाग करने से सा, म, प यह तीनों स्वर सप्तक के उत्तरांग तथा पूर्वाङ्ग दोनों भागों में आजाते हैं। और जब किसी राग में इन तीनों स्वरों में से कोई स्वर वादी होता है, तो वह राग पूर्वाङ्गवादी भी हो सकता है और उत्तरांग वादी भी हो सकता है। ऊपर वर्णित भैरवी और कामोद राग इसी श्रेणी में आजाते हैं, अतः भैरवी में मध्यम वादी होते हुये भी यह उत्तरांग वादी राग माना जा सकता है और कामोद में पंचम वादी होते हुए भी उसे पूर्वाङ्ग वादी राग कह सकते हैं, क्योंकि यह दोनों ही राग सप्तक के बढ़ाये हुए क्षेत्र में आजाते है। इसी प्रकार अन्य कुछ राग भी इसी श्रेणी में आकर अपना क्षेत्र बनालेते है। अतः यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जब किसी राग में वादी स्वर सा, म, प, इनमें से कोई स्वर हो और यह बताना हो कि यह राग पूर्वाङ्ग वादी है या उत्तरांग वादी तो उस राग के गाने का समय देखकर तथा सप्तक के उत्तरांग और पूर्वाङ्ग भागों के दोनों प्रकारों को ध्यान में रखकर आसानी से बताया जा सकता है कि अमुक राग पूर्वाङ्गवादी है या उत्तरांग वादी।

स्वर और समय को दृष्टि से रागों के ३ वर्ग

हिन्दुस्तानो सङ्गीत पद्धति में रागों के गाने-बजाने के बारे में समय सिद्धान्त (Time Theory) प्राचीन काल से ही चला आरहा है। यद्यपि प्राचीन रागों में एवं अर्वाचीन रागों में समय सिद्धान्त पर कुछ मतभेद हैं जिसका कारण रागों के स्वरों में उलट फेर होजाना है, तथापि यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि हमारे प्राचीन सङ्गीत पंडितों ने रागों को उनके ठीक समय पर गाने का सिद्धान्त अपने ग्रन्थों में स्वीकार किया है। जिसे आज के सङ्गीतज्ञ भी स्वीकार करके अपने रागों में समय सिद्धान्त का पालन कर रहे हैं।

हिन्दुस्थानीयरागाणां त्रयो वर्गाः सुनिश्चिता।
स्वरविकृत्यधीनास्ते लक्ष्यलक्षणकोविदैः ॥

—मल्लक्ष्यसंगीतम्

स्वर और समय के अनुसार हिन्दुस्थानी रागों के ३ वर्ग मानकर कोमल तीव्र (विकृत) स्वरों के हिसाब से उनका विभाजन किया गया है:—

(१) कोमल रे और कोमल ध वाले राग।
(२) शुद्ध रे और शुद्ध ध वाले राग।
(३) कोमल ग और कोमल नि वाले राग।

सन्धिप्रकाश राग—

ऊपर बताये हुए ३ वर्गों में से प्रथम वर्ग अर्थात् कोमल रे और कोमल ध वाले राग सन्धिप्रकाश रागों की श्रेणी में आ जाते है। ध्यान रहे इस वर्ग में रे, ध कोमल के साथ-साथ

ग तीव्र होना जरूरी है। क्योंकि ग यदि कोमल होगा तो वह तीसरे वर्ग में आजायगा। दिन और रात की सन्धि यानी मेल होने के समय को सन्धिकाल कहते हैं। प्रात काल सूर्योदय से कुछ पहले और शाम को सूर्यास्त से कुछ पहिले का समय ऐसा होता है जिसे न तो दिन ही कह सकते हैं न रात ही। इसी समय को सन्धिप्रकाश की वेला कहा गया है और इस वेला में जो राग गाये वजाये जाते हैं, उन्हें ही सन्धिप्रकाश राग कहते हैं। जैसे भैरव, कालिंगड़ा, भैरवी, पूर्वी, मारवा इत्यादि। सन्धिप्रकाश के भी २ भाग माने गये हैं।

(१) प्रात कालीन सन्धिप्रकाश राग और (२) सायकालीन सधिप्रकाश राग। जो राग सूर्योदय के समय गाये वजाये जायेगे वे प्रात कालीन सधिप्रकाश राग होंगे और जो सूर्यास्त के समय गाये जायगे उन्हें सायकालीन सधिप्रकाश राग कहेंगे।

सधिप्रकाश रागों में मध्यम स्वर वडे महत्व का है। प्रात कालीन सधिप्रकाश रागों मे अधिकतर मध्यम कोमल यानी शुद्ध होगा और सायकालीन सन्धिप्रकाश रागों मे अधिकतर तीव्र मध्यम मिलेगा। जैसे भैरव और कालिङ्गडा प्रात कालीन सधिप्रकाश राग हैं, क्योंकि इनमे शुद्ध मध्यम है और पूर्वी अथवा मारवा सायकालीन सधिप्रकाश राग हैं, क्योंकि इनमे तीव्र मध्यम है।

सधिप्रकाश रागो की एक साधारण सी पहचान यह भी है कि उनमें धैवत स्वर चाहे कोमल हो या तीव्र, किन्तु उनमे रे कोमल और ग नि तीव्र ही अधिकतर मिलेंगे। यद्यपि कोई-कोई सधिप्रकाश राग इस नियम का अपवाद भी हो सकता है, जैसे—भैरवी इत्यादि।

(२) रे ध शुद्ध वाले राग

रे, ध शुद्ध (तीव्र) वाले रागों के गाने का समय सधिप्रकाश के वाद आता है, क्योंकि सधिप्रकाश काल दिन में २ वार आता है, अत इस वर्ग के रागों के गाने का समय भी २४ घण्टों मे २ वार आता है। इसमें कल्याण, विलावल और खमाज थाट के राग गाये वजाये जाते हैं।

प्रात कालीन सधिप्रकाश रागों के वाद गाये जाने वाले रागों मे, दिन चढने के साथ ही साथ शुद्ध रे तथा शुद्ध ध की प्रधानता वढती जाती है। इस प्रकार प्रात ७ वजे से १० वजे तक और शाम को ७ वजे से १० वजे तक दूसरे वर्ग अर्थात रे ध शुद्ध वाले राग गाये वजाये जाते हैं। इस वर्ग में ग का शुद्ध होना आवश्यक है। साथ ही साथ इस वर्ग के रागों में मध्यम स्वर का भी विशेष महत्व है, वह इस प्रकार कि सवेरे ७ वजे से १० वजे तक गाये जाने वाले रागों मे शुद्ध यानी कोमल मध्यम की प्रधानता रहती है, जैसे विलावल, देशकार, तोडी इत्यादि और शाम के ७ वजे से १० तक गाये जाने वाले रागों मे तीव्र मध्यम की प्रधानता रहती है। जैसे यमन, शुद्धकल्याण, भूपाली इत्यादि।

(३) कोमल ग, नि वाले राग

इस वर्ग के रागों को गाने का समय रे ध शुद्ध वाले रागों के वाद आता है, अर्थात ग नि कोमल वाले राग दिन के १० वजे से ४ वजे तक और रात को १० वजे से ४ वजे

तक गाये बजाये जाते हैं। इस वर्ग के रागों की खास पहचान यह है कि उनमें ग॒ कोमल जरूर होगा, चाहे रे-ध शुद्ध हों या कोमल। इस वर्ग के रागों में प्रातःकाल के समय आसावरी, जौनपुरी, गांधारीटोड़ी इत्यादि राग गाये जाते हैं और रात्रि के समय में यमन इत्यादि गाने के बाद जैसे जैसे आधी रात्रि का समय आता जाता है, बागेश्री, जयजयवन्ती, मालकौंस इत्यादि राग गाये बजाये जाते हैं।

'सङ्गीत सीकर' से रागों के गाने की एक तालिका हम नीचे दे रहे हैं, जोकि रात्रि के प्रथम प्रहर के प्रमुख राग यमन से आरम्भ होती है, क्योंकि गायक वादक प्रायः यमन राग से ही अपना गायन वादन प्रारम्भ करते हैं। इस तालिका में 'भैरवी' को इसलिए छोड़ दिया गया है कि महफ़िल की समाप्ति प्रायः भैरवी पर ही करने का रिवाज सा हो गया है, अतः भैरवी का गायन काल यद्यपि प्रातःकाल है, किन्तु रात्रि के १ बजे २ बजे जब भी महफ़िल समाप्ति पर हो, भैरवी सुनाई दे जाती है। इसी प्रकार दिन में भी १-२ बजे कभी-कभी भैरवी सुनाई दे जाती है।

तीव्र मध्यम वाले राग—

(१) यमन
(२) शुद्ध कल्याण
(३) मालश्री
(४) हिंडोल—(इस राग के विषय में दो मत प्रचलित हैं। रात्रिगेय हिन्डोल में ग वादी होता है, किन्तु प्रातःकाल गाने वाले धैवत वादी मानते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि बसन्त ऋतु में यह राग चाहे जिस समय गाया जा सकता है)।
(५) भूपाली
(६) जैतकल्याण

यहां से दोनों मध्यम वाले राग आरम्भ हुए

(७) हमीर
(८) केदार
(९) कामोद
(१०) छायानट
(११) बिहाग
(१२) शंकरा (मध्यम का अभाव)

तीव्र ग तथा कोमल नि लगने वाले रागों का आरम्भ—

(१३) खमाज
(१४) देस
(१५) तिलक कामोद
(१६) जयजयवन्ती राग (परमेल प्रवेशक) कुछ विद्वान जयजयवन्ती के पश्चात् ही मालकौंस गाने का समय बतलाते हैं।

अध्वदर्शक स्वर (मध्यम) का महत्व

— *०* —

हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति मे रागों के गाने के समय की दृष्टि से मध्यम स्वर विशेष महत्वपूर्ण है। यह स्वर रागों के समय विभाजन मे पथ प्रदर्शक का कार्य करता है, इसीलिये इसे "अध्वदर्शक स्वर" कहा जाता है। सवेरे के समय में प्राय कोमल (शुद्ध) मध्यम का राज्य रहता है। कोमल रे ध वाले सन्धिप्रकाश रागों मे यदि शुद्ध मध्यम प्रबल होता है तो वे प्रात कालीन सन्धि प्रकाश राग होते हैं और शाम के रागों में तीव्र मध्यम की प्रधानता रहती है, अत वे मध्याकालीन सन्धिप्रकाश राग कहे जाते हैं। इस प्रकार तीव्र मध्यम अधिकतर सायकाल की सूचना देता है और कोमल मध्यम प्रात काल की। यमन, हमीर कामोद, केदार इत्यादि तीव्र मध्यम वाले राग सायकाल मे रात्रि के प्रथम प्रहर के अन्दर ही गा लिये जाते हैं। शाम को मुलतानी, पूर्वी तथा श्री इत्यादि रागों से तीव्र मध्यम का प्रयोग शुरू होता है और यह प्रयोग लगभग आधी रात तक लगातार चलता रहता है। इसके पश्चात् रात्रि के दूसरे प्रहर मे जब विहाग गाने का समय आता है तो धीरे-धीरे शुद्ध मध्यम का प्रयोग आरम्भ हो जाता है। यह सूचित करता है कि प्रभात का समय निकट आ रहा और रात्रि काफी बीत चुकी है। इस प्रकार तीव्र मध्यम के बाद शुद्ध मध्यम की प्रधानता स्थापित हो जाती है। प्रात कालीन सन्धि प्रकाश रागो मे पहिले शुद्ध मध्यम वाले राग भैरव, कालिङ्गडा इत्यादि गाकर फिर दोनों मध्यम वाले राग आ जाते हैं। किन्तु इनमें शुद्ध मध्यम का महत्व अधिक रहता है जैसे रामकली और ललित इत्यादि, इसके पश्चात् जब रे-ध शुद्ध वाले रागो को गाने का समय आता है तब भी शुद्ध मध्यम की ही प्रबलता रहती है, जैसे बिलावल आदि और फिर कोमल गन्धार वाले रागो का समय आता है तो दोनों मध्यमों का प्रयोग आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार तीसरे प्रहर तक शुद्ध और तीव्र दोनों प्रकार के मध्यमों का प्रयोग चलता है, किसी राग में कोमल मध्यम की प्रधानता रहती है किसी में तीव्र की।

सूर्यास्त के समय जब सन्ध्याकालीन सन्धि प्रकाश राग आते हैं, जैसे मारवा, श्री इत्यादि तो उनमे तीव्र मध्यम का महत्व रहता है, इसके पश्चात रे-ग शुद्ध वाले राग आते हैं जैसे कल्याण, हमीर, केदार आदि, तो उनमे भी तीव्र मध्यम का ही विशेष प्राधान्य रहता है। अन्त में जाकर जब कोमल गु वाले रागो के गाने का समय आता है तो शुद्ध मध्यम वाले रागो की फिर प्रधानता हो जाती है, जैसे बागेश्री, काफी, मालकौंस इत्यादि।

इसीलिए कहा जाता है कि हमारी पद्धति मे मध्यम स्वर का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। केवल मध्यम के परिवर्तन से गायनकाल मे अन्तर दीखने लगता है। भैरव प्रात काल के प्रथम प्रहर मे गाया जाता है, किन्तु इसके स्वरों में यदि कोमल मध्यम की जगह तीव्र मध्यम कर दिया जाय तो सायकाल मे गाया जाने वाला पूर्वी राग हो जायगा तथा प्रात काल गाये जाने वाले बिलावल राग के स्वरों मे से सिर्फ कोमल मध्यम हटाकर तीव्र मध्यम करने मे रात्रि को गाया जाने वाला राग यमन हो जाता है। इस प्रकार केवल मध्यम का स्वरूप बदल देने मे प्रात काल के स्थान पर यह राग रात्रिगेय हो गये। इसीलिये

थाट मे पैदा होने वाले जन्य रागो म आश्रय राग का [illegible]

कहा है कि मध्यम के इशारे पर ही सङ्गीतज्ञों के दिन और रात होते हैं। यद्यपि इस नियम के कुछ राग अपवाद भी हैं, किन्तु बहुमत इसी ओर है।

परमेल प्रवेशक राग

परमेल का अर्थ है, दूसरा अन्य कोई मेल और प्रवेशक अर्थात् प्रवेश करने वाला। यानी, परमेल प्रवेशक राग वे कहे जाते हैं जो किसी एक मेल (थाट) से अन्य किसी मेल या थाट में प्रवेश करते हैं, उदाहरणार्थ—संध्याकाल के गाने वाले सन्धि प्रकाश रागों को गाकर जब गायक समयानुसार दूसरे अन्य किसी मेल (थाट) के राग गाना चाहता है, जैसे भीमपलासी, धनाश्री और धानी गाकर जब कोई गायक मुलतानी गाने लगता है तो उससे यह संकेत मालुम होता है कि अब गायक किसी दूसरे थाट (यमन इत्यादि) में प्रवेश करने वाला है। इस प्रकार मुलतानी 'परमेल प्रवेशक' राग माना गया। एक उदाहरण से यह और स्पष्ट किया जाता है:—

रात्रि को जब रे ध शुद्ध वाले वर्ग के रागों का समय समाप्त हो जाता है और <u>ग</u> <u>नि</u> कोमल वाले वर्ग के रागों का गाने का समय आने वाला होता है, उस समय जयजयवन्ती राग "परमेल प्रवेशक" राग माना जायगा, क्योंकि जयजयवन्ती राग में रे-ध शुद्ध वाले वर्ग तथा <u>ग</u> <u>नि</u> कोमल वाले वर्ग दोनों की ही कुछ-कुछ विशेषता मौजूद हैं। जयजयवन्ती में दोनों गंधार दोनों निषाद और शुद्ध रे ध लगते ही हैं, अतः यह राग दूसरा थाट (मेल) आरम्भ होने की सूचना देकर 'परमेल प्रवेशक' राग कहलाता है।

(संगीत मध्यमा) भुवन देवी सोनी के
१९८२ में ली गई परीक्षा / अप्रैल १९८२ की परीक्षा
सर्टिफिकेट २८-२-१९५३

बाबूलाल परिचय

फरवरी सन १९५८

हिंदुस्तानी संगीत पद्धति के ४० सिद्धान्त

— ❀ —

कर्नाटकी सङ्गीत की तुलना में हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति अपनी कुछ विशेषताएँ रखती है, यही कारण है कि आज मैसूर-मद्रास और कर्नाटक को छोड़कर शेष समस्त भारत में हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति ही प्रचलित है। यह पद्धति निम्नलिखित विशेष सिद्धांतों पर अवलम्बित है। सङ्गीत विद्यार्थियों को इन सिद्धान्तों का भली प्रकार मनन कर लेना चाहिये। श्री भातखण्डे जी ने क्रमिक पुस्तक पाचवीं (मराठी) में इनका विस्तृत उल्लेख किया है, उसी आधार पर निम्नलिखित सिद्धान्त दिये जा रहे हैं—

१—हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति की नींव "बिलावल थाट" को शुद्ध थाट मानकर रखी गई है, अर्थात् बिलावल थाट के स्वर ही शुद्ध स्वर सप्तक का निर्माण करते हैं।

२—समस्त रागों का वर्गीकरण तीन भागों में किया गया है (१) औडुव (पाच स्वरों के राग) (२) षाडव (छै स्वरों के राग) (३) सम्पूर्ण (सात स्वरों के राग)।

३—पाच स्वरों से कम का और ७ स्वरों से अधिक का (कोमल तीव्र मिलाकर १२ स्वर) राग नहीं होता।

४—औडुव षाडव और सम्पूर्ण इनके आरोह-अवरोह में उलट-पलट होने से ९ प्रकार के भेद माने जाते हैं, जिनका विवेचन इस पुस्तक में औडुव-षाडव भेद के अन्तर्गत किया है।

५—प्रत्येक राग में थाट, आरोह-अवरोह, वादी-सम्वादी, समय और रंजकता यह बातें अवश्य होती हैं।

६—वादी सम्वादी स्वरों में प्राय ४ स्वरों का अन्तर होता है। वादी स्वर पूर्वाङ्ग में होगा तो सम्वादी उत्तराङ्ग में होगा अथवा वादी स्वर उत्तराङ्ग में होगा, तो सम्वादी पूर्वाङ्ग में होगा।

७—वादी स्वर को बदल कर शाम को गाने वाला राग सवेरे का गाने वाला राग बनाया जा सकता है।

८—राग में सुन्दरता लाने के लिये विवादी या वर्जित स्वर का भी किंचित मात्र प्रयोग किया जा सकता है।

९—हर एक राग में एक वादी स्वर होता है जिसका राग में विशेष जोर रहता है, वादी स्वर के आधार पर ही पूर्व राग और उत्तर राग पहिचाने जा सकते हैं।

१०—इस पद्धति के राग सामान्यत तीन वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं (१) <u>रे</u> <u>ध</u> कोमल वाले राग (२) शुद्ध रे, ध वाले राग (३) <u>ग</u> <u>नि</u> कोमल वाले राग। सधि-प्रकाश राग जो सूर्यास्त और सूर्योदय के समय गाये जाते हैं वे प्रथमवर्ग में अधिकतर पाये जाते हैं। प्रातःकालीन सधिप्रकाश रागों में प्राय रे ध वर्जित नहीं होते तथा सायकालीन सधिप्रकाश रागों में प्राय ग नि दोनों ही वर्जित नहीं होते।

११–इस पद्धति में मध्यम स्वर महत्वपूर्ण माना जाता है, इसे अध्वदर्शक स्वर कहा जाता है क्योंकि इससे दिन रात के रागों को गाने का समय निर्धारित होता है।

१२–जिन रागों में ग़ नि़ कोमल लगते हैं, वे दोपहर को या आधी रात को ही अधिकतर गाये जाते हैं।

१३–संधिप्रकाश रागों के बाद प्रायः रे ग ध नि शुद्ध लगने वाले राग गाये जाते हैं।

१४–षड्ज, मध्यम और पञ्चम यह तीन स्वर प्रायः दिन और रात्रि के तीसरे प्रहर के रागों में अपना महत्व विशेष रूप से रखते हैं।

१५–तीव्र मध्यम अधिकतर रात्रि के रागों में ही पाया जाता है, दिन के रागों में यह स्वर कम दिखाई देता है।

१६–सा, म, प यह स्वर पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग दोनों भागों में ही होते हैं, अतः जो राग प्रत्येक समय (सर्वकालिक) गाये जाने वाले होते हैं, उनमें इन तीन स्वरों में से कोई एक वादी होता है।

१७–मध्यम और पञ्चम यह दोनों स्वर एक साथ किसी भी राग में वर्जित नहीं होते। प वर्जित होगा तो म मौजूद होगा और म वर्जित होगा तो प मौजूद होगा।

१८–किसी भी राग में षड्ज स्वर वर्जित नहीं होता।

१९–रागों में प्रायः एक ही स्वर के दो रूप (कोमल तीव्र) पास-पास नहीं आने चाहिए, किन्तु ललित इत्यादि कुछ राग इस नियम के अपवाद हैं।

२०–अपने नियत समय पर गाने से ही राग सुन्दर लगता है, किन्तु राज दरबार तथा रंगमंच (स्टेज) पर यह नियम शिथिल भी हो जाता है।

२१–तीव्र मं के साथ कोमल नि़ बहुत कम रागों में आता है।

२२–दोनों मध्यम लगने वाले रागों में कुछ-कुछ एकरूपता पाई जाती है, इनकी भिन्नता प्रायः आरोह में ही दिखाई देती है। ऐसे रागों का अन्तरा बहुत कुछ मिलता जुलता होता है।

२३–रात्रि के प्रथम प्रहर में जब दोनों मध्यम वाले राग गाये जाते हैं, उनका एक साधारण सा नियम यह है कि शुद्ध मध्यम तो आरोहावरोह दोनों में लगता है, किन्तु तीव्र मं केवल आरोह में ही दिखाई देता है तथा शुद्ध मध्यम की अपेक्षा तीव्र मध्यम का उपयोग दोनों मध्यम वाले रागों में कम पाया जाता है।

२४–रात्रि के प्रथम प्रहर वाले रागों में एक नियम यह भी दिखाई देता है कि उनके आरोह में निषाद वक्र और अवरोह में गान्धार वक्र रूप से लगता है। ऐसे रागों के अवरोह में प्रायः निषाद दुर्बल दिखाई देता है।

२५–हिन्दुस्तानी पद्धति में ताल की अपेक्षा राग को अधिक महत्व दिया गया है। इसके विरुद्ध कर्नाटकी पद्धति में राग की अपेक्षा ताल का महत्व अधिक माना गया है।

२६–पूर्व रागों की विशेषता आरोह में और उत्तर रागों का चमत्कार अवरोह में दिखाई देता है।

२७–प्राय प्रत्येक थाट से पूर्व और उत्तर राग उत्पन्न हो सकते हैं।

२८–गभीर प्रकृति के रागों में षड्ज, मध्यम या पचम का विशेष महत्व होता है तथा मन्द्र सप्तक में उनका अधिक महत्व माना गया है। किन्तु क्षुद्र प्रकृति के रागों में यह बात नहीं पाई जाती।

२९–सधिप्रकाश रागों के द्वारा करुण व शात रस, रे ग ध तीव्र वाले रागों से शृङ्गार व हास्य और कोमल ग़ु नि॒ वाले रागों द्वारा वीर, रौद्र व भयानक रसों का परिपोषण होता है।

३०–एक थाट के रागों से दूसरे थाटों के रागों में प्रवेश करते समय, परमेल प्रवेशक राग गाये जाते हैं।

३१–सधिप्रकाश राग सूर्योदय और सूर्यास्त के समय गाये बजाये जाते हैं और इनके बाद तीव्र रे ग ध वाले राग गाये जाते हैं या कोमल ग़ु नि॒ वाले राग गाये जाते हैं।

३२–जिन रागों में कोमल नि॒ लगता है जैसे काफी और खमाज थाट के राग। इनके आरोह में बहुधा तीव्र नि का प्रयोग भी कर दिया जाता है।

३३–किसी राग में जब स्वर लगाये जाते हैं तो वे अपने कम अधिक या बराबर के परिमाण में लगकर दुर्बल प्रबल या सम माने जाते हैं। दुर्बल का अर्थ वर्जित नहीं है।

३४–दो-तीन या चार स्वरों के समुदाय को 'तान' कहते हैं, राग नहीं कह सकते।

३५–दोपहर १२ बजे के बाद तथा रात्रि के १२ बजे के बाद जो राग गाये जाते हैं, उनमें क्रमश सा, म, प का प्राबल्य होता चला जाता है।

३६–दोपहर को गाये जाने वाले रागों के आरोह में रे ध या तो लगते ही नहीं या दुर्बल होते हैं। ठीक दोपहर के समय गाये जाने वाले रागों में रिषभ और निषाद स्वर खूब चमकते हैं।

३७–जिन रागों में सा, म, प, यह स्वर वादी होते हैं, वे प्राय गभीर प्रकृति के राग होते हैं।

३८–सवेरे के रागों में कोमल रे॒ ध॒ की प्रबलता रहती है और शाम के रागों में तीव्र ग नि अधिक दिखाई देते हैं।

३९–निसारे॒ग यह स्वर समुदाय शीघ्रतापूर्वक सधिप्रकाशत्व सूचित करता है।

४०–उत्तर रागों का स्वरूप अवरोह में और पूर्व रागों का स्वरूप आरोह में विशेष रूप से खुलकर दिखाई देता है।

———

राग में वादी स्वर का महत्व

"प्रयोगे बहुलः स्वर वादी राजाऽत्र गीयते"।



शास्त्रों की उक्त व्याख्या के अनुसार वादी स्वर की स्थिति रागरूपी राज्य में राजा के समान मानी गई है। वादी स्वर का प्रयोग राग में अन्य स्वरों की अपेक्षा अधिक होता है। वादी स्वर पर ही प्रत्येक राग की विशेषता निर्भर रहती है। इसी कारण वादी स्वर को जीव या अन्शस्वर भी कहते है। वादी स्वर का प्रयोग राग में कुशल गायक भिन्न-भिन्न प्रकारों से करते हैं। राग में वादी स्वर को बार-बार दिखाना, वादी स्वर से ही राग का आरम्भ करना, वादी स्वर पर ही राग समाप्त करना, तथा राग के प्रमुख भागों में वादी स्वर को बार-बार भिन्न-भिन्न स्वरों के साथ दिखाना तथा कभी-कभी वादी स्वर को बड़ी देर तक लम्बा करके गाना, इत्यादि विविध ढङ्गों से वादी स्वर का प्रदर्शन रागों में किया जाता है। उदाहरणार्थ बिहाग में गन्धार वादी स्वर है, तो उसका प्रयोग इस प्रकार देखने में आयेगा:—

ग, रेसा, ऩिसाग, मग, प, गमग, निप, गमग, ऩिसागमध पगमग, सा, इत्यादि।

इसी प्रकार मारवा में वादी स्वर कोमल रे॒ का प्रयोग देखिये:—

ऩिरे॒ऽऽसा, ऩिरे॒ऽऽ, गरे॒ऽऽ, गमंगरे॒, मंगरे॒ऽऽऽसा, इत्यादि। यहां पर कोमल रिषभ को लम्बा खींचकर उसका वादित्व कितनी सुन्दरता से प्रकट किया गया है।

वादी स्वर के प्रयोग से रागों के गाने का समय भी जानने में सुविधा मिलती है। जब किसी राग में सप्तक के पूर्वाङ्ग में से कोई स्वर वादी होता है, तो उसे पूर्वाङ्ग वादी राग कहते हैं और उसके गाने का समय प्रायः दिन रात के पूर्वाङ्ग समय अर्थात् दिन के १२ बजे से रात्रि के १२ बजे तक के बीच होता है जैसे भीमपलासी, पीलू, पूर्वी, मारवा, यमन, भूपाली, बागेश्री इत्यादि रागों में पूर्वाङ्ग वादी स्वर होने के कारण ये राग उपरोक्त समय (पूर्वाङ्ग समय) में ही गाये बजाये जाते हैं।

इसी प्रकार किसी राग में जब कोई वादी स्वर सप्तक के उत्तराङ्ग में से होता है तो वह दिन रात के उत्तराङ्ग भाग अर्थात् रात्रि के १२ बजे से दिन के १२ बजे तक के समय में से किसी समय का राग होता है, जैसेः—भैरव, भैरवी, बिलावल, कालिङ्गड़ा, सोहनी, आसावरी इत्यादि। वादी स्वर की एक विशेषता यह और है कि किसी राग में केवल वादी स्वर बदल देने से ही राग भी बदल जाता है, चाहे उन रागों में लगने वाले स्वर लगभग एक से ही हों। जैसे भीमपलासी और धनाश्री यह दोनों राग काफी थाट से उत्पन्न हुए हैं और दोनों में ही ग॒ नि॒ कोमल प्रयुक्त होते हैं, किन्तु इन रागों में केवल वादी स्वरके उलटफेर से ही राग परिवर्तित होजाता है। जब भीमपलासी गाया जायगा तो उसमें मध्यम स्वर अधिक दिखाया जायगा क्योंकि म स्वर भीमपलासी में वादी है और जब धनाश्री गाया जायगा तो पञ्चम स्वर अधिक दिखाया जायगा; क्योंकि धनाश्री में प, वादी है। इससे स्पष्ट होजाता है कि केवल वादी स्वर को बदल देने से ही भीमपलासी से धनाश्री राग बदल गया।

किसी राग का कोई स्वर समुदाय देखकर उसमें वादी स्वर पहचानने से उस राग का नाम भी ध्यान में आजाता है। जैसे —सा, गमध, निध, सानिधप, गमध, प, धप, गमरे, सा। इसमें धैवत स्वर विशेष रूप से चमक कर अपना वादित्व प्रकट कर रहा है अत यह हमीर राग है, क्योंकि हमीर में वादी धैवत माना गया है।

वादी स्वर की सहायता से राग का विस्तार तथा राग की बढत भी दिखाई जाती है, जैसे मालकौंस में मध्यम स्वर वादी है, तो देखिये उसके स्वर विस्तार में म किस तरह समाया हुआ है —

सा, निसा, म, मग़, मध़, निध़, मग़, ग़मग़, सा। साम, सामग़म, धपग़म, निधमग़, म। इत्यादि।

राग में वादी स्वर का महत्व बताते हुए ऊपर जो वर्णन किया गया है उसके अनुसार निम्नलिखित ७ बातें विद्यार्थियों को याद रखनी चाहिए —

(१) वादी स्वर राग का प्रधान स्वर होता है और राग रूपी राज्य में उसका स्थान राजा के बराबर है।

(२) वादी स्वर को ही सङ्गीत शास्त्रों में 'जीवस्वर' भी कहा है अर्थात् इसी स्वर में राग के प्राण होते हैं।

(३) वादी स्वर से राग के गाने का समय जाना जा सकता है।

(४) केवल वादी स्वर को बदल देने से कोई-कोई राग भी बदल जाता है चाहे अन्य स्वर दोनों रागों में एक से ही हों।

(५) वादी स्वर पर राग का सौन्दर्य निर्भर है।

(६) किसी स्वर समुदाय में वादी स्वर को पहिचान कर यह बताया जा सकता है कि यह अमुक राग है।

(७) राग में लगने वाले अन्य सब स्वरों की अपेक्षा वादी स्वर अधिक प्रयोग में आता है।

राग में विवादी स्वर का प्रयोग

शास्त्र नियम के अनुसार रागों में विवादी स्वरों का प्रयोग वर्जित है, किन्तु उसका अल्पत्व रखते हुये थोडा सा प्रयोग तान इत्यादि में करने की आज्ञा भी शास्त्रों में पाई जाती है, जैसा कि 'राग मंजरी' में कहा है —

"विवादी तु सदा त्याज्यः क्वचित्तानक्रियात्मकः।"

इस प्रकार विवादी स्वर के विषय में प्राचीन ग्रन्थकारों की धारणा विचित्र रूप से पाई जाती है। इसी का उल्लेख करते हुए 'लक्ष्य सङ्गीत' में कहा है —

विवादीस्वरव्याख्याने रत्नाकर प्रपंचितम्।
रहस्य किंचिदप्यासीत् भिन्न मर्मविदामते॥

इससे सिद्ध होता है कि विवादी स्वर की व्याख्या रत्नाकर आदि ग्रन्थों में रहस्यपूर्ण ढङ्ग से भिन्न-भिन्न रूप में पाई जाती है। कई ग्रंथों में विवादी स्वर को राग का दुश्मन भी "शत्रुतुल्याः विवादिनः" कहकर बताया गया है।

इतना सब होते हुए भी स्वर्गीय भातखण्डे जी का मत विवादी स्वर के बारे में यह था कि यदि कुशलता पूर्वक कण के रूप में विवादी स्वर का प्रयोग कर दिया जाय और उससे राग की रंजकता बढ़ती हो तो "मनाक्स्पर्श" के नाते वह कृत्य क्षम्य समझा जावेगा। उन्होंने अभिनव राग मंजरी में लिखा है:—

सुप्रमाणयुतोरागे विवादी रक्तवर्धकः।
यथेष कृष्णवर्णेन शुभ्रस्यातिविचित्रता ॥

'सङ्गीत समयसार' ग्रन्थ में विवादी स्वर की व्याख्या "प्रच्छादनीयो लोप्यो वा" इस प्रकार की गई है। प्रच्छादन का अर्थ है "मनाक्स्पर्श" अर्थात् किंचित मात्र विवादी स्वर का प्रयोग। इस प्रकार आजकल हम देखते भी हैं कि कुशल गायक अपने राग में विवादी स्वर का किंचित प्रयोग करके श्रोताओं से प्रशंसा प्राप्त कर लेते हैं और राग का स्वरूप भी नहीं बिगड़ने पाता, बल्कि उसमें कुछ और विचित्रता ही पैदा हो जाती है। किन्तु यह कार्य अत्यन्त सावधानी से ही करना चाहिये। इसके विरुद्ध यदि गायक चतुर न हुआ और बेढंगे तरीके से वह विवादी स्वर का प्रयोग कर बैठे तो राग-हानि तो होगी ही, साथ ही वह श्रोताओं से निन्दा भी प्राप्त करेगा।

इसलिये विवादी स्वर का जब कभी प्रयोग किया जाय तो क्षणिक कण के रूप में या जलद तानों में ही करना शोभा देगा। इस मत का समर्थन 'राग विबोध' में इस प्रकार मिलता है—"वर्ज्यस्वरोऽवरोहे द्रुतगीतो नरक्तिहरः" अर्थात् वर्जित स्वर द्रुत गीतों में सौंदर्य को नष्ट नहीं करता।

वर्तमान समय में अनेक रागों में विवादी स्वरों का प्रयोग होने लगा है। जैसे हमीर, कामोद और गौड़सारङ्ग रागों में कोमल निषाद विवादी स्वर के नाते जब कण स्पर्श या द्रुत लय की मींड़ के साथ प्रयुक्त किया जाता है तो उस समय बड़ा अच्छा लगता है। इसी प्रकार केदार, छायानट, रागों में तो विवादी स्वर (कोमल निषाद) का प्रचार इतना बढ़ गया है कि कभी-कभी श्रोतागण आश्चर्य चकित हो जाते हैं। और भैरवी की तो कुछ पूछिये ही मत, उसमें तो विवादी स्वर का प्रयोग आजकल इतना बढ़ गया है कि यह राग ७ स्वरों की जगह १२ स्वरों का हो गया है। अर्थात् कोमल स्वरों के अतिरिक्त रे ग मं ध नि इन तीव्र स्वरों का भी प्रयोग इसमें खूब खुलकर लोग करने लगे हैं। किन्तु विवादी स्वरों का अधिकताके साथ प्रयोग करना रागों के साथ अन्याय करना है।

विवादी स्वर आखिर विवादी ही है, अतः उसका प्रयोग सीमित रूप में और कुशलता के साथ करना ही उचित है।

———

राग-रागिनी पद्धति

सङ्गीत के कुछ प्राचीन ग्रन्थकारों ने रागों का वर्गीकरण राग-रागिनी-रागपुत्र राग-पुत्रवधू इस प्रकार किया है। इनमें मुख्य चार मतों का उल्लेख मिलता है — (१) शिवमत या सोमेश्वर मत, (२) भरतमत, (३) कल्लिनाथमत, (४) हनुमत मत।

इन मतों के मानने वाले विद्वानों में मुख्य छः रागों के बारे में भी मतभेद था, अर्थात कोई विद्वान अपने छः राग एक प्रकार से मानते थे और कुछ विद्वान अपने छः राग भिन्न प्रकार से मानते थे।

शिवमत (सोमेश्वर मत) के ६ राग ३६ रागिनी

राग	प्रत्येक की ६ रागिनी
१ श्री	१ मालवी, २ त्रिवेणी, ३ गौरी, ४ केदारी, ५ मधुमाधवी, ६ पहाडिका
२ बसन्त	१ देशी, २ देवगिरी, ३ वराटी, ४ तोडी, ५ ललिता, ६ हिंदोली
३ पंचम	१ विभाषा, २ भूपाली, ३ कर्णाटी, ४ बडहंसिका, ५ मालवी, ६ पटमंजरी
४ मेघ	१ मल्लारी, २ सोरठी, ३ सावेरी, ४ कौशिकी, ५ गान्धारी, ६ हरश्रृङ्गारा
५ भैरव	१ भैरवी, २ गुर्जरी, ३ रामकिरी, ४ गुणकिरी, ५ बङ्गाली, ६ सैंधवी
६ नटनारायण	१ कामोदी, २ आभीरी, ३ नाटिका, ४ कल्याणी, ५ सारङ्गी, ६ नट्टहंबीरा

शिवमत को मानने वालों के लिये दामोदर पण्डित कृत 'सङ्गीत दर्पण' ग्रन्थ महत्वपूर्ण माना जाता है। शिवमत व कल्लिनाथ मत में राग संख्या ६ मानकर प्रत्येक की ६-६ रागिनी मानी हैं, किन्तु अन्य मतों में ६ राग मानकर उनकी ५-५ रागिनी मानी हैं। अर्थात् शिवमत व कल्लिनाथ मत ६ राग ३६ रागिनी के सिद्धान्त को मानते हैं और भरतमत तथा हनुमान मत में ६ राग ३० रागनी का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है।

भरतमत के ६ राग ३० रागिनी

राग	प्रत्येक राग की ५-५ रागिनी
१ भैरव	१ मधुमाधवी, २ ललिता, ३ बरारी, ४ भैरवी, ५ बहुली
२ मालकोस	१ गुजरी, २ विद्यावती, ३ तोडी, ४ खम्बावती, ५ कुकभ

३	हिण्डोल	१ रामकली, २ मालवी, ३ आसावरी, ४ देवारी, ५ केकी
४	दीपक	१ केदारी, २ गौरा, ३ रुद्रावती, ४ कामोद, ५ गुजरी
५	श्री	१ सैंधवी २ काफी, ३ ठुमरी, ४ विचित्रा, ५ सोहनी
६	मेघ	१ मल्लारी, २ सारङ्गा, ३ देशी, ४ रतिवल्लभा, ५ कानरा

कल्लिनाथ मत के ६ राग ३६ रागिनी

१	श्रीराग	१ गौरी, २ कोलाहल, ३ धवला, वरोराजी, ५ मालकौंस, ६ देवगंधार
२	पंचम	१ त्रिवेणी, २ हस्तंतरेतहा, ३ अहीरी, ४ कोकभ, ५ बेरारी, ६ आसावरी
३	भैरव	१ भैरवी, २ गुजरी, ३ बिलावली, ४ बिहाग, ५ कर्नाट, ६ कानड़ा
४	मेघ	१ बङ्गाली, २ मधुरा, ३ कामोद, ४ धनाश्री, ५ देवतीर्थी, ६ दिवाली
५	नटनारायण	१ त्रिबंकी, २ तिलंगी, ३ पूर्वी, ४ गांधारी, ५ रामा, ६ सिंधमल्लारी
६	वसन्त	१ अंधाली, २ गुणकली, ३ पटमंजरी, ४ गौंडगिरी, ५ धांकी, ६ देवसाग

हनुमत मत के ६ राग ३० रागिनी

राग		प्रत्येक राग की ५–५ रागिनी
१	भैरव	१ बङ्गाली, २ सैंधवी, ३ भैरवी, ४ बरारी, ५ मधमादी
२	मालकौंस	१ तोड़ी, २ गुणकरी, ३ गौरी, ४ खम्बावती, ५ कुकभ
३	हिण्डोल	१ रामकली, २ देशाख, ३ ललिता, ४ बिलावली, ५ पटमंजरी
४	दीपक	१ देशी, २ कामोदी, ३ केदारी, ४ कानड़ा, ५ नटिका
५	श्रीराग	१ मालश्री, २ आसावरी, ३ धनाश्री, ४ वसन्ती, ५ मारवा
६	मेघराग	१ तनक, २ मल्लारी, ३ गुजरी, ४ भोपाली, ५ देशकार

इनके अतिरिक्त प्राचीन ग्रन्थकारों ने प्रत्येक रागिनी के पुत्र और पुत्रवधू मानकर राग परिवार विस्तृत किया है।

जिस समय उक्त मत प्रचलित थे, उस समय में उन राग रागनियों [illegible] था, वह आधुनिक प्रचलित रागों से नहीं मिलता। अतः उनको आधुनिक [illegible]

में लागू नहीं किया जा सकता। फिर भी सङ्गीत के विद्यार्थियों को अपनी प्राचीन राग-रागिनी पद्धति के बारे में जानकारी रखना आवश्यक है।

प्राचीन राग-रागिनी पद्धति का खण्डन करते हुए सर्व प्रथम (१८१३ ई० में) पटना के मुहम्मदरजा ने अपने ग्रन्थ 'नगमाते आसफी' में लिखा है कि प्राचीन राग-रागिनी-पुत्र-पुत्रवधू की कल्पना गलत और अवैज्ञानिक हैं, क्योंकि राग और उनकी रागनियों के स्वरों में समता नहीं पाई जाती। अत मुहम्मदरजा ने बिलावल थाट को शुद्ध थाट मानकर सर्व प्रथम अपना एक नवीन मत प्रचलित किया। इनका कहना है कि रागों और उनकी रागनियों के स्वरों में कुछ सामजस्य अवश्य होना चाहिये, अत इन्होंने ६ राग और ३० रागिनी का अपना नवीन मत तत्कालीन सङ्गीतज्ञों के सम्मुख रक्खा। उन्होंने हनुमत मत से मिलते-जुलते राग रागनियों के नामों पर नवीन स्वरों का निर्माण किया। रजा साहेब की यह पद्धति भी बहुत समय तक प्रचलित रही, किन्तु बाद में आधुनिक ग्रन्थकारों द्वारा यह पद्धति तथा प्राचीन राग रागनी की सभी पद्धतियां छोड़कर थाट-राग पद्धति चालू हो गई।

प्राचीन ग्रन्थकारों ने सङ्गीत की उत्पत्ति देवी-देवताओं से मानी है, अत इन राग रागिनियों को भी उन्होंने पुरुष राग और स्त्री रागिनी के रूप में देव-देवी स्वरूप ही मानकर वर्गीकरण किया। उनके स्वरूप भी वर्णन किए गए, जिनके आधार पर राग-रागिनियों के चित्र भी बन गये जो आज तक पाये जाते हैं।

जिस युग में, जैसे रागों का प्रचार होता है, उसी के आधार पर उस युग के विद्वान सङ्गीत शास्त्र की रचना करते हैं, किन्तु सङ्गीत परिवर्तनशील रहा है। प्राचीन ग्रन्थों में रागों के वर्णित स्वरूप या स्वर आज के प्रचलित राग स्वरों से मेल नहीं खाते। उदाहरण के लिये राग मालकौंस को लीजिये। प्राचीन शास्त्रों में यह मालवकौशिक, मालकोश, मालकौंस आदि नामों से मिलता है। सङ्गीतदर्पणकार ने मालवकौशिक के स्वर सा रे ग म प ध नि सा दिये हैं। हृदयप्रकाश में सा रे ग ध नि सा, सा नि ध म ग रे सा इस प्रकार बताया है, किन्तु आजकल जो मालकौंस राग प्रचलित है, वह रे-प वर्जित होकर सा ग़ म ध़ ऩि सा, सा ऩि ध़ म ग़ सा इस प्रकार है। ऐसे ही अन्य बहुत से रागों के नाम तो आजकल मिलते हैं, किन्तु उनकी स्वरावली बिलकुल दूसरे रूप में है। इन्हीं सब कारणों से प्राचीन राग रागिनी पद्धति धीरे-धीरे पीछे छूटती रही और थाट पद्धति से रागों की उत्पत्ति की गई। आजकल थाट-राग पद्धति ही भारत में प्रचलित तथा मान्य हो रही है।

गायकों के गुण-अवगुण

सङ्गीतं मोहिनीरूपमित्याहुः सत्यमेव तत् ।
योग्यरसभावभाषारागप्रभृतिसाधनैः ।
गायकः श्रोतृमनसि नियतं जनयेत् फलम् ॥

—लक्ष्यसङ्गीतम्

योग्य रस, भाव तथा भाषाङ्ग की उचित रूप से साधना करते हुए जो गायक गाता है, उसका सङ्गीत मोहनी रूप होकर श्रोताओं के मन को जीतने में अवश्य ही सफल होगा। इसीलिए हमारे प्राचीन ग्रन्थकारों ने गायकों के गुणावगुणों का वर्णन बड़े सुन्दर ढङ्ग से किया है। उन नियमों पर ध्यान देकर जो सङ्गीतज्ञ अपनी कला का प्रदर्शन करता है, उसके गाने का रङ्ग महफिल में शीघ्र ही जमजाता है। इसके विरुद्ध कुछ गायक ऐसे देखे जाते हैं जिन्होंने या तो "गायकों के गुणावगुणों" का शास्त्रों में मनन ही नहीं किया है, अथवा वे उन्हें जानते हुए भी अपनी आदत से मजबूर होकर उन पर ध्यान नहीं देते। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी भद्दी हरकतें (मुद्रा) महफिल में रङ्ग जमाने के बजाय, हास्य का वातावरण पैदा कर देती हैं। क्योंकि श्रोताओं में सभी तरह के व्यक्ति होते हैं। कोई गीत की कविता पर ध्यान देता है, तो कोई गायक के सुरीलेपन और लयकारी को देखता है, अथवा कोई गायक गायिका के रूप रङ्ग तथा उसके हाव-भाव प्रदर्शित करने के ढङ्ग में ही आनन्द लेता है। इस प्रकार सङ्गीतकला के सभी अङ्गों से भिन्न-भिन्न प्रकार के श्रोता अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल रसास्वादन करते हैं। ऐसी हालत में यह निश्चय ही है कि गायक के गुण-अवगुण महफिल का रङ्ग बनाने या बिगाड़ने में कितने सहायक होते हैं। अतः प्रत्येक सङ्गीत विद्यार्थी को आरम्भ से ही ध्यान देकर गायकों के गुण अपनाने चाहिये और अवगुणों से बचना चाहिये। आरम्भ में जैसी आदत पड़ जाती है, वह आसानी से नहीं छूटती। यदि शुरू में ही हाथ पैर फेंक-फेंककर या टेढ़ा मुँह करके, भद्दे ढङ्ग से दांत दिखाकर गाने की आदत पड़ गई तो उससे पीछा छुड़ाना मुशकिल हो जायगा और इसका परिणाम यह होगा कि सङ्गीत समाज मे उसे सम्मान और सफलता कदापि नहीं मिलेगी। ऐसे गायकों की स्थिति बताते हुए लक्ष्य सङ्गीतकार ने ठीक ही लिखा है:—

भाषाऽव्यक्ता हावभावाः प्रतीयन्ते विसंगता ।
व्यस्ताश्चेष्टास्तथाऽऽक्रोशाः केवलम् कर्कशा मताः ॥
एतादृग्गायनान्नस्यात् परिणामो ह्यभीप्सितः ।
ततो हास्यरसस्यैव केवलम् स्यात् समुद्भवः ॥ ७२ ॥

—लक्ष्यसङ्गीतम्

उपरोक्त श्लोक का भावार्थ यही है कि भद्दे ढङ्ग से चिल्लाकर और ऊटपटांग हाव-भाव दिखाने से महफिल में केवल हास्यरस का ही वातावरण पैदा होता है।

'सङ्गीत रत्नाकर' ग्रन्थ में गायकों के गुणों के बारे में इस प्रकार लिखा है —

गायक के गुण—

हृद्यशब्दः सुशारीरो ग्रहमोक्षविचक्षणः ।
रागरागांगभाषांगक्रियांगोपांगकोविदः
प्रबन्धगाननिष्णातो विविधालप्तितत्त्ववित् ।
सर्वस्थानोच्चगमकेष्वनायासलसद्गतिः ॥
आयत्तकण्ठस्तालज्ञः सावधानो जितश्रमः ।
शुद्धच्छायालगाभिज्ञः सर्वकाकुविशेषवित् ॥
अपारस्थायसंचारः सर्वदोषविवर्जितः ।
क्रियापरोऽजस्रलयः सुघटो धारणान्वितः ॥
स्फूर्जन्निर्जवनो हारिरहः कृद्भजनोद्धुरः ।
सुसम्प्रदायो गीतज्ञैर्गीयते गायनाग्रणीः ॥

भावार्थ—

१ हृद्यशब्द—जिसका शब्द यानी आवाज मधुर व सुरीली हो।

२ सुशारीर—जिसकी वाणी में अभ्यास के बिना राग स्वरूप व्यक्त करने का धर्म (तासीर) हो।

३ ग्रहमोक्षविचक्षण —ग्रह और न्यास के नियमों को जानने वाला हो (ग्रह न्यास की विवेचना इसी पुस्तक में दे दीगई है)।

४ रागरागांगादिकोविद —राग रागाङ्ग इत्यादि का जानकार हो (देशी सङ्गीत में रागाङ्ग, भाषाङ्ग, क्रियाङ्ग और उपाङ्ग ऐसे चार भेद कहे गये हैं, उनका विवेचन भी इसी पुस्तक में अन्यत्र दे दिया है)

५ प्रबन्धगाननिष्णात —प्रबन्ध गायन में प्रवीण हो (प्रबन्ध एक प्रकार प्राचीन गायन-शैली थी, किन्तु वर्तमान समय में प्रचलित नहीं है)।

६ विवधालप्तितत्ववित्—जो भिन्न-भिन्न आलप्तियों के तत्व का ज्ञाता हो। अर्थात् आलाप करने की गूढ बातें (राग का आविर्भाव तिरोभाव दिखाने की कला) जानता हो।

७ सर्वस्थानोच्चगमकेष्वनायासलसद्गति —सब स्थानों की गमक जो सहज में ही ले सकता हो। अर्थात् मन्द्र, मध्य और तार, इन तीनों स्थानों में गमकों का प्रयोग कर सके।

८ आयत्तकण्ठ —जिसका कण्ठ (गला) स्वाधीन हो, यानी खुली हुई आवाज हो।

९ तालज्ञः—ताल का ज्ञान रखने वाला हो।

१० सावधानः—एकाग्र चित्त होकर सावधानी पूर्वक जो गावे।

११ जितश्रमः—श्रम को जीतने वाला हो, अर्थात गाते समय यह अनुभव न हो कि गाने में बड़ा परिश्रम करना पड़ रहा है।

१२ शुद्धच्छायालगाभिज्ञः—शुद्ध छायालग और संकीर्ण इन राग भेदों को जानने वाला हो (इन राग भेदों की परिभाषा भी इस पुस्तक में अन्यत्र दी गई है)।

१३–सर्वकाकुविशेषवित—सङ्गीत शास्त्रों में वर्णित षटविधि यानी छः प्रकार के काकुओं का प्रयोग करने की जानकारी रखता हो।*

१४ अपारस्थायसंचार—गाते समय असंख्य स्थाय अर्थात रागों के भाग या हिस्से तैयार करके सुनाने का ज्ञान रखता हो।

१५ सर्वदोपविवर्जितः—सब प्रकार के दोषों से रहित हो अर्थात जिसमे कोई दोप न हो।

१६ क्रियापर—जो अभ्यास में दक्ष हो अर्थात रियाज़ी हो।

१७ अजस्रलय—जो अत्यन्त लयदार हो।

१८ सुघटः—जो सुघड़ (सुन्दर) हो, अर्थात जिसे देखकर श्रोता घृणा न करें।

१९ धारणान्वितः—धारणावान हो।

२० स्फूर्जन्निर्जवनः—"निर्जवन" यह स्थाय का एक विशेप भाग है, इस भाग को गाते समय मेघ गर्जना के समान गम्भीर आवाज़ निकालने वाला हो।

२१ हारिरहः कृद्भजनोद्धुरः—अपने गायन से श्रोताओं के मन को मोहित करने वाला हो।

२२ सुसम्प्रदायः—जिसकी गुरु परम्परा उच्च श्रेणी की हो, यानी ऊँचे सम्प्रदाय का हो।

गायक के अवगुण

संदष्टोद्‌घृष्टसूत्कारिभीतशंकितकम्पिताः।
कराली विकलः काकी वितालकरभोद्बडाः॥
झोंबकस्तुंबकी वक्री प्रसारी विनिमीलकः।
विरसापस्वराव्यक्तस्थानभ्रष्टाव्यवस्थिताः॥
मिश्रकोऽनवधानश्च तथाऽन्यः सानुनासिकः।
पंचविंशतिरित्येते गायना निंदिता मताः॥

—सङ्गीतरत्नाकर

* सङ्गीत रत्नाकर में ६ प्रकार के काकुओं के नाम इस प्रकार दिये हैं—(१) स्वरकाकु (२) रागकाकु (३) देशकाकु (४) क्षेत्रकाकु (५) अन्यराग काकु (६) यन्त्रकाकु।

भावार्थः—

१—सदष्ट—दात पीसकर गाने वाला।

२—उद्‌घृष्ट—निरस, जोर से चिल्लाने वाला।

३—सूत्कारी—गाते समय सूत्कार करने वाला।

४—भीत—भयभीत होकर गाने वाला। यानी जो डरते-डरते गावे।

५—शकित—आत्म विश्वास रहित, घबराकर जल्दबाजी से गाने वाला।

६—कम्पित—काँपती हुई आवाज से गाने वाला।

७—कराली—भयकर मुँह फाडकर गाने वाला।

८—विकल—जिसके गाने में श्रुतिया कम या अधिक लगजाती हैं, अर्थात् जिसके स्वर अपने उचित स्थान पर नहीं लगते।

९—काकी—कौए के समान कर्कश आवाज वाला।

१०-विताल—बेताला गाने वाला।

११-करभ—मुडी-ऊ ची करके गाने वाला।

१२-उद्भड—भेड़ की तरह मुँह फाडकर गाने वाला।

१३-झोंबक—गले और मुँह की नसें फुलाकर गाने वाला।

१४-तुम्बकी—तुम्बे के समान मुँह फुलकार गाने वाला।

१५-वक्री—मुडी टेढा करने वाला।

१६-प्रसारी—हाथ पैर फेंक-फेंक कर या हाथ पैर पटक कर गाने वाला।

१७-निमीलिक—आखे बन्द करके या आखे मींचकर गाने वाला।

१८-विरस—जिसके गाने में रस न हो अर्थात् निरस गाने वाला।

१९-अपस्वर—जिसके गाने में वर्जित स्वर भी लगजाये।

२०-अव्यक्त—गाते समय जिसका शब्दोच्चारण ठीक न हो।

२१-स्थान भ्रष्ट—जिसकी आवाज योग्यस्थान पर नहीं पहुँचती।

२२-अव्यवस्थित—बेढगे तरीके से यानी अव्यवस्थित रीति से गाने वाला।

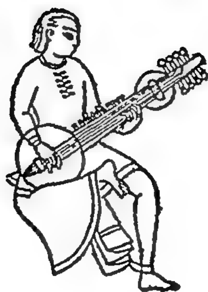
२३-मिश्रक—राग मिश्र करके (रागो को मिलाकर) गाने वाला।

२४-अनवधान—लापरवाही से गाने वाला।

२५-सानुनासिक—नाक के स्वर से गाने वाला, अर्थात् जो गाते समय नाक से आवाज निकाले।

उपरोक्त समस्त दोषों से अच्छे गायक को बचना चाहिए, ऐसा शास्त्रविधान है। यहां पर यह प्रश्न उठ सकता है कि उपरोक्त २५ दोषों में कुछ दोष ऐसे भी तो हैं, जो अच्छे-अच्छे गायकों में पाये जाते हैं, जैसे १९ और २३ अर्थात् बहुत से बड़े-बड़े गायक अपने गायन में वर्जित स्वर प्रयोग करते देखे जाते हैं और अनेक गायक रागों को मिश्र करके यानी मिलाकर गाते हैं।

इसका उत्तर यही दिया जासकता है कि कुशल गायक जब कभी वर्जित स्वर का प्रयोग राग में करते हैं, वहां वे विवादी स्वर के नाते ऐसी कुशलता से उसे लगाते हैं कि राग का सौन्दर्य बिगड़ने के बजाय और खिल उठता है, अतः उपरोक्त नियम का अपवाद समझते हुए उनका वह कृत्य "गायक अवगुण" श्रेणी में नहीं आता। 'समरथ को नहिं दोष गुसांई' की उक्ति के अनुसार वे दोषी नहीं ठहराये जासकते, क्योंकि उनको यह सामर्थ्य प्राप्त है कि वे राग में विकृत स्वर लगाकर भी उसके द्वारा एक विशेषता दिखादें। इसके विरुद्ध साधारण गायक यदि ऐसे कृत्य करने लगेगा तो वह राग रूप को ही बिगाड़ बैठेगा, इसी प्रकार रागों में मिश्रण करने के लिये भी कुशल और समर्थ सङ्गीतज्ञ दोषमुक्त किये जासकते है, क्योंकि वे जब किसी एक राग में दूसरे राग के स्वर दिखाते हैं या मिलाते हैं तो उस मुख्य राग का रूप नहीं बिगड़ने देते, प्रत्युत वहां पर अन्य राग की थोड़ी सी छाया लाकर 'तिरोभाव' दिखाते हुए मुख्य राग को कुछ देर के लिये छिपाकर फिर आविर्भाव द्वारा उसे प्रकट करके अपना कौशल दिखाते हैं। इसी कार्य को एक साधारण गायक करने लगे तो वह कठिनाई में पड़ जायगा और मुख्य राग का रूप भी नष्ट कर बैठेगा। इसीलिये शास्त्रकारों ने इसे भी दोष माना है। अतः शास्त्रों में वर्णित उपरोक्त गुण-अवगुणों पर सङ्गीत विद्यार्थियों को पूर्ण ध्यान देना चाहिए।



नायक, गायक आदि के भेद

नायक—जो प्राचीन तथा नवीन दोनों प्रकार के सङ्गीत का पूर्ण ज्ञाता है और गुरु-परम्परा से मिली हुई शिक्षा के अनुसार ताल और स्वर में बनी हुई चीजें शुद्ध रूप से गाता बजाता है, उसे नायक कहते हैं और उसके द्वारा प्रदर्शित की हुई कला को नायकी कहते हैं।

गायक—गुरु परम्परा से बनी हुई चीजों को या नायक द्वारा प्रदर्शित सङ्गीत में अपनी बुद्धि से अलंकार एवं तानों का प्रयोग करके उसमें सौन्दर्य एवं विचित्रता पैदा करके गाता है, उसे गायक कहते हैं और उसके द्वारा जो कला प्रदर्शित होती है उसे गायकी कहते हैं।

कलावन्त—कलावन्त का मुख्य गुण है क्रिया सिद्धि। जिसके नित्यप्रति के अभ्यास से गला और हाथ खूब तैयार हों। जो ध्रुपद, धमार का पूर्ण ज्ञाता हो और कुशलता पूर्वक गाकर श्रोताओं का मनोरंजन कर सके, उसे "कलावन्त" कहते हैं।

गान्धर्व—जो मार्ग सङ्गीत को गा बजा सकते हों तथा राग-रागनियों की भी पूर्ण जानकारी रखते हों, उन्हें गान्धर्व कहते हैं।

पण्डित—जिन्हें गायन शास्त्र का तो पूर्ण ज्ञान है किन्तु गायन कला अर्थात् क्रियात्मक सङ्गीत का साधारण ज्ञान है, उन्हें सङ्गीत कला के पण्डित कहते हैं।

सङ्गीत शास्त्रकार—जिसे सङ्गीत की प्राचीन और नवीन पद्धति की जानकारी हो, सङ्गीत का पूर्व इतिहास, प्राचीन और अर्वाचीन शुद्ध सप्तकों का ज्ञान हो, प्राचीन और आज की गायन पद्धति का अन्तर प्रकट करने की क्षमता रखता हो। गीत प्रबन्ध, वाद्यों की प्रकार, ताल, नृत्य का इतिहास अपनी लेखनी द्वारा प्रकट कर सके एवं सङ्गीत का वर्तमान स्वरूप और भविष्य में उसकी उन्नति पर अपने योग्य विचार प्रकट कर के सङ्गीत कला का आदर्श उपस्थित कर सके और प्राचीन तथा आधुनिक सङ्गीत पद्धति पर नवीन ग्रंथों का निर्माण कर सके, उसे 'सङ्गीत शास्त्रकार' कहते हैं।

सङ्गीत शिक्षक—जो शान्तवृत्ति से विद्यार्थी को सङ्गीत शिक्षा दे सके एवं उसकी कठिनाइयों को जानकर, उसकी आवाज का धर्म, ग्रहण शक्ति, रुचि पर ध्यान देकर सहज और सरल मार्ग से समझाने-पढ़ाने की क्षमता रखता हो, उसे सङ्गीत शिक्षक कहते हैं। सङ्गीत शिक्षक गवैयों की महफिल में बैठकर अपना रङ्ग चाहे न जमा सके किन्तु वह अच्छे सङ्गीत विद्यार्थी तैयार करने का गुण रखने वाला हो।

कव्वाल—जो गायक गजल, दादरा कव्वाली इत्यादि गाते हैं, उन्हें कव्वाल कहा जाता है।

अताई गायक—जो व्यक्ति किसी एक उस्ताद को अपना उस्ताद या गुरू न मान कर शुद्ध रूप से नियमित सङ्गीत शिक्षा नहीं लेते, बल्कि इधर-उधर जहां से भी प्राप्त हुआ देख, सुनकर गाने बजाने लगते हैं, उन्हें अताई गवैया कहा जाता है।

कत्थक—नृत्य सङ्गीत की शिक्षा देने वाले व्यवसायी, जिनके यहां कई पीढ़ी से यही कार्य होता आया है, उन्हें कत्थक या ढाड़ी कहते हैं।

उत्तम वाग्गेयकार

वाक् और गेय से मिलकर वाग्गेय शब्द बना है। वाक् यानी पद्यरचना और गेय का अर्थ है स्वर रचना, इसी को मातु और धातु भी कहते हैं। अर्थात जो स्वररचना और पद्यरचना का ज्ञाता हो, ऐसे सङ्गीत विद्वान को प्राचीनकाल में वाग्गेयकार की संज्ञा दी जाती थी। पाश्चात्य विद्वान उसे कम्पोज़र (Composer) कहते हैं। वाग्गेयकार को साहित्य और सङ्गीत दोनों का उत्तम ज्ञान होना अति आवश्यक है, तभी वह पद्यरचना और स्वररचना कर सकता है। 'सङ्गीत रत्नाकर' में वाग्गेयकार के गुणों का वर्णन इस प्रकार किया है:—

वामांतुरुच्यते गेयं धातुरित्यभिदीयते।
वाचं गेयं च कुरुते यः स वाग्गेयकारकः ॥ १ ॥

शब्दानुशासनज्ञानमभिधानप्रवीणता।
छन्दः प्रभेदवेदित्वमलंकारेषु कौशलम् ॥ २ ॥

रसभावपरिज्ञानं देशस्थितिषु चातुरी।
अशेषभाषाविज्ञानं कलाशास्त्रेषु कौशलम् ॥ ३ ॥

तूर्यत्रितयचातुर्यं हृद्यशारीरशालिता।
लयतालकलाज्ञानं विवेकोऽनेककाकुषु ॥ ४ ॥

प्रभूतप्रतिभोद्भेदभाक्त्वं सुभगगेयता।
देशीरागेष्वभिज्ञत्वं वाक्पटुत्वं सभाजये ॥ ५ ॥

रागद्वेषपरित्यागः सार्द्रत्वमुचितज्ञता।
अनुच्छिष्टोक्तिनिर्बन्धो नूत्नधातुविनिर्मितिः ॥ ६ ॥

परचित्तपरिज्ञानं प्रबन्धेषुप्रगल्भता।
द्रुतगीतविनिर्माणं पदांतरविदग्धता ॥ ७ ॥

त्रिस्थानगमकप्रौढिर्विविधालप्तिनैपुणम्।
अवधानं गुणैरेभिर्वरो वाग्गेयकारकः ॥ ८ ॥

उपरोक्त ८ श्लोकों का भावार्थ उनके नम्बरों के क्रम से नीचे दिया जाता है —

१—वाङ् यानी मातु और गेय यानी धातु का जो कर्त्ता है अर्थात् पद्यरचना और स्वर-रचना का जो ज्ञाता है, वह वाग्गेयकार है।

२—जिसे व्याकरण शास्त्रज्ञान, अमरकोश आदि ग्रंथों का ज्ञान और सब प्रकार के छन्दों का ज्ञान है तथा जो साहित्य शास्त्र में बताये हुए उपमादिक अलकारों का ज्ञाता है।

३—उसी शास्त्र में वर्णित शृंगार आदि रसों और विभावादिक भावों का जिसे उत्तम ज्ञान है, जो भिन्न-भिन्न देशों के रीति रिवाज और उनकी भाषाओं की जानकारी रखते हुए सङ्गीतादि शास्त्रों में प्रवीण है।

४—गीत वाद्य और नृत्य इन तीनों में जो चतुर है और जिसे हृद्य अर्थात् सुन्दर शारीर प्राप्त हुआ है (शारीर एक पारिभाषिक शब्द है, अत हृद्य शारीर का अर्थ यह है कि जो व्यक्ति बिना कठोर परिश्रम के या अभ्यास न करते हुए भी रागों की अभिव्यक्ति यानी राग प्रदर्शन में समर्थ होता है उसके लिए कहा जाता है कि उसे हृद्य (मनोहर) शारीर प्राप्त है) जो लय, ताल और कलाओं का ज्ञानी है और जिसे भिन्न-भिन्न स्वर काकुओं यानी स्वर भेदों का ज्ञान है (काकु भी एक पारिभाषिक शब्द है। कल्लिनाथ ने इस शब्द की व्याख्या "काकुर्ध्वनेर्विकार" की है)।

५—जो प्रतिभावान बुद्धि रखता है (जिसे नई-नई कल्पना सूझती है) जिसे सुखदायक गायन करने की शक्ति प्राप्त है। देशी रागों का जिसे ज्ञान है और जो सभा में अपनी वाक्पटुता (व्याख्यान चातुरी) के बल से विजय प्राप्त कर सकता है।

६—जिसने राग-द्वेष का परित्याग करके सरसता धारण की है, उचित अनुचित का जिसे ज्ञान है यानी किस स्थान पर कौनसी चीज उचित है, इसे जानता है। जिसमें स्वतन्त्र रचना करने की शक्ति निहित है और जो नई-नई स्वररचना करने का ज्ञान रखता है।

७—जो दूसरों के मन का भाव जानने की शक्ति रखता है। जिसे प्रबन्धों का उच्च ज्ञान प्राप्त है। जो शीघ्रता से कविता रचने की सामर्थ्य रखता है तथा जिसमें भिन्न-भिन्न गीतों की छायाओं का अनुकरण करने की शक्ति है।

८—तीनों स्थानों (मन्द्र, मध्य, तार) में गमक लेने की जो शक्ति रखता है, राग आलप्ति तथा रूपकालप्ति में जो निपुण है और जिसमें चित्त की एकाग्रता का गुण है। ऐसे सब गुण जिसमें विद्यमान हैं, वही उत्तम वाग्गेयकार बताया गया है।

मध्यम और अधम वाग्गेयकार

मध्यम ओर अधम वाग्गेयकार के लिये इस प्रकार शास्त्रों में लिखा है:—

विदधानोऽधिकं धातुं मातुमंदस्तु मध्यमः ।
धातुमातुविदप्रौढः प्रबंधेष्वपि मध्यमः ॥
रम्यमातुविनिर्माताऽप्यधमो मंदधातुकृत ।

भावार्थ—जो स्वर रचना अर्थात धातु में प्रवीण है और मातु (पद्य रचना) में मन्द बुद्धि है, वह मध्यम श्रेणी का वाग्गेयकार है। एवं जो स्वर रचना यानी स्वरलिपि करने का ज्ञान रखता हो और पद्यरचना (मातु) का भी अच्छा ज्ञाता हो, किन्तु भिन्न-भिन्न प्रकार के 'प्रबन्ध' गायन में कुशल न हो वह भी मध्यम श्रेणी में ही आता है। **अधम वाग्गेयकार** वह है, जिसे केवल शब्द ज्ञान तो हो, किन्तु पद्यरचना (कविता) तथा स्वर रचना (स्वरलिपि) की जानकारी नहीं रखता हो।

गीत, गान्धर्व, गान तथा मार्ग-देशी संगीत

रंजकः स्वरसंदर्भो गीतमित्यभिधीयते ।
गान्धर्वं गानमित्यस्य भेदद्वयमुदीरितम् ॥

—सङ्गीत रत्नाकर

गीत—स्वरों का वह समुदाय जिससे मन का रंजन हो, उसे गीत कहते हैं। गीत के २ भेद हैं—(१) गांधर्व (२) गान।

(१) गांधर्व—जो सङ्गीत स्वर्गलोक में गन्धर्वों द्वारा गाया जाता था और जिसका उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है, उस वेदों के समान अपौरुषेय और अनादि सङ्गीत को ही "गांधर्व" कहा है।

(२) गान—जो सङ्गीत वाग्गेयकारों ने अर्थात् सङ्गीत के पण्डितों ने अपने बुद्धि-कौशल्य से उत्पन्न किया तथा उसे लक्षणबद्ध करके देशी रागों में उसका उपयोग कर लोकरंजन के निमित्त उसे प्रचलित किया, वह "गान" है।

सङ्गीत रत्नाकर के टीकाकार कल्लिनाथ के मतानुसार गांधर्व और गान को ही क्रमशः मार्ग और देशी माना जाय तो कोई हानि नहीं।

मार्ग सङ्गीत—मार्ग सङ्गीत वर्तमान काल में बिलकुल प्रचलित नहीं है।

मार्गो देशीतितद्द्वेधा तत्रमार्गः स उच्यते।
यो मार्गितो विरिंच्याद्यैं प्रयुक्तो भरतादिभिः॥

इस श्लोक के अनुसार मार्ग सङ्गीत वह है, जिसका प्रयोग महादेव के बाद भरत ने किया। यह अत्यन्त प्राचीन तथा कठोर सांस्कृतिक धार्मिक नियमों से जकड़ा हुआ था, अतः आगे इसका प्रचार ही बन्द होगया।

देशी सङ्गीत—देश के विभिन्न भागों में छोटे-बड़े सभी लोग जिसे प्रेमपूर्वक गा-बजाकर अपना मन प्रसन्न करते हैं वह देशी सङ्गीत है। शार्ङ्गदेव के समय में भी सब जगह देशी सङ्गीत ही प्रचलित था, किन्तु वर्तमान हिन्दुस्थानी संगीत से वह बिलकुल भिन्न था। इसका कारण यही है कि देशी सङ्गीत सर्वदा परिवर्तन शील रहा है, लोक रुचि के अनुसार उसका स्वरूप भी बदलता रहता है। देशी सङ्गीत में नियमों का विशेष बन्धन नहीं, इसलिये यह सुलभ और सरल है तथा लोक रुचि पर अवलम्बित रहता है।

देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरंजकम्।
गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते॥

—सङ्गीत रत्नाकर

अर्थात्—भिन्न-भिन्न देशों के जन (मनुष्य) अपनी-अपनी रुचि के अनुसार गा-बजाकर और नाचकर प्रसन्नता प्राप्त करते हैं, या हृदय का रंजन करते हैं, वह देशी सङ्गीत है।

तत्तद्देशस्थया रीत्या यत्स्यात् लोकानुरंजनम् ।
देशेदेशे तु संगीतं तद्देशीत्यभिधीयते ॥

—सङ्गीत दर्पण

भावार्थ—जो सङ्गीत देश के भिन्न-भिन्न भागों में वहां के रीत रिवाजों के अनुसार जनता का मनोरंजन करता है, वह देशी सङ्गीत कहलाता है।

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान समय में जैसा सङ्गीत प्रचलित है, वह सब देशी सङ्गीत ही है। अतः ग्वालियर का ध्रुपद गायन, मथुरा का होरी गायन, मिर्जापुर का कजरी गायन, बनारस और लखनऊ का ठुमरी गायन, मणिपुर का मणीपुरी नृत्य, लखनऊ का कत्थक नृत्य, बृज का गोपीनृत्य, गुजरात का गर्वानृत्य इत्यादि सब देशी सङ्गीत के अन्तर्गत ही आजाते हैं।

ग्रह अन्श और न्यास

गीतादौ स्थापितो यस्तु स ग्रहस्वर उच्यते ।
न्यासस्वरस्तु विज्ञेयो यस्तु गीतसमापकः ।
बहुलत्वं प्रयोगेषु सचांशस्वर उच्यते ॥१६३॥

—संगीतदर्पण

अर्थात्—गीत के आरम्भ में ही जो स्वर स्थापित किया जाता है उसे ग्रह स्वर कहते हैं। गीत की समाप्ति जिस स्वर पर होती है उसे न्यास स्वर कहते हैं और प्रयोग में जो स्वर बहुलत्व दिखाता है, अर्थात बारम्बार आता है उसे अन्श कहते है। इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में तीन स्वर भेद मिलते हैं। प्राचीनकाल में ग्रह-अन्श-न्यास स्वरों का ध्यान रखते हुए प्रत्येक राग एक नियमित स्वर से आरम्भ किया जाता था और एक नियमित स्वर पर उसकी समाप्ति होती थी, इसी प्रकार बारम्बार या अधिक प्रयोग होने वाले स्वर को महत्व देकर उसे अन्श स्वर मानते थे। जिस प्रकार कि हम आजकल वादी स्वर मानते हैं।

संभव है, प्राचीन समय में उपरोक्त स्वर नियमों का पालन उत्तम रीति से किया जाता हो, किन्तु सङ्गीत परिवर्तन शील है अतः आगे चलकर गायक-वादकों ने ग्रह-न्यास स्वरों का नियम नहीं माना, अर्थात् अमुकराग अमुकस्वर से ही आरम्भ होना चाहिए या अमुक स्वर पर ही उसे समाप्त करना चाहिए, इस बन्धन को तोड़कर वे चाहे जिस राग या गीत को भिन्न-भिन्न स्वरों से आरम्भ करके गाने लगे और भिन्न-भिन्न स्वरों पर समाप्त करने लगे। उन्होंने केवल अन्श स्वर का सिद्धान्त "वादी स्वर" के रूप में माना जो आजतक प्रचलित है। क्योंकि वादी स्वर से राग की पहिचान होजाती है कि यह पूर्वांग वादी है या उत्तरांग वादी ? एवं वादी स्वर के द्वारा राग गाने का समय पहचानने में भी सहायता मिलती है। अतः प्राचीन समय के स्वर-नियमों में से ग्रह और न्यास छोड़कर "अन्श" स्वर के नियम का पालन करना आवश्यक है।

गायन-शैलियाँ

ध्रुवपद (ध्रुपद)

कहा जाता है कि ध्रुपद गायन का आविष्कार सबसे पहिले पन्द्रहवीं शताब्दी में ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर द्वारा हुआ था। उन्होंने स्वयं भी कुछ ध्रुपदों की रचना की थी। प्राचीन काल में ध्रुपद में संस्कृत श्लोकों को गाकर हमारे ऋषि मुनि भगवान की आराधना करते थे।

वर्तमान समय में भी ध्रुपद एक गम्भीर और जोरदार गाना माना जाता है, ध्रुपद के गीत प्रायः हिन्दी, उर्दू एवं ब्रजभाषा में मिलते हैं। यह मर्दानी आवाज का गायन है। इसमें वीर, श्रृङ्गार और शान्तरस प्रधान हैं। 'अनूप सङ्गीतरत्नाकर' में ध्रुपद की व्याख्या इस प्रकार की है —

गीर्वाणमध्यदेशीयभाषासाहित्यराजितम् ।
द्विचतुर्वाक्यसम्पन्नं नरनारीकथाश्रयम् ॥
श्रृंगाररसभावाढ्यं रागालापपदात्मकम् ।
पादांतानुप्रासयुक्तं पादान्तयुगकं च वा ॥
प्रतिपादं यत्र बद्धमेवं पादचतुष्टयम् ।
उद्ग्राहध्रुवकाभोगांतरं ध्रुवपदं स्मृतम् ॥

—अनूप सङ्गीतरत्नाकर

ध्रुपद में स्थायी, अन्तरा, सञ्चारी और आभोग ऐसे चार भाग होते हैं। ध्रुपद अधिकतर चौताल, सूलफाक, झपा, तीव्रा, ब्रह्मताल, रुद्रताल इत्यादि तालों में गाये जाते हैं।

ध्रुपद में तानों का प्रयोग नहीं होता, किन्तु उसमें दुगुन, चौगुन, बोलतान, गमक इत्यादि का प्रयोग करने की छूट है।

ध्रुपद की ४ वाणी

प्राचीनकाल में ध्रुपद गायकों को कलावन्त कहते थे। धीरे-धीरे ध्रुपद गायकों के भेद उनकी चार वाणियों के अनुसार किये जाने लगे, उन चार वाणियों के नाम इस प्रकार हैं —(१) गोबरहारी वाणी अथवा शुद्ध वाणी, (२) खण्डार वाणी, (३) डागुर-वाणी, (४) नोहार वाणी।

'मादनुल मौसीकी' नामक ग्रंथ के प्रणेता हकीम मुहम्मद ने उक्त चारों वाणियों के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं —

"अकबर बादशाह के दरबार में उस समय चार महागुणी रहते थे—१–तानसेन, २–ब्रजचन्द ब्राह्मण (डागुर गांव के निवासी), ३–राजा समोखनसिंह वीणाकर (खंडार नामक स्थान के निवासी), ४–श्रीचन्द राजपूत (नोहार के निवासी)। अकबर के समय में इन चारों के द्वारा चार वाणी प्रसिद्ध थीं। तानसेन गौड़ ब्राह्मण होने से उनकी वाणी का नाम गौड़ीय अथवा गोबरहरी पड़ गया। प्रसिद्ध वीणाकार समोखनसिंह की शादी तानसेन की कन्या के साथ होने के कारण उनका नाम नौबादखां निश्चित हुआ। नौबादखां का निवास स्थान खण्डार था, इसलिये इनकी वाणी का नाम खण्डार वाणी हुआ। ब्रजचन्द के निवास स्थान के नामानुसार उनकी वाणी का नाम हुआ डागुर वाणी। और राजपूत श्रीचन्द नोहार के निवासी थे, इसलिये इनकी वाणी का नाम नोहार वाणी प्रसिद्ध हुआ।"

चार वाणियों के प्रधान लक्षण—

१—गोबरहरी वाणी:—इसका प्रधान लक्षण प्रसाद गुण है, यह शान्त रसोद्दीपक है और इसकी गति धीर है।

२—खण्डार वाणी:—वैचित्र्य और ऐश्वर्य प्रकाश खण्डार वाणी की विशेषता है। यह तीव्र रसोद्दीपक है। गोबरहरी वाणी की अपेक्षा इसमें वेग और तरङ्ग अधिक होते हैं, किन्तु इसकी गति अति विलम्बित नहीं होती।

३—डागुर वाणी:—इसका प्रधान गुण है सरलता और लालित्य। इसकी गति सहज व सरल है, इसमें स्वरों का टेढ़ा और विचित्र काम दिखाया जाता है।

४—नोहार वाणी:—'नोहर' रीति से सिंह की गति का बोध होता है। एक स्वर से दो–तीन स्वरों का लंघन करके परवर्त्ती स्वर में पहुँचना इसका लक्षण है। नोहार वाणी विशेष रूप से रस की सृष्टि नहीं करती, अपितु यह आश्चर्य रसोद्दीपक है।

हम जिसे केवल वाणी या शुद्ध वाणी कहते हैं, वह गोबरहरी और डागुर वाणी का ही नाम रूपान्तर है। शुद्ध वाणी ही सङ्गीत की आत्मा है और इसी से सङ्गीत की प्रतिष्ठा भी है। सङ्गीत के प्राणस्वरूप जो रस वस्तु है, उसका अविकल झरना शुद्ध वाणी में ही मिलेगा। इसके आनन्द का अनुभव वही कर सकता है, जिसने शुद्ध वाणी की रस धारा का रसास्वादन किया है, इसलिये सेनी लोग (तानसेन वंश के गायक वादक) सर्वदा शुद्ध वाणी के सङ्गीत पर विशेष जोर देते हैं।

सङ्गीत की उक्त चार वाणियों में गोबरहरी (गौड़ीय वाणी) को गुणीजनों ने राजा का पद दिया है। डागुर वाणी को मन्त्री का पद, खंडार को सेनापति का स्थान और नोहार को सेवक का स्थान दिया है। अपने–अपने स्थान पर प्रत्येक वाणी की एक विशिष्ट महत्ता है। गोवहरी वाणी का प्रत्येक स्वर अपने सुनिर्दिष्ट रूप में प्रगट होता है। स्पष्टता इस वाणी का प्रधान लक्षण है। डागुरवाणी में एक स्वर दूसरे स्वर के साथ जिस विचित्रता से मिलता है, उस कारण उसमें एक विचित्र और रहस्यमय भाव उत्पन्न हो जाता है। स्वर को स्पष्ट रूप में व्यक्त न करके श्रोता की कल्पना के अनुसार उसे प्रगट करना पड़ता है। लालित्य और गम्भीरता इन दोनों वाणियों में पर्याप्त रूप से

मिलते हैं। खडार वाणी को संस्कृत में "भिन्नागीति" कहा गया है*। इस वाणी में स्वर के भिन्न-भिन्न टुकड़े करके गाते हैं। सम्भवतः इसीलिये संस्कृत में इसको 'भिन्ना' कहा जाता है। स्वर के खंड-खंड होने के कारण हिन्दी में इसको खंडार वाणी कहा गया है। दोनों शब्दों का मूल तात्पर्य एक ही है। स्वर को सरल भाव में प्रगट न करके कुटिल भाव में खंड-खंड करके प्रकट करना ही खडार वाणी की विशेषता है। इस कृत्य में स्वर की मधुरता का नाश नहीं होता, अपितु सूक्ष्म गमक की सहायता से स्वर को आन्दोलित करने पर उसमें मधुरता की और भी वृद्धि होती है, इसलिये उत्तम गुणी गमक की सहायता से खडार वाणी गाते थे। यन्त्र सङ्गीत में वीणा द्वारा खण्डार वाणी का सैनी लोग विविध प्रकार से मध्यलय गमक व जोड़ में उपयोग करते हैं। शुद्ध वाणी की प्रधानता रबाब द्वारा दिखाई जाती थी, क्योंकि रबाब का स्वर सरल होता है। इसमें विलम्बित, मध्य और द्रुत ये त्रिविध आलाप बखूबी दिखाये जा सकते हैं।

वाणी का रहस्य जानने वाले गायक आजकल शायद ही कोई हों। ध्रुपद गायन को प्रचलित हुए ५०० वर्ष से अधिक हो गये, किन्तु इधर लगभग १५० वर्ष से ध्रुपद-गायकी का प्रचार कम होगया है और ख्याल गायन का प्रचार अधिक होगया है, इतना होते हुए भी सङ्गीतकला मर्मज्ञों में ध्रुपद गायकी को अब भी श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है।

ख्याल

फारसी भाषा में ख्याल का अर्थ है, विचार या कल्पना। राग के नियमों का पालन करते हुए अपनी इच्छा या कल्पना से विविध आलाप तानों का विस्तार करते हुए, एकताल, त्रिताल, झूमरा आडा चौताल इत्यादि तालों में गाते हैं। ख्यालों के गीतों में शृङ्गार रस का प्रयोग अधिक पाया जाता है। ख्याल गायकी में जलद तान, गिटकरी इत्यादि का प्रयोग भी शोभा देता है और स्वर वैचित्र्य तथा चमत्कार पैदा करने के लिये ख्यालों में तरह-तरह की तानें ली जाती हैं। ख्याल गायन में ध्रुपद जैसी गंभीरता और भक्तिरस की शुद्धता नहीं पाई जाती।

ख्याल २ प्रकार के होते हैं (१) जो विलम्बित लय में गाये जाते हैं, उन्हें बहुधा बड़े ख्याल कहते हैं और (२) जो द्रुत लय में गाये जाते हैं उन्हें छोटे ख्याल कहते हैं।

* गीतयः पञ्च शुद्धाद्या भिन्ना गौडी च वेसरा।
साधारणीति शुद्धा स्यादवक्रललितैः स्वरैः॥
भिन्ना सूक्ष्मैः स्वरैर्वक्रैर्मधुरैर्गमकैर्युता।
गाढैस्त्रिस्थानगमकैरुहाटीललितैः स्वरैः॥
अखण्डितस्थिति स्थानत्रये गौडी मता सताम्।
उहाटी कम्पितैर्मन्द्रैर्द्रुततरैः स्वरैः॥
हकारौकारयोगेन ह्रन्यस्ते चिबुके भवेत्।
वेगवद्भिः स्वरैर्वर्णचतुष्केऽप्यतिरक्तिता॥
वेगस्वरा रागगीतिर्वेसरा चोच्यते बुधैः॥
—'संगीतरत्नाकर'

गायक जब ख्याल गाना आरम्भ करता है, तो पहिले विलम्बित लय में बड़ा ख्याल गाता है, जिसे प्रायः विलम्बित एकताल, तीनताल, झूमरा, आड़ा चौताला इत्यादि में गाता है, फिर इसके बाद ही छोटा ख्याल मध्य या द्रुतलय में आरम्भ कर देता है, उसे त्रिताल या द्रुत एकताल में गाता है। छोटे-बड़े ख्याल जब गायक एक स्थान पर एक समय में गाता है तो ये दोनों ही प्रायः किसी एक ही राग में होते हैं, किन्तु बोल या कविता बड़े-छोटे ख्यालों की अलग-अलग होती है। बड़े ख्यालों का प्रचार १५ वीं शताब्दी में जौनपुर के सुलतानहुसेन शर्की द्वारा हुआ। मुगल बादशाह मुहम्मद शाह रँगीले (सन् १७१६ ई०) के दरबार के प्रसिद्ध गायक सदारङ्ग (न्यामतखां) और अदारंग ने हज़ारों ख्याल रचकर अपने शिष्यों को सिखाये, किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि उन्होंने अपने वंशजों को एक भी ख्याल नहीं सिखाया और न गाने ही दिया। रामपुर के वज़ीरखां सदारङ्ग के ही वंशज थे और मुहम्मदअली खां तानसेन के वंशज थे, ये दोनों ही ध्रुवपद गायक थे, ख्याल गायक नहीं।

टप्पा

ख्याल गायकी के बाद टप्पा गायकी का प्रचार हुआ। यह हिन्दी का शब्द है। शब्द कोष में तो 'टप्पा' के बहुत से अर्थ मिलेंगे, जैसे—उछाल, कूद, फ़लांग, अन्तर, फर्क, एक प्रकार का चलता गाना जो पंजाब से चला है। इनमें से सङ्गीत विद्यार्थियों के लिये अन्तिम अर्थ ही लेना उचित होगा। कहा जाता है कि लखनऊ के नवाब आसफ़-उद्दौला के दरबार में एक पंजाबी रहते थे, जिनका नाम शोरी मियां था, इन्होंने ही टप्पे की गायकी का आविष्कार किया।

टप्पा अधिकतर काफ़ी, झिंझोटी, बरवा, भैरवी, खमाज इत्यादि रागों में गाया जाता है। इसमें स्थायी और अन्तरा ऐसे दो भाग होते हैं। टप्पा क्षुद्र प्रकृति की गायकी है, इसके गीतों में शृङ्गार रस की प्रधानता होती है और पंजाबी भाषा के शब्द ही इसमें अधिकतर पाये जाते हैं। इसकी तानें दानेदार बहुत तैयार लय में गाई जाती हैं। टप्पा की गति बहुत चपल होती है। कुछ विद्वानों का ऐसा भी मत है कि प्राचीन "बेसरा" गीति से इस गायकी की उत्पत्ति हुई है।

ठुमरी

जिन रागों में टप्पा गाया जाता है, प्रायः उनमें ही ठुमरी गाई जाती है। इसमें शब्द तो कम होते हैं, किन्तु शब्दों को हाव-भाव द्वारा बताकर गीत का अर्थ प्रकट करना ठुमरी गायक की विशेषता मानी जाती है। ठुमरी का जन्म लखनऊ के नवाबों के दरबार में हुआ। कहा जाता है कि इसके आविष्कारक गुलामनबी, शोरी के घराने के लोग ही थे। ठुमरी अधिकतर पंजाबी त्रिताल में ही गायी जाती है, उसकी गति अतिद्रुत नहीं होती।

लखनऊ और बनारस ठुमरी के लिए प्रसिद्ध हैं। बनारसी ठुमरी में सुन्दरता और मधुरता अधिक पाई जाती है। ठुमरी में प्रायः राग की शुद्धता की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। अनेक गायक ठुमरी गाते समय भिन्न-भिन्न रागों के स्वरों का मिश्रण करके उसे

सुन्दर बनाने का प्रयत्न करते हैं। महाराष्ट्र में ठुमरी को विशेष आदर या प्रेम की दृष्टि से नहीं देखा जाता। क्योंकि महाराष्ट्र में राग नियमों का पालन कुछ सख्ती से किया जाता है, सम्भवत इसीलिये वहा ठुमरी का महत्व नहीं है, फिर भी ठुमरी का गायन किसी प्रकार घृणित नहीं है और इसे यू० पी० में विशेष सम्मान प्राप्त है।

तराना

यह भी ख्याल के प्रकार की एक गायकी है। इसमें गीत के बोल ऐसे होते हैं, जिनका कोई अर्थ नहीं होता। जैसे ता ना दा रे, तदारे, ओदानी दीम, तनोम इत्यादि। तराना में भी स्थाई और अन्तरा ऐसे २ भाग होते हैं। तानों का प्रयोग भी इसमें होता है।

कहा जाता है कि अमीरखुसरो जब हिन्दुस्तान आये, तो यहा की सस्कृत भाषा को देखकर वे घबराये, क्योंकि वे तो अरबी भाषा के विद्वान थे। अत उन्होंने निरर्थक शब्द गढकर तरह-तरह के हिन्दुस्थानी राग गाये, वे निरर्थक शब्द ही 'तराना' नाम से प्रसिद्ध हुए। तराने में राग, ताल और लय का ही आनन्द है, शब्दों की ओर कोई ध्यान भी नहीं देता। तरानों का गायन हमारे देश में मनोरजक माना जाता है। बहादुरहुसेनखा, तानरसखा, नत्थूखा इत्यादि के तराने विशेष प्रसिद्ध हैं।

तिरवट

यह भी तराने की तरह गाया जाता है, किन्तु तराने से तिरवट गायकी कुछ कठिन है। तिरवट में मृदङ्ग के बोल अधिक होते हैं, इसे सभी रागों मे गाया जा सकता है। वर्तमान समय मे तिरवट गायकी का प्रचार कम हो गया है।

होरी-धमार

जब 'होरी' नाम के गीत को धमार ताल में गाते हैं, तो उसे 'धमार' कहा जाता है। धमार गायन में प्राय बृज की होली का वर्णन रहता है। धमार में दुगुन, चौगुन, बोलतान, गमक इत्यादि का प्रयोग होता है, अत यह कठिन गायकी है। धमार के गायकों को स्वर ताल और राग का अच्छा ज्ञान होना चाहिये। प्राय देखा जाता है कि ख्याल गायकों की अपेक्षा ध्रुपद गायक 'धमार' को अच्छा गा लेते हैं। 'धमार' गाने में ख्याल के समान तानें नहीं ली जातीं।

गजल

गजल अधिकतर उर्दू या फारसी भाषा में होती है। इसके गीतों में प्राय आशिक-माशूक का वर्णन अधिकतर पाया जाता है। इसीलिये यह शृङ्गार रस प्रधान गायकी है। गजल अधिकतर रूपक, पश्तो, दीपचन्दी, दादरा, कहरवा तालों मे गाई जाती है। वे ही गायक गजल गाने में सफल होते हैं, जिन्हे उर्दू-हिन्दी का अच्छा ज्ञान है और जिनका शब्दोच्चारण ठीक है। गजल की अनेक तर्जें हैं। वर्तमान समय में सवाक चित्रपटों द्वारा गजल और गीत का फैलाव व प्रचार बहुत हुआ है।

कव्वाली

कव्वाली मुसलिम समाज की एक विशेष गायकी है। इसमें अधिकतर फारसी व उर्दू भाषा का ही प्रयोग होता है। स्थायी अन्तरा के अतिरिक्त इसके बीच-बीच में 'शैर' भी होते हैं। हिन्दुओं में भी कव्वाली का प्रचार पाया जाता है। इसके गाने वाले 'कव्वाल' कहलाते हैं। किसी विशेष अवसर पर रात-रात भर कव्वालियां होती हैं। कव्वाली के साथ ढोलक बजती हुई अधिक देखी जाती है, साथ-साथ हाथों से तालियां भी बजती हैं। रूपक, पश्तो, कव्वाली आदि तालों का इसमें विशेष प्रयोग होता है।

दादरा

दादरा एक ताल का भी नाम है, किन्तु एक प्रकार की गायकी को भी 'दादरा' कहते हैं। इसकी चाल गज़ल से कुछ मिलती जुलती होती है। मध्य तथा द्रुतलय में दादरा बहुत अच्छा मालूम पड़ता है। इसमें प्रायः शृङ्गार रस के गीत होते हैं।

सादरा

इस गाने की लय भी दादरा से बहुत कुछ मिलती-जुलती होती है। सादरा को अधिकतर कत्थक गायक एवं वेश्यायें गाती हैं। इसमें कहरवा, रूपक, झपताल तथा दादरा इन तालों का प्रयोग होता है। ठुमरी गायक 'सादरा' भली प्रकार गा लेते हैं, इसके गीतों में प्रायः शृङ्गाररस ही अधिक मिलता है।

खमसा

खमसा गाने का प्रचार मुसलमानों में अधिक पाया जाता है। इसके गीतों में उर्दू भाषा का प्रयोग ही अधिक मिलेगा। खमसा की गायकी कव्वाली से मिलती-जुलती होती है।

लावनी

'चङ्ग' (एक प्रकार का ताल वाद्य) बजा-बजा कर कई आदमी मिलकर (या अकेला व्यक्ति) 'लावनी' गाते हैं। इसमें शृङ्गार तथा भक्तिरस के गीत होते हैं और कहरवा ताल की लय का प्रयोग होता है।

चतुरंग

१, ख्याल, २ तराना, ३ सरगम, ४ त्रिवट, ऐसे चार अङ्ग जिस गीत में सम्मिलित होते हैं, उसे 'चतुरङ्ग' कहते हैं। पहले भाग में गीत के शब्द, दूसरे में तराने के बोल, तीसरे में किसी राग की सरगम और चौथे भाग में मृदङ्ग के बोलों की एक छोटी सी परन रहती है। चतुरङ्ग को ख्याल की तरह गाते हैं, किन्तु इसमें तानों का प्रयोग ख्याल की अपेक्षा कम होता है।

सरगम

किसी राग के स्वरों को लेकर उन्हें तालबद्ध करके जब गाया जाता है, उसे 'सरगम' गीत कहते हैं। सरगम गीत भिन्न-भिन्न राग व तालों के होते हैं। सरगम गाने से विद्यार्थियों को स्वर ज्ञान एवं रागज्ञान में बहुत सहायता मिलती है।

रागमाला

जब किसी एक गीत में कई रागों का वर्णन आता है और उस गीत की एक-एक लाइन में एक-एक राग के स्वर लगते जाते हैं और उस राग का नाम भी आता जाता है, ऐसी रचना को 'रागमाला' कहते हैं।

लक्षण गीत

कोई गीत जब किसी राग में गाया गया हो और उस गीत के शब्दों में उस राग के वादी, सम्वादी या वर्जित स्वरों का वर्णन किया गया हो, उसे लक्षण गीत कहते हैं। लक्षण गीत से राग सम्बन्धी अनेक बातें सरलता पूर्वक याद हो जाती हैं।

भजन-गीत

जिस प्रकार उर्दू भाषा के शब्दों में गजलें तैयार होती हैं, उसी प्रकार हिन्दी शब्दावली से भजन और गीतों की रचना होती है। ईश्वर स्तुति या भगवान की लीला का वर्णन भजनों में किया जाता है। भजन को किसी १ राग में बांधकर भी गाते हैं, और ऐसे भी भजन हैं जो किसी विशेष राग में न होकर मिश्रित राग स्वरों द्वारा तैयार हुए हैं। भजन अधिकतर कहरवा, दादरा, घुमाली, रूपक एवं तीनताल में गाये जाते हैं।

कीर्तन

भगवान राम-कृष्ण के गुणानुवाद झांझ, करताल व मृदङ्ग तबला इत्यादि के साथ उच्च स्वरों में मिलकर जब गाते हैं, उन्हें कीर्तन कहते हैं।

गीत

ईश्वर प्रार्थना या भगवान की लीला सम्बन्धी पदों को छोड़कर जो साहित्यिक रचनायें ऐसी होती हैं कि वे किसी ताल में बांधकर गाई जा सकें, उन्हें 'गीत' कहते हैं। इनमें भाव की प्रधानता रहती है। गीतों में शृङ्गार और करुण रस अधिक पाया जाता है। गीतों में किसी प्रकार का स्वर विस्तार या तानों का प्रयोग नहीं होता। रेडियो और फिल्मों द्वारा गीत एवं भजनों का यथेष्ट प्रचार हुआ है।

कजली (कजरी)

कजली गीतों में वर्षा ऋतु का वर्णन, विरह वर्णन, राधाकृष्ण की लीलाओं का वर्णन अधिकतर मिलता है। कजरी की प्रकृति क्षुद्र है। शृङ्गार-रस इसमें प्रधान है। मिर्जापुर और बनारस में कजरी गाने का प्रचार अधिक पाया जाता है।

चैती

होली के बाद जब चैत का महीना आरम्भ होता है, तब 'चैती' गाई जाती है। इसके गीतों में भगवान रामचन्द्र की लीलाओं का वर्णन रहता है। पूर्व मे बिहार की तरफ इसका प्रचार अधिक है। इसमें अधिकतर पूर्वी भाषा का प्रयोग होता है। ठुमरी गायक "चैती" भली प्रकार गा सकते हैं।

लोकगीत

लोकगीत उन्हें कहते हैं जो विशेषतः घर-गृहस्थी के मंगल अवसरों पर एवं विशेष त्यौहारों या उत्सवों पर महिलाओं द्वारा नगरों तथा गावों में अपनी-अपनी प्रान्तीय या ग्रामीण भाषाओं में गाये जाते हैं। पुरुष गायकों द्वारा गाये हुये लोकगीत भी होते हैं। लोकगीतों में हमें भारतीय प्राचीन संस्कृति मिलती है, यही कारण है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार इधर कुछ समय से लोकगीतों के प्रति आकर्षित होकर रेडियो आदि के द्वारा इनके प्रचार को विकसित करने का प्रयत्न कर रही है। यहां पर हम लोकगीतों के कुछ प्रकार पाठकों की जानकारी के लिये दे रहे हैं:—

(१) घोड़ी, बन्ना, ज्यौनार, जनेऊ, भात, मांडवा, गारी, आदि लोकगीत उत्तर प्रदेश में बृज भूमि की ओर विशेष रूप से प्रचलित हैं, जिन्हें महिलाएं विवाहादि अवसरों पर मिलकर गाती हैं।

(२) विरहा—यह गीत यादव (ग्वालवंश) में प्रचलित है। विवाह के अवसर पर कन्या-पक्ष के व्यक्ति वर पक्ष के यहां जाकर नगाड़े के साथ विभिन्न पैंतरेबाजी दिखाते हुए रात भर 'विरहा' गाते हैं।

(३) निर्वही—सावन भादों में खेत निराते समय यह गीत गाये जाते हैं।

(४) चन्दैनी— यह ग्वालों (यादवों) का गीत है। प्रायः देहातों में ग्वाला लोग इसे गाते हैं।

(५) सोहर—यह गीत प्राचीन समय से ही महिलाओं में प्रचलित है, जो बच्चा पैदा होने के अवसर पर गाया जाता है। पहिले तो सोहर केवल ढोलक के साथ ही गाये जाते थे, किन्तु आजकल शहरों में हारमोनियम और ढोलक के साथ भी महिलाएँ सोहर गाने लगी हैं।

(६) झूमर—यह गीत कई प्रकार का होता है, जैसे विरहा का झूमर, जिसे यादव निषाद या खटीक गाते हैं, दूसरा कजरी का झूमर जिसे वर्षाऋतु में गाया जाता है और तीसरी प्रकार का झूमर शीतला देवी की पूजा के समय गाया जाता है।

(७) नउआ झक्कड़—यह नाइयों का गीत है, विवाह शादी के अवसरों पर कई व्यक्ति मिलकर इसे गाते हैं, साथ-साथ झांझ खंजरी भी बजाते रहते हैं।

रागालाप करते समय श्रोताओं के सम्मुख आलाप की व्याख्या करते हुए गायक यह भी बताते थे कि हम अमुक राग गा रहे हैं, किन्तु रूपकालाप में कुछ बताने-कहने की आवश्यकता नहीं थी, वह तो श्रोताओं को स्वत ही प्रत्यक्ष प्रबन्ध के समान दिखाई देता था रूपकालाप शब्दहीन होता था अर्थात उसमें बोल या ताल इत्यादि नहीं होते थे। इस प्रकार रागालाप की अपेक्षा रूपकालाप को विशेष महत्व प्राप्त था और इसे रागालाप की अगली सीढ़ी माना जाता था।

आलप्ति

रागालाप और रूपकालाप से आगे बढने पर 'आलप्ति' की बारी आती थी। आविर्भाव और तिरोभाव करते हुए राग को पूर्ण रूप से प्रदर्शित करना ही आलप्ति कहलाता है।

आविर्भाव—तिरोभाव

किसी राग का विस्तार करते समय उसके बीच में अन्य सम प्रकृतिक रागों के छोटे-छोटे टुकडे दिखाकर, थोडी देर के लिये मुख्य राग को छिपाने का उपक्रम जब किया जाता है तो उसे 'तिरोभाव' कहते हैं। और फिर मुख्य राग के स्वरों को कुशलता पूर्वक दिखाकर रागरूप स्पष्ट करने को "आविर्भाव" कहते हैं। इसे एक उदाहरण से इस प्रकार समझना चाहिए, जैसे बसत राग गायक गारहा है और गाते-गाते उसमें निषाद पर न्यास करके परज राग की छाया दिखाने लगे, तो उसे तिरोभाव कहेंगे। फिर बसत के स्वरों की मुख्य पकड लगाकर बसत को स्पष्ट कर दिया जावे तो वह 'आविर्भाव' कहा जायगा। यह भाव अत्यन्त मनोरजक होते हैं जो राग गायन के बीच में या अन्तिम समय आने पर ही प्राय कुशल गायक दिखाते हैं।

स्थाय

छोटे-छोटे स्वर समुदायों को प्राचीन ग्रन्थकार स्थाय कहते थे।

मुखचालन

रागोचित विविध गमक-अलकारों का प्रयोग करते हुए गायन-वादन करने को "मुख चालन" कहते हैं।

आक्षिप्तिका

स्वर, शब्द और ताल की सहायता से जो रचना तैयार होती है, उसके प्रयोग को प्राचीन पडित आक्षिप्तिका कहते थे। जैसे ख्याल, ध्रुपद, धमार इत्यादि आक्षिप्तिका निबद्ध गान की ही श्रेणी में आते हैं।

निबद्ध अनिबद्ध गान

जो रचनाएे नियमानुसार ताल मे बँधी हुई होती हैं, वे सब "निबद्ध गान" के अन्तर्गत आती हैं इसमें तीन प्रकार हैं—१ प्रबन्ध २ वस्तु ३ रूपक। इनके विभिन्न भागों
[illegible]

को 'धातु' कहा जाता है, धातु के भी पांच नाम हैं यथाः-(१) उद्ग्राह (२) ध्रुव (३) मेलापक (४) अन्तरा (५) आभोग। "अनिबद्ध गान" उसे कहते हैं, जब कोई रचना स्वरों में बँधी हुई हो किन्तु ताल में न हो। अनिबद्ध गान के अन्तर्गत राग आलाप, रूपकालाप, आलप्ति गान तथा स्वस्थान नियमों का आलाप गायन, ये सब आते हैं क्योंकि इनमें ताल का प्रयोग नहीं होता।

विदारी

गीत तथा आलापों में विभिन्न छोटे-छोटे भागों को ही विदारी कहते हैं, निबद्ध गान के अन्तर्गत जो उद्ग्राह, ध्रुव, मेलापक, अन्तरा और आभोग, ऊपर बताये जा चुके हैं, वे सब विदारी की श्रेणी में ही आजाते हैं। विदारी में जब अन्तिम स्वर आते हैं वे ही न्यास, अपन्यास कहलाते हैं।

अल्पत्व

अल्पत्वं च द्विधा प्राक्तमनभ्यासाच्च लंघनात्।
अनभ्यासस्त्वनंशेषु प्रायो लोप्येष्वपीष्यते ॥

रागों में अल्पत्व और बहुत्व का एक महत्वपूर्ण स्थान है। अल्पत्व का अर्थ है कमी के साथ और बहुत्व माने ज्यादा तादाद में। जब किसी राग में किसी स्वर का महत्व कम दिखाकर राग विस्तार में उसका उपयोग कमी के साथ किया जाता है तो उसे 'अल्पत्व' कहते हैं। इसका प्रयोग २ प्रकार से किया जाता है—(१) लंघन से (२) अनभ्यास से। लंघन द्वारा जब अल्पत्व दिखाया जायगा तो आरोह या अवरोह में वह स्वर छोड़ दिया जायगा। जैसे शुद्ध कल्याण में निषाद का अल्पत्व है तो उसे आरोह में छोड़ देते हैं या लांघ जाते हैं, यह प्रयोग लंघन से हुआ और इस प्रकार आरोह में उसका अल्पत्व माना जायगा। अनभ्यास द्वारा अल्पत्व इस प्रकार होता है कि किसी राग में कोई स्वर कम प्रमाण में प्रयोग किया जावे और उस पर बार-बार अभ्यास न किया जाय और न इस स्वर पर अधिक देर तक ठहरा ही जाय, जैसे भीमपलासी में ध और रे का अनभ्यास-अल्पत्व है। प्रायः इस श्रेणी में वर्जित या विवादी स्वर आते हैं, और इनका अल्प उपयोग कुशलता पूर्वक अनभ्यास अल्पत्व के द्वारा ही विवादी स्वर के नाते किया जाता है।

बहुत्व

यह भी २ प्रकार से दिखाया जाता है। अलंघन और अभ्यास। अलंघन द्वारा बहुत्व इस प्रकार माना जायगा कि किसी राग के आरोह या अवरोह में उस स्वर को छोड़ा न जाय अर्थात् उसे लांघा न जावे और उस पर अधिक रुका भी न जावे, जैसे कालिंगड़ा में मध्यम स्वर छोड़ा नहीं जाता, किन्तु उस पर अधिक देर तक रुकते भी नहीं, अर्थात् केवल अलंघन द्वारा ही उसका बहुत्व दिखाते हैं। अभ्यास द्वारा बहुत्व दिखाना उसे कहते हैं जब किसी स्वर को बारम्बार और देर तक दिखाया जाता है, जैसे हमीर में धैवत का प्रयोग

अभ्यास मूलक बहुत्व माना जायगा। प्राय राग के वादी या सवादी स्वर का ही अभ्यास मूलक बहुत्व दिखाया जाता है, किन्तु किसी-किसी राग में अन्य स्वर का भी बहुत्व देखने में आता है। सङ्गीत रत्नाकर का भी यही आशय प्रतीत होता है —

अलघनात्तथाऽभ्यासाद्बहुत्वं द्विविधं मतम् ।
पर्यायांशे स्थितं तच्च वादिसम्वादिनोरपि ॥

—सङ्गीतरत्नाकर

भावार्थ—स्वरों को अलघन और अभ्यास २ प्रकार से बहुत्व दिया जाता है, यह बहुत्व प्राय वादी सम्वादी स्वरों को तो मिलता ही है, किन्तु कभी-कभी राग के किसी दूसरे "पर्याय अन्श" स्वर को भी यह बहुत्व दिया जाता है।

पकड—स्वरों का एक ऐसा समूह जिससे राग का स्वरूप व्यक्त होता है अर्थात् जिन स्वरों के समूह से राग पहिचाना जा सकता है, उसे "पकड" कहते हैं। प्रत्येक राग को पहिचानने के लिये अलग-अलग पकड होती है। उदाहरणार्थ —राग यमन की पकड यह है — नि रे ग रे, सा, पर्मग, रे, सा। केवल इतने स्वर समुदाय से ही फौरन मालुम हो जायगा कि यह राग यमन का स्वरूप है। इसी प्रकार अच्छे-अच्छे गायक आरोहावरोह के पश्चात राग की पकड दिखाकर रागरूप स्पष्टतया व्यक्त करदेते हैं।

मींड—किसी एक स्वर से आगे या पीछे के २—३ या अधिक स्वरों पर, ध्वनि को बिना खडित किये गाने या बजाने को मींड कहते हैं। जैसे प ध नि सा यहा पर पचम से सा तक की मींड दिखाई गई है तो इसे गाने में प से सा तक ऐसी कोमलता से जाना चाहिए कि बीच के दोनों स्वर ध, नि बोल भी जाय और आवाज़ टूटने भी न पावे।

सूत—सूत और मींड मे केवल इतना ही अन्तर है कि मींड का प्रयोग गाने में या सितार इत्यादि मिजराब वाले साजों में होता है और सूत का प्रयोग गज से बजाने वाले साजों में जैसे-सारगी, दिलरुबा, वॉयोलिन इत्यादि में होता है, तरीका वही है जो मींड का है।

आन्दोलन—स्वरों के हिलने या कम्पन को आन्दोलन कहते हैं, स्वरों के हिलने या उनके कम्पन से ही आन्दोलन सख्या नापी जाती है।

गमक—आन्दोलन के द्वारा जब स्वरों में कम्पन पैदा होता है तो उसे ही गम्भीरता पूर्वक उच्चारण करने को गमक कहते हैं, जैसे-स अ अ अ रे ए ए ए ग अ अ अ इत्यादि।

कण—किसी स्वर को उच्चारण करते समय उसके आगे व पीछे के स्वर को तनिक छूने या स्पर्श करने को कण कहते हैं। जैसे नि सा यहा पर निषाद को ज़रा सा स्पर्श करके सा पर आना है तो इसे सा पर निषाद कर कण कहेंगे।

[illegible]

तान—स्वरों का वह समूह जिसके द्वारा राग विस्तार किया जाता है "तान" कहते हैं, जैसे-सा रे ग म, ग रे सा या सां नि ध प म ग रे सा इत्यादि। स्वरों को तानने या फैलाने से ही 'तान' शब्द की उत्पत्ति हुई है। तानों के कई प्रकार हैं जो आगे बताये जाते हैं।

शुद्धतान—जिस तान में स्वरों का सिलसिला एक सा हो और आरोह-अवरोह सीधा-सीधा हो जैसे सा रे ग म प ध नि सां, सां नि ध प म ग रे सा। इसे ही सपाटतान भी कहते हैं।

कूटतान—जिस तान के स्वरों में क्रम या सिलसिला न हो उसे कूटतान कहेंगे, यह हमेशा टेढ़ी-मेढ़ी चलती है, जैसे—सारे गरे धप मप रेग मप धसां धप इत्यादि।

मिश्रतान—शुद्धतान और कूटतान इन दोनों का जिसमें मिलाप या मिश्रण हो उसे मिश्र तान कहेंगे, जैसे-प ध नि सां ग म प ध ध प म प ग म रे सा। इसमें कूटतान और शुद्ध तान दोनों मिली हुई हैं।

खटके की तान—स्वरों पर धक्का लगाते हुए तान ली जावे तो उसे खटके की तान कहेंगे।

झटके की तान—जब तान दूनी चाल में जारही हो और यकायक बीच में चौगुन की चाल में जाने लगे, उसे झटके की तान कहेंगे। जैसे—सा रे ग म प ध नि सां नि ध प म, सारे गम पधनिसां निधपम गरेसानि़।

वक्र तान—कूटतान के ही समान होती है, वक्र का अर्थ है टेढा, यानी जिसकी चाल सीधी न हो, जिसमें स्वरों का कोई क्रम न हो।

अचरक तान—जिस तान में प्रत्येक दो स्वर एक से बोले जांय, जैसे सासा रेरे गग मम पप धध। इसे अचरक की तान कहेंगे।

सरोक तान—जिस तान में चार-चार स्वर एक साथ सिलसिलेबार कहे जांय, जैसे-सारेगम रेगमप गमपध मपधनि, इसे सरोक तान कहेंगे।

लड़ंत तान—जिस तान में सीधी आड़ी कई प्रकार की लय मिली हुई हों, उसे लड़न्त तान कहते हैं, जैसे-नि़सा नि़सा रे रे रे रें निध़ नि़ध़ सा सा सा सा इत्यादि। इन तानों में गायक और वादक की लड़न्त, बड़ी मजेदार होती है।

सपाट तान—जिस तान में क्रमानुसार स्वर तेजी के साथ जाते हों उसे सपाटतान कहते हैं, उदाहरणार्थ—म़प़ध़नि़ सारेगम पधनिसां रेंगंमंपं।

गिटकरी तान—दो स्वरों को एक साथ, शीघ्रता के साथ एक के पीछे दूसरा लगाते हुए तान ली जाती है, जैसे—निसा निसा सारे सारे रेग रेग गम गम मप मप पध पध निसा निसा इत्यादि।

जबड़े की तान—कंठ के अन्तस्थल से आवाज निकाल कर जबड़े की सहायता से जब तानें लीजाती हैं तो उन्हें जबड़े की तान कहते हैं, ये मुश्किल होती हैं और सुलझे हुए गायक ही ऐसी तान लेने में समर्थ होते हैं।

हलक तान—जीभ को क्रमानुसार भीतर-बाहर चलाते हुए हलक तानें ली जाती हैं।

पलट तान—किसी तान को लेते हुए अवरोह करके लौट आने को पलटतान या पल्टा तान कहते हैं, यथा—सानिधप मगरेसा

बोलतान—जिन तानों में तान के साथ-साथ गीत के बोल भी मिलाकर विलम्बित, मध्य और द्रुत, आवश्यकतानुसार ऐसी तीनों लयों में गाये जाते हैं, वे बोल तानें कहलाती हैं। जैसे— गम रेसा मध मप

गुनि जन गाऽ वत

आलाप—गायक जब अपना गाना आरम्भ करता है तो राग के अनुसार उसके स्वरों को विलम्बित लय में फैलाकर यह दिखाता है कि मैं कौनसा राग गारहा हूँ। आलाप को ही स्वर विस्तार भी कहते हैं। जैसे विलावल का स्वर विस्तार इस प्रकार शुरू करेंगे— ग ऽ, रे ऽ, मा ऽ सा रे सा ऽ ग ऽ म ग प ऽ म ग, म रे, सा ऽ ऽ ऽ इत्यादि।

बढ़त—जब कोई गायक, गाना गाते समय एक-एक या दो-दो स्वरों को लेते हुए एवं छोटे-छोटे स्वर समुदायों में बढ़ते हुए बड़े-बड़े स्वर समुदायों पर आकर लय को धीरे-धीरे बढ़ाता है और फिर बोलतान गमक इत्यादि का प्रयोग करता है तब उसे 'बढ़त' कहते हैं।



आधुनिक आलाप गान

आधुनिक सङ्गीत में, प्राचीन निबद्ध–अनिबद्ध गान के अन्तर्गत अनिबद्ध गान का केवल १ प्रकार प्रचार में है और वह है "आलाप"। आलापगान करने वाले बहुधा ध्रुपदिये होते थे। जिनका स्वर ज्ञान तथा राग ज्ञान उच्चकोटि का होता था। इसी कारण उनका आलापगान सुन्दर और आकर्षक होता था। किन्तु अब तो ख्याल गायक भी सुन्दर आलाप करते देखे जाते हैं।

आलाप करने के वर्तमान समय में २ ढङ्ग हैं:—

१—नोमतोम द्वारा २—आकार द्वारा। नोमतोम का आलाप त, ना, न, री, नों, नारे, नेनेरी, तनाना, नेतोम, नना इत्यादि शब्दों के साथ किया जाता है। और आकार का आलाप आSSSS *के उच्चारण द्वारा। आकार से आलाप करने की अपेक्षा नोमतोम द्वारा आलाप प्रभावशाली और उत्तम होता है, क्योंकि इसमें बीच में किसी स्थान पर सम दिखाने की अच्छी सुविधा रहती है। आकार द्वारा आलाप में यह सुविधा उतनी अच्छी दिखाई नहीं देती, तथा नोमतोम के आलाप में अनेक स्वर वैचित्र्य दिखाने का कार्य सरलतापूर्वक होता है और द्रुतलय का आलाप भी इसमें भली प्रकार किया जा सकता है, क्योंकि द्रुतलय के आलाप मे त, ना, न, री, नो, इत्यादि अक्षर या शब्द गायक को बहुत सहायता पहुँचाते रहते हैं। किन्तु आकार के आलाप में द्रुतलय में काम दिखाते समय कठिनाई रहती है, और आकार के आलाप से श्रोता भी ऊब जाते हैं, जबकि नोमतोम का आलाप उन्हें बराबर स्फूर्ति और चेतना प्रदान करता रहता है।

वास्तव में "नोमतोम" का आलाप प्राचीन काल की ईश्वरोपासना का बिगड़ा हुआ स्वरूप है। कहा जाता है कि प्राचीन गायक आलाप द्वारा ईश्वर वन्दना "ओं अनन्त नारायण" या 'तू ही अनन्त हरी' इत्यादि प्रार्थना गान किया करते थे। बाद में केवल स्वरों का ही चमत्कार रह गया और शब्द निरर्थक प्रयोग किये जाने लगे। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि सङ्गीत के पूर्व पंडित संस्कृत भाषा के विद्वान होते थे, अतः उनको शब्दोच्चारण का ज्ञान भी उच्चकोटि का था। बाद में मुसलमान गायक उन शब्दों का उच्चारण करने में तो असमर्थ रहते थे, किन्तु वे उन स्वरों और रागों पर मोहित थे, इस प्रकार उन्होंने 'नोमतोम' की युक्ति द्वारा राग और स्वर तो पकड़ लिये, किन्तु शब्द छोड़ दिये। यही हाल 'तराने' की गायकी का भी हुआ।

गायक प्रायः पूरे आलाप को चार भागों में बाँटते हैं:—(१) स्थाई (२) अन्तरा (३) संचारी तथा (४) आभोग। पहिले स्थाई का भाग लेकर आलाप आरम्भ करते हैं:—

(१) स्थायी—

स्थायी में पहले षड्ज लगाकर वादी स्वर का महत्व दिखाते हुए पूर्वाङ्ग में आलाप चलता है। शुरू में कुछ मुख्य स्वरसमुदायों को लेकर फिर एक–एक नया

निषाद तक जाते हैं, फिर तार षडज को छूकर नीचे मध्य षडज पर आकर स्थाई समाप्त करते हैं। स्थाई भाग का आलाप अधिकतर मन्द्र और मध्य सप्तकों में ही चलता है।

(२) अन्तरा—

इसके बाद मध्य सप्तक के गंधार या पंचम स्वर में अन्तरा का भाग शुरू करते हैं, और तार सप्तक के षडज पर पहुँचकर अनेक प्रकार के काम दिखाते हैं, अर्थात् इस स्थान पर विभिन्न तानें विभिन्न प्रकार से वहीं समाप्त करते हैं। फिर धीरे-धीरे उतरते हुए मध्य षड्ज पर आकर मिल जाते हैं। इसमें मींड और कम्पन का काम भी खूब दिखाते हैं।

(३) संचारी—

तीसरा भाग संचारी का आता है। इसे प्रायः सा, म, प इनमें से किसी भी स्वर से आरम्भ करके मध्य पंचम या मध्य षड्ज पर ही आकर समाप्त किया जाता है। क्यों कि संचारी में प्रायः तार सप्तक के काम नहीं दिखाये जाते। संचारी में गमकों का प्रयोग अधिक दिखाई देता है, क्योंकि संचारी में स्थाई भाग की पुनरावृत्ति भी संशोधित रूप में हो जाती है। संचारी के बाद फिर स्थाई का आलाप नहीं करते, बल्कि एक दम आभोग आरम्भ कर देते हैं।

(४) आभोग—

आभोग का विस्तार प्रायः अन्तरा के विस्तार के समान ही करते हैं, अतः इसे अन्तरा की पुनरावृत्ति का ही संशोधित रूप समझा जाये तो अनुचित नहीं। इसमें तीनों सप्तकों का प्रयोग किया जा सकता है, और तार सप्तक में गायक अपने गले के धर्मानुसार जितना ऊँचा चाहे जा सकता है। इसमें अति द्रुतलय हो जाती है।

आलाप में लय की गति—

लय की दृष्टि से उपरोक्त चारों भागों के आलाप में इस प्रकार चला जाता है कि (१) स्थायी में विलम्बित लय के साथ आलाप चलता है। (२) अन्तरा में आलाप करने का समय आता है, तो मध्यलय करदी जाती है और तानों का प्रयोग आरम्भ कर दिया जाता है। बीच-बीच में छोटी-छोटी तानों की सहायता से आलाप के काम में सुन्दरता पैदा की जाती है और तीनों सप्तकों में आलाप का काम दिखाकर स्थायी और अन्तरा दोनों के काम इस भाग में दुबारा दिखाये जा सकते हैं। (३) संचारी भाग में लय द्रुत हो जाती है और तीनों सप्तकों में गमक तथा लयकारी का प्रदर्शन करते हुए आलाप चलता है। (४) आभोग में लय को और भी द्रुत करके, अन्तरा के भाग को विविध प्रकार से दुहराते हुए गमक का प्रयोग जारी रखा जाता है और गायक जितनी तेजी से गा सकता है, अपना सम्पूर्ण कौशल दिखाते हुए तबले या पखावज वाले के साथ एक प्रकार की प्रतियोगिता उपस्थित कर देता है। इस भाग के नोमतोम के शब्द अति द्रुतलय के कारण तराने का रूप धारण कर लेते हैं।

गमक के प्रकार

स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृचित्त सुखावहः ।
तस्य भेदास्तुतिरिपः स्फुरितः कम्पितस्तथा ॥
लीन आन्दोलितवलितत्रिभिन्नकुरुलाहताः ।
उल्लासितः प्लावितश्च हुंफितो मुद्रिस्तथा ॥
नामितो मिश्रितः पंचदशेति परिकीर्तिता ॥

—संगीतरत्नाकर

अर्थात्—स्वरों का ऐसा कम्पन जो सुनने वालों के चित्त को सुखदायी हो, उसे 'गमक' कहते हैं।

गमक के भेद १५ हैं:—(१) तिरप, (२) स्फुरित, (३) कम्पित, (४) लीन, (५) आन्दोलित, (६) वलित, (७) त्रिभिन्न, (८) कुरुला, (९) आहत, (१०) उल्लासित, (११) प्लावित, (१२) हुंफित, (१३) मुद्रित, (१४) नामित, (१५) मिश्रित।

दक्षिणी सङ्गीत के ग्रन्थों में गमकों के १० प्रकार निम्निलिखित मिलते हैं:—
(१) आरोह, (२) अवरोह, (३) ढालु, (४) स्फुरित, (५) कम्पित, (६) आहत, (७) प्रत्याहत, (८) त्रिपुच्छ, (९) आन्दोलित, (१०) मूर्च्छना।

प्राचीन समय में स्वरों के एक विशेष प्रकार के कम्पन को गमक कहते थे। उस कम्पन को प्रकट करने के लिये जो विभिन्न ढङ्ग उस समय प्रचार में थे, उन्हीं का उल्लेख ऊपर के श्लोक में किया गया है।

वर्तमान समय में यद्यपि गमकों का प्रयोग प्राचीन ढङ्ग से नहीं होता, तथापि किसी न किसी रूप में गमक का प्रयोग हमारे वाद्य सङ्गीत और मौखिक सङ्गीत में होता अवश्य है। खटका, मुर्की, जमजमा, मींड़, सूत, कम्पन, गिटकरी इत्यादि शब्द गमक की ही श्रेणी में आते हैं।

आधुनिक सङ्गीतज्ञ 'गमक' की व्याख्या इस प्रकार करते हैं:—जब हृदय से जोर लगाकर गम्भीरता पूर्वक कुछ कम्पन के साथ स्वरों का प्रयोग किया जाता है, उसे गमक कहते हैं। गमक का प्रयोग अधिकतर ध्रुपद गायन में होता है; किन्तु कोई-कोई गायक ख्याल गायन में भी गमक की तानें लेते हैं। नोमतोम के आलाप में भी जब अन्तिम भाग द्रुतलय का आता है, तो गमक युक्त तानें ली जाती हैं।

रागों का १० विभागों में वर्गीकरण

करने का प्राचीन सिद्धान्त



प्राचीन सङ्गीत पण्डितों ने अपने रागों का १० विभागों में वर्गीकरण इस प्रकार किया है —

(१) ग्रामराग, (२) उपराग, (३) राग, (४) भाषा, (५) विभाषा, (६) अन्तर्भाषा, (७) रागांग, (८) भाषांग, (९) क्रियांग, (१०) उपांग।

ग्राम राग

'सङ्गीतरत्नाकर' ग्रन्थ में शुद्धा, भिन्ना, गौड्या, वेसरा और साधारण इन पाँच गीतियों के अन्तर्गत ३० ग्रामराग माने हैं, जो इस प्रकार हैं —

(१) शुद्धा—१ षड्जग्राम, २ मध्यमग्राम, ३ शुद्धकैशिक, ४ शुद्धपंचम, ५ शुद्ध कैशिकमध्यम, ६ शुद्ध साधारित, ७ शुद्ध षाडव।

(२) भिन्ना—१ भिन्नषड्ज, २ भिन्नपंचम, ३ भिन्नकैशिक, ४ भिन्नतान, ५ भिन्न-कैशिकमध्यम।

(३) गौड्या—गौडकैशिक, २ गौडपंचम, ३ गौडकैशिकमध्यम।

(४) वेसरा—१ सौवीर, २ टक्क, ३ बोट्ट, ४ मालवकैशिक, ५ टक्ककैशिक, ६ हिन्दोल, ७ मालव पंचम, ८ वेसर षाडव।

(५) साधारण—रूपसाधार, २ शक ३ भम्माणपंचम, ४ नर्त, ५ गांधार पंचम, ६ षड्जकैशिक, ७ ककुभ।

उपरोक्त ३० ग्राम रागों के अतिरिक्त ८ उपराग, २० राग, ८ पूर्व प्रसिद्ध रागांग, ११ भाषांग, १२ क्रियांग, ३ उपांग, ९६ भाषाराग, २० विभाषाराग, ४ अन्तर्भाषाराग, १३ शाङ्गदेव के समय में प्रचलित राग, ९ भाषांग, ३ क्रियांग और २७ उपांग बताये गये हैं, इस प्रकार रत्नाकर ग्रंथ में २६४ राग बताए गये हैं।

'सङ्गीतसमयसार' ग्रन्थ में पार्श्वदेव ने देशी सङ्गीत के अन्तर्गत १०१ राग मानकर उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया है —

रागांगराग	भाषांगराग	उपांगराग	क्रियांगराग
१२ सम्पूर्ण	२१ सम्पूर्ण	१८ सम्पूर्ण	———
४ षाडव	११ षाड.	—	
४ औडुव	१५		
२०	४७		

अपने विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं

ग्रामराग—प्राचीन सङ्गीत के कुछ ग्रन्थों में ग्रामों से जातियों और जातियों से ग्राम रागों की उत्पत्ति मानी गई है। प्राचीनकाल में राग गायन के स्थान पर जाति गायन ही प्रचलित था, अतः रागों के प्रकार या वर्ग को ही 'ग्रामराग' कहा जाता था।

उपराग—ग्राम रागों में ही विभिन्न स्वरों के हेर-फेर से उपरागों की उत्पत्ति हुई।

राग—यह भी ग्राम रागों के माध्यम से ही उत्पन्न हुए।

भाषा—गाने की एक विधि या शैली को कहा जाता था। उस शैली का गायन जितने रागों में व्यवहृत होता था, उन्हें भाषा राग कहते थे। मतङ्ग ने भाषा के अन्तर्गत १६ राग बताये हैं।

विभाषा—गाने की एक दूसरी विधि या प्रकार को कहा जाता था। इसके अन्तर्गत मतङ्ग ने १२ राग अपने ग्रंथ में लिखे हैं।

अन्तर्भाषा—गाने की एक तीसरी विधि थी, जिसका प्रयोग विशिष्ट रागों में किया जाता था।

रागाङ्ग, भाषांग, क्रियांग और उपाङ्ग के विवरण भातखण्डे जी ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार दिये हैं, जो उन्हें दक्षिण के एक पण्डित ने बताये थे।

रागांग—ऐसे शास्त्रीय रागों को कहा जाता था, जिनमें राग के सभी शास्त्रीय नियमों का पालन किया जाता हो।

भाषांग— ऐसे रागों को कहा जाता था जो शास्त्रीय राग नियम पर आश्रित न रह कर भिन्न-भिन्न देशों के विभिन्न शैलियों या भाषाओं द्वारा निर्मित होकर व्यवहार में लाये जाते थे, उन्हीं शास्त्रीय रागों के भाषांग कहलाते थे, जिनसे वे बहुत कुछ मिलते-जुलते थे।

क्रियांग—जिन रागों में शास्त्रीय राग नियमों का पालन करते हुए कुछ गायक अपनी क्रिया से किसी विवादी स्वर का प्रयोग करके उसमें विशेषता पैदा करते थे, वे क्रियांग राग कहलाते थे।

उपांग—क्रियांग रागों की तरह, अन्य रागों में हेर-फेर करके उपांग राग उत्पन्न किये जाते थे। इनमें मूल राग के किसी स्वर को हटाकर नया स्वर ले लिया जाता था।

सङ्गीत दर्पण के लेखक पंडित दामोदर ने इनकी व्याख्या इस प्रकार संक्षेप में बताई है:—

रागाङ्ग राग— वे हैं जिनमें ग्राम राग की कुछ छाया मिले।

भाषाङ्ग राग—वे हैं जिनमें भाषा राग की छाया हो।

क्रियाङ्ग राग—वे हैं जिनसे शिथिल इन्द्रियों को बल व उत्साह प्राप्त होता हो।

उपाङ्ग राग—वे है जिनमें राग की छाया बहुत ही कम मिलती हो।

इसी से मिलता-जुलता वर्णन कल्लिनाथ ने सङ्गीत रत्नाकर की टीका में दिया है।

उपरोक्त शास्त्रीय मत भेद के कारण, उपरोक्त शब्दों का ठीक-ठीक विवरण क्या हो सकता है ? इसका निर्णय करना कठिन ही है, अतः विभिन्न शास्त्रों का व्यापक अध्ययन करके विद्वानों द्वारा इस विषय पर कोई एक मत निर्धारित कर लिया जाये तभी यह समस्या हल हो सकती है।

———

आदत-जिगर-हिसाब

ऐसे पुराने उस्तादों से, जो विशेष पढ़े लिखे नहीं हैं, बातचीत करते समय बहुधा कुछ ऐसे शब्द सुनाई देते हैं, जिनका अर्थ जानने के लिये सङ्गीत के विद्यार्थी उत्सुक रहते हैं। इन शब्दों में ही आदत, जिगर और हिसाब आते हैं जिनका उल्लेख यहा किया जाता है।

प्राचीन गुणी गायकों का कहना है कि गायक में "आदत, जिगर और हिसाब" इनमें से कम-से-कम प्रथम दो बातें तो होनी ही चाहिये, अन्यथा वह अपनी सङ्गीत साधना में सफलता प्राप्त नहीं कर सकेगा। तीसरी विशेषता "हिसाब" प्राय ताल वादकों से सम्बन्धित है, जिसका उल्लेख नीचे किया जायगा।

आदत—उत्तम रियाज (अभ्यास) भली प्रकार तान लेने की सामर्थ्य प्राप्त करने की क्षमता रखना "आदत" कहलाता है। जो सङ्गीत प्रेमी नियमित रूप से नित्यप्रति अभ्यास करता रहता है, उसके उच्चारण में गभीरता और स्वर माधुर्य पैदा हो जाता है, उसके गाने की "आदत" जब तक कायम रहेगी तब तक उसे सफलता मिलती रहेगी, इसके विरुद्ध कोई बड़े से बड़ा गायक भी जब अपना रियाज छोड़ देता है तो उसके गायन में वह आकर्षण नहीं रहता जो कि रियाज जारी रहने पर सम्भव हो सकता था। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि उस सङ्गीतज्ञ की गाने की "आदत" छूट गई।

जिगर—आयुर्वेद में 'जिगर' शरीर के उस भाग को कहा जाता है, जिसके द्वारा रक्त बनता है, लेकिन सङ्गीतज्ञों के कोष में इसका अर्थ है "अङ्ग स्वभाव" अर्थात् (Musical Temperament) राग की बढ़त करते समय किस स्थान पर कौनसा स्वर समुदाय सुन्दर और आकर्षक प्रतीत होगा। राग में कौन से स्वर लगाने पर राग का माधुर्य बढ़ेगा इत्यादि बातों का ज्ञान रखना ही अङ्ग स्वभाव के अन्तर्गत आता है और इसे ही सङ्गीतज्ञों की भाषा में "जिगर" कहते हैं।

हिसाब—राग व ताल के शास्त्रीय नियमों की जानकारी रखना ही "हिसाब" के अन्तर्गत आता है। बहुत से अशिक्षित गायक या तबलिये मात्राओं के हिसाब-किताब को न जानते हुए भी यद्यपि काम कर जाते हैं, किन्तु गुणी लोगों के साथ बैठकर बातचीत करते समय जब मात्राओं या शास्त्रीय नियमों का मसला पेश होता है तब वे बगलें झाकने लगते हैं। किसी-किसी गायक को बड़ी-बड़ी तानें लेकर 'सम' पर मिलना आता है, किन्तु वह बेचारा अशिक्षित होने के कारण "हिसाब" से शून्य होता है।

इस प्रकार आदत, जिगर और हिसाब यह तीनों विशेषताएं जिस सङ्गीतज्ञ में होगी वही सफल कलाकार माना जायगा। और इन तीनों में से जो भी गुण उसमें कम होगा वह उतना ही अधूरा समझा जायगा।

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं —

स्वरलिपि पद्धति

किसी गाने की कविता को अथवा साजों पर बजाने की गत को स्वर और ताल के साथ जब लिखा जाता है, तब उसे स्वरलिपि (Notation) कहते हैं। प्राचीन काल में भारतवर्ष में लगभग ३५० ई० पू० अर्थात् पाणिनी के समय के पहले ही स्वरलिपि पद्धति विद्यमान थी। किन्तु तब यह स्वरलिपि पद्धति अपने शैशवकाल में ही थी। उस समय तीव्र तथा कोमल स्वरों के भेद तथा ताल मात्रा सहित स्वरलिपि नहीं होती थी; अपितु केवल स्वरों के नाम उनके प्रथम अक्षरों के साथ सरगम के रूप में दिये जाते थे। उनसे केवल इतना ही बोध होता था कि अमुक गायन में अमुक स्वर प्रयुक्त हुए हैं।

तीव्र कोमल स्वरों के चिन्ह न होने के कारण एवं ताल, मात्रा, मींड आदि के अभाव में उन स्वरलिपियों से सङ्गीत विद्यार्थी लाभ उठाने में असमर्थ रहे। प्राचीन समय में स्वरलिपि पद्धति का विकास न होने के और भी कुछ कारण थे, उदाहरणार्थ:—

१—उस समय सङ्गीत कला विशेषतया क्रियात्मक (Practical) रूप में थी अर्थात् गुरु मुख से सुनकर ही विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण किया करते थे।

२—लेखन प्रणाली एवं मुद्रण सम्बन्धी सुविधायें उस समय आजकल जैसी न थीं।

३—रागों को ज़बानी (मौखिक) याद रक्खा जाता था।

४—सङ्गीत कला गुरू से शिष्य को और शिष्य से उसके शिष्य को सिखाने या कंठस्थ कराने की प्रथा थी।

५—प्राचीन समय के उस्ताद अपनी कला को केवल अपने पुत्र अथवा विश्वसनीय शिष्यों को लिखकर नहीं बताते थे, बल्कि सीना ब सीना (सामने बैठकर) ही सिखाना पसन्द करते थे।

विद्यार्थियों के लिये सुबोध और सरल स्वरलिपि का निर्माण आज से ५०-६० वर्ष पूर्व हुआ। जिसका श्रेय भारतीय सङ्गीत की दो महान् विभूतियों १—पं० विष्णु नारायण भातखण्डे २—पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर को है।

इनके द्वारा निर्मित स्वरलिपियों का प्रचार शनैः शनैः समस्त भारत में होता गया। बीच-बीच में अन्य कई सङ्गीत पंडितों ने भी अपनी-अपनी प्रथक स्वरलिपि पद्धतियां चालू कीं, किन्तु वे व्यापक रूप से प्रचार में न आ सकीं और आज उक्त दोनों (भातखण्डे व पलुस्कर) पद्धतियां ही लोकप्रिय होकर प्रचार में आ रही हैं।

यद्यपि इन स्वरलिपि पद्धतियों से गायक के गले की सभी विशेषताएँ लिपिबद्ध करना सम्भव नहीं हो सका है। उदाहरणार्थ भारतीय सङ्गीत की विशेषतायें गमक, गिटकरी, राग सौन्दर्य, अलंकार, श्रुति प्रयोग, स्वर माधुर्य आदि बारीकियां स्वरलिपि द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकतीं। फिर भी वर्तमान स्वरलिपि पद्धतियों से सङ्गीत विद्यार्थियों को जो सहायता मिली है और मिल रही है उसे भुलाया नहीं जा सकता।

श्री भातखण्डे ने पुराने घरानेदार उस्तादों के गायनों की स्वरलिपियाँ तैयार करने में बहुत ही परिश्रम किया था। उन्होंने समस्त भारत का भ्रमण करके उस्तादों की सेवा तथा खुशामद करके स्वरलिपियां तैयार कीं। उस समय कुछ ऐसे भी उस्ताद थे जो अपने गाने की स्वरलिपि किसी भी प्रकार दूसरे व्यक्ति को बनाने की आज्ञा नहीं देते थे। श्री भातखण्डे ने बडी युक्ति और कौशल से परदों के पीछे छिप-छिप कर उनका गायन सुना और स्वरलिपियां तैयार कीं एवं बहुत सी स्वरलिपियां ग्रामोफोन रेकर्डों द्वारा भी तैयार कीं, इस प्रकार कई हजार चीजों की स्वरलिपियां तैयार करके उन्होंने क्रमिक पुस्तक मालिका ६ भागों में प्रकाशित कर सङ्गीत विद्यार्थियों का मार्ग प्रशस्त बना दिया। इसी प्रकार पंडित विष्णुदिगम्बर पलुस्कर ने भी कई पुस्तकें तैयार कीं। पलुस्कर जी की स्वरलिपि पद्धति जो प्रारम्भ में उनके द्वारा चालू हुई थी, अब उसमें कुछ परिवर्तन हो गये हैं, यही कारण है कि विष्णु दिगम्बर जी की प्रारम्भिक मूल पुस्तकों में, तथा आज उनके विद्यालयों में चलने वाली 'राग विज्ञान' आदि पुस्तकों के चिन्हों में काफी अन्तर पाया जाता है। तथापि वर्तमान स्वरलिपि प्रणाली उनकी प्राचीन प्रणाली से अधिक सुविधाजनक है, यही कारण है कि यह परिमार्जित स्वरलिपि पद्धति विशेष रूप से प्रचार में आरही है। विष्णुदिगम्बर जी की स्वरलिपि पद्धति जो आजकल प्रचार में आरही है वह इस प्रकार है—

विष्णु दिगम्बर पद्धति के स्वरलिपि चिन्हः—

(१) जिन स्वरों के ऊपर नीचे कोई चिन्ह नहीं होता वे मध्य सप्तक के शुद्ध स्वर समझे जाते हैं, जैसे—रे ग म प

(२) जिन स्वरों के नीचे हलन्त का निशान होता है उन्हें कोमल या विकृत स्वर मानते हैं, जैसे—रि् ग् ध् नि्

(३) तीव्र या विकृत मध्यम को उल्टे हलन्त द्वारा इस प्रकार दिखाते हैं—म॒

(४) ऊपर बिन्दी वाले स्वर मन्द्र सप्तक के माने जाते हैं, जैसे—पं धं निं

(५) जिन स्वरों के ऊपर खडी लकीर होती है वे तार सप्तक के स्वर होते हैं। जैसे—सां रिं गं मं

(६) स्वर पर मात्राओं के लिये इस प्रकार चिन्ह रक्खे हैं—

+ चारमात्रा जैसे—सा (नीचे +)

ऽ दोमात्रा जैसे—सा (नीचे ऽ)

– १ मात्रा, जैसे—सा (नीचे –)

० आधी मात्रा, जैसे—सा (नीचे ०)

‿ $\frac{१}{४}$ मात्रा, जैसे—प (नीचे ‿)

‿‿ $\frac{१}{८}$ मात्रा, जैसे—म (नीचे ‿‿)

(७) उच्चारण के लिये अवग्रह ऽ चिन्ह का प्रयोग करते हैं और गीत के अक्षरों के ठहराव को लम्बा करने के लिये बिन्दु • का प्रयोग करते हैं।

जैसे—ग ऽ ऽ प
रा • • म

(८) स्वरों के नीचे $\frac{१}{३}$ या $\frac{१}{६}$ इत्यादि लिखा हो तो वहां १ मात्रा में ३ या ६ स्वर बोले जाते हैं।

(९) किसी स्वर के ऊपर कोई दूसरा स्वर लिखा हो तो उसे कण स्वर (Grace note) के रूप में प्रयुक्त करते हैं।

(१०) ताल में सम के लिये १ का चिन्ह लगाते है खाली के लिये + चिन्ह का प्रयोग होता है, अन्य तालियों वे लिये क्रमशः २, ३, ४ आदि अंकों का प्रयोग करते हैं।

भातखण्डे पद्धति के स्वरलिपि चिन्हः—

(१) जिन स्वरों के नीचे ऊपर कोई चिन्ह नहीं होता उन्हें शुद्ध स्वर मानते हैं, जैसे—सा रे ग म

(२) जिन स्वरों के नीचे आड़ी रेखा खींचदी गई हो, उन्हें कोमल स्वर कहते हैं, जैसे—रे॒ ग॒ ध॒ नि॒

(३) तीव्र मध्यम की पहिचान के लिये म के ऊपर एक खड़ी लकीर खींचदी जाती है, जैसे—म॑

(४) नीचे बिन्दु वाले स्वर मन्द्र सप्तक के माने जाते हैं, जैसे—म़ प़ ध़

(५) ऊपर बिन्दु वाले स्वर तार सप्तक के मानते हैं, जैसे— गं रें सां

(६) बिना बिन्दी वाले स्वर मध्य सप्तक के समझने चाहिये, जैसे—प म ग

(७) गाने के जिस शब्द के आगे ऽ ऐसे चिन्ह जितने हों तो उसको उतनी ही मात्रा बढ़ाकर गाते हैं, जैसे—श्या ऽ ऽ म

(८) स्वरों के आगे इस प्रकार जितने – निशान हों उसे उतनी ही मात्रा बढ़ाकर गाते हैं, जैसे—ग – –

(९) कई स्वरों को एक मात्रा में गाने-बजाने के लिये ‿ इस चिन्ह का प्रयोग होता है, जैसे—पमग अथवा रेगमप

(१०) स्वरों के ऊपर ⌒ इस प्रकार के चिन्ह को मींड कहते है, जैसे—म प ध नि अर्थात् यहां पर मध्यम से निषाद तक की मींड ली जायेगी।

(११) किसी स्वर के ऊपर कोई स्वर लिखा हो तो उसे कण स्वर समझना चाहिये,
ग
जैसे—प यानी ग को ज़रा छूते हुए प स्वर को गाना या बजाना।

(१२) जो स्वर ब्रैकिट में बन्द हो उसे इस प्रकार गाना चाहिये। पहले उसके बाद का स्वर, फिर वह स्वर जो ब्रैकिट में बन्द है, फिर उसके पहले का स्वर तथा फिर वही ब्रैकिट वाला स्वर। यानी एक मात्रा में चार स्वर गाये जायेंगे, जैसे (प)=ध प म प

(१३) ताल में सम दिखाने का यह × चिन्ह होता है।

(१४) खाली के लिये यह ० चिन्ह प्रयोग होता है।

(१५) सम को पहिली ताली मानकर अन्य तालियों के लिये २-३-४ आदि लगाते हैं।

संगीत और रस



मानव जाति के अन्तःकरण में वास करने वाली विशिष्ट भावनाओं के परमोत्कर्ष को ही शास्त्रों ने 'रस' कहा है अथवा जब कोई स्वाभाविक वस्तु कुछ परिवर्तित होकर मन के अन्दर एक असाधारण नवीनता उत्पन्न कर देती है, तब उसे रस कहते हैं।

साहित्य में नवरस माने गये हैं, यथा —

श्रंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्सोद्भुत इत्यष्टौ रस शान्तस्तथा मतः ॥

(१) श्रंगार, (२)हास्य, (३) करुण, (४) रौद्र, (५) वीर, (६) भयानक, (७) वीभत्स, (८) अद्भुत, (९) शान्त।

सङ्गीत में केवल श्रृङ्गार, वीर, करुण और शान्त इन चार रसों में ही उपरोक्त नवरसों का समावेश माना गया है। हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने प्राचीन सप्त स्वरों के रस इस प्रकार बताये हैं —

सरी वीरेऽद्भुते रौद्रे धा वीभत्से भयानके ।
कार्यो ग नी तु करुणहास्यश्रंगारयोर्मपौ ॥

अर्थात —सा, रे—वीर, रौद्र तथा अद्भुत के पोषक हैं।
ध— वीभत्स तथा भयानक रस का पोषक है।
ग, नि—करुण रस के पोषक हैं।
म, प—हास्य व श्रृङ्गार रस के पोषक हैं।

पण्डित भातखण्डे जी ने हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति में स्वरों के अनुसार रागों के जो ३ वर्ग नियत किये हैं, उन तीनों वर्गों में पण्डितजी ने रसों का समावेश इस प्रकार करने का सुझाव दिया है, यथा —

- रे ध कोमल वाले सधिप्रकाश रागों में—शान्त व करुणरस।
- रे ध तीव्र वाले रागों में—श्रृङ्गार रस।
- ग नि कोमल वाले रागों में—वीर रस।

यद्यपि प्राचीन ग्रंथकारों ने किसी एक स्वर से ही एक रस की सृष्टि बताई है, किन्तु वास्तव में देखा जाय तो केवल एक ही स्वर से किसी विशेष रस की उत्पत्ति होना सम्भव नहीं।

उदाहरणार्थ —षड्ज स्वर को उन्होंने वीर रस प्रधान बताया है तथा पंचम को श्रृङ्गार रस का स्वर माना है और हमारे प्रायः सभी रागों में षड्ज या पञ्चम स्वर अवश्य है, तो इसका यह अर्थ हुआ कि सभी राग वीर रस या श्रृङ्गार रस प्रधान होने

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं —

चाहिये थे; किन्तु वस्तुतः ऐसी बात नहीं है, अनेक रागों से विभिन्न रसों की सृष्टि होती है। निष्कर्ष यही निकलता है कि एक स्वर अपने अन्य सहयोगी स्वरों के साथ मिलकर ही रसोत्पत्ति करने में सफल होता है। कोई वादी स्वर अपने सम्वादी, अनुवादी या विवादी स्वर के सम्पर्क से ही किसी रस की सृष्टि करता है। शास्त्रीय स्वर योजना के अनुसार निश्चित ऋतु में, योग्य वातावरण को देखकर श्रोताओं की मनोभावना को समझते हुए कोई राग जब किसी योग्य गायक द्वारा गाया जावे तथा उसके गीत का काव्य भी उसी रस के अनुकूल हो, तो रस की उत्पत्ति अवश्य होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसके विपरीत यदि कोई गायक वीभत्स रस की स्वरावली में शान्त रस का गीत गाने लगे, तो रसोत्पत्ति कदापि नहीं हो सकती। जहां पर केवल स्वरों द्वारा ही रस की सृष्टि करनी है, वहां गीत को छोड़कर केवल स्वर-लहरी द्वारा भी रसोत्पत्ति की जा सकती है। स्वर और शब्दों से ही गीत का निर्माण होता है और जब गीत में स्वर ही न रहेंगे तो वह शब्दों की एक निरस रचना मात्र रह जायेगी, जो बिना स्वरों की सहायता के रस की सृष्टि करने मे सर्वथा असफल रहेगी। किसी एक ही शब्द द्वारा स्वरों की सहायता से विभिन्न रसों को उत्पन्न किया जा सकता है। जैसे 'आओ' यह शब्द लीजिये, इसे जब करुण स्वरों में कहा जायेगा तो ऐसा मालूम होगा, मानो कोई सहायता के के लिए पुकार रहा है; इस प्रकार करुणा रस की सृष्टि होगी। और जब इसी शब्द को शृङ्गारिक स्वरों में कहा जायेगा तो ऐसा प्रतीत होगा, मानो कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका को बुला रहा है; यहां शृङ्गार रस की सृष्टि होगी। कठोरता के स्वरों में इसी शब्द को कहा जाय, मानो लड़ने के लिये दुश्मन को चुनौती दी जा रही है, तब इसी 'आओ' से वीर रस की सृष्टि होगी।

उपरोक्त उद्धरण से यह भलीभांति प्रकट है कि एक ही शब्द से विभिन्न रसों की सृष्टि केवल स्वर भेद के कारण हुई। अतः रसोत्पत्ति का मूल कारण स्वर ही माना जायेगा। काव्य द्वारा भी रुदन, क्रोध, भय, आश्चर्य, हास्य आदि भावों की सृष्टि तभी होती है, जबकि भिन्न शैली से उस कविता का उच्चारण हो और भिन्न शैली के उच्चारण में स्वरों का कुछ न कुछ अस्तित्व अवश्य ही होगा। वास्तव में देखा जाय तो प्रत्येक उच्चारण का सम्बन्ध नाद, स्वर और लय से है, यथा:—

आत्मा विवक्षमाणोऽयं मतः प्रेरयते मनः।
देहस्थं मन्हिमाहंति सम्प्रेरयति मारुतम् ॥
ब्रह्मग्रन्थिस्थितः सोऽथ क्रमादूर्ध्वं पथे चरन्।
नाभिहृत्कंठमूर्धास्येष्वाविर्भवियते ध्वनिम् ॥

अर्थात्—"जब आत्मा को बोलने की इच्छा होती है, तब वह मन को प्रेरित करती है। मन देहस्थ अग्नि को प्रेरणा देता है, अग्नि वायु का चलन करती है, तब ब्रह्म ग्रंन्थिस्थ वायु क्रमशः ऊपर चढ़ती हुई नाभि, हृदय, कंठ, मूर्धा और मुख इन स्थानों से पाँच प्रकार के नाद (ध्वनि) उत्पन्न करता है।" इन नादों का सम्बन्ध स्वर से है और स्वरों की सहायता से भावना तथा रस की उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार स्वरों द्वारा

रस की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार नृत्य तथा ताल के द्वारा भी हमें विभिन्न प्रकार के रस प्राप्त होते हैं। एक सफल नर्तक अपने नाच में विभिन्न प्रकार के भावों द्वारा रसोत्पादन करने में सफल होता है। ताण्डव नृत्य में वीर तथा रौद्र रस, लास्य में शृङ्गार रस तथा कथक नृत्य की अनेक भाव-भंगियों द्वारा शृङ्गार, हास्य, करुण और शान्त रसों की सफलता पूर्वक उत्पत्ति की जा सकती है। यहा पर न स्वर है न शब्द, फिर भी रस की सृष्टि होती है, यही नृत्यकला की विशेषता है।

ताल और लय का सम्बन्ध भी रस से होता है। यथा —

"तथा लया हास्यशृगारयोर्मध्यमाः।
वीभत्सभयानकयोर्विलम्बितः।
वीररौद्राद्भुतेषु च द्रुतः॥"
(विष्णुधर्मोत्तर पुराण)

अर्थात्—हास्य एवं शृंगार रसों में मध्यम लय का प्रयोग होता है, वीभत्स एवं भयानक रसों में विलम्बित लय का तथा वीर, रौद्र एवं अद्भुत रसों में द्रुतलय का प्रयोग होता है।

इस प्रकार गायन, वादन, नर्तन, ताल और लय सङ्गीत के इन सभी अङ्गों द्वारा विभिन्न रसों की सृष्टि सम्भव है।



प्रथम वर्ष से पंचम वर्ष तक के

६० रागों का वर्णन

१	बिलावल	२१	मारवा	४१	अड़ाना
२	अल्हैयाबिलावल	२२	सोहनी	४२	धानी
३	खमाज	२३	जौनपुरी	४३	मांड़
४	यमन	२४	मालकौंस	४४	गौड़मल्लार
५	काफी	२५	छायानट	४५	झिंझोटी
६	भैरवी	२६	कामोद	४६	श्रीराग
७	भूपाली	२७	बसन्त	४७	ललित
८	सारङ्ग	२८	शंकरा	४८	मियांमल्लार
९	विहाग	२९	दुर्गा	४९	दरबारी कान्हड़ा
१०	हमीर	३०	दुर्गा (बि० थाट)	५०	तोड़ी
११	देस	३१	शुद्ध कल्याण	५१	मुलतानी
१२	भैरव	३२	गौड़सारङ्ग	५२	रामकली
१३	भीमपलासी	३३	जैजैवन्ती	५३	विभास
१४	बागेश्री	३४	पूर्वी	५४	पीलू
१५	तिलककामोद	३५	पूर्याधनाश्री	५५	आसा
१६	आसावरी	३६	परज	५६	पटदीप
१७	केदार	३७	पूरिया	५७	रागेश्री
१८	देशकार	३८	सिंदूरा	५८	पहाड़ी
१९	तिलङ्ग	३९	कालिंगड़ा	५९	जोगिया
२०	हिन्डोल	४०	बहार	६०	मेघमल्लार

१—विलावल

शुद्ध सुरन सों गाइये, धग संवाद बखान।
राग विलावल को समय, प्रातः काल प्रमान॥

राग—विलावल	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—विलावल	आरोह—सा रे ग म प ध नि सा
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सा नि ध प म ग रे सा
वादी—ध, सम्वादी ग	पकड—गरे, गप, ध, नि सा
स्वर—सभी शुद्ध हैं	गायन समय—प्रात काल प्रथम प्रहर

यह उत्तराङ्ग वादी राग है। यह राग कल्याण राग के समान दिखाई देता है, अत इसे प्रात काल का कल्याण भी कहते हैं।

२—अल्हैया विलावल

आरोहन मध्यम नहीं, धग सवाद बखान।
उतरत कोमल नी लखै, ताहि अल्हैया जान॥

राग—अल्हैया विलावल	वर्जित स्वर—आरोह में मध्यम
थाट—विलावल	आरोह—सा, रे, गप, ध नि सा
जाति—षाडव सम्पूर्ण	अवरोह—सानिध, प, मग रेसा
वादी—ध, सम्वादी ग	पकड—गरे, गप, धनिसा
स्वर—अवरोह में दोनों नि	गायन समय—प्रात काल

विलावल राग से ही अल्हैया विलावल की उत्पत्ति हुई है। अवरोह में कोमल निषाद का थोड़ा सा प्रयोग इसके सौन्दर्य को बढाता है। निषाद और गान्धार इसमें वक्र हैं

३—खमाज

दोउ निषाद नीके लगें, आरोही रे हानि।
गनि वादी सम्वादि तें, खम्माजहि पहिचानि॥

राग—खमाज	वर्जित स्वर—आरोह मे रिषभ
थाट—खमाज	आरोह—सा, गम, प, धनिसा।
जाति—षाडव, सम्पूर्ण	अवरोह—सा नि ध प, मग, रेसा।
[illegible]—ग, सम्वादी-नि	पकड—निध, मप, ध, मग।
[illegible]—दोनो नि	गायन समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

[illegible]विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं—

इस राग के आरोह में धैवत कुछ दुर्बल रहता है। आरोह में तीव्र और अवरोह में कोमल निषाद लिया जाता है। इस राग का वैचित्र्य ग म प नि इन चार स्वरों पर निर्भर है। आरोह में पंचम स्वर पर अधिक नहीं ठहरना चाहिये। इसी लिये कोई-कोई गायक ग म ध नि सां, इस प्रकार पंचम छोड़कर भी तानें लेते देखे जाते हैं तथा कोई-कोई ग म प नि सां इस प्रकार स्वर लेते हैं।

४-यमन

शुद्ध सुरन के सङ्ग जब, मध्यम तीवर होय।
गनि वादी संवादि तें, यमन कहत सब कोय॥

राग—यमन	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—कल्याण	आरोह—सारेग, मंप, ध, निसां।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिध, प, मंग, रे सा।
वादी—ग, सम्वादी-नि	पकड़—निरेगरे, सा, पमंग, रे, सा।
स्वर—मं तीव्र, शेष स्वर शुद्ध	गायन समय—रात्रि का प्रथम प्रहर।

यह पूर्वाङ्ग वादी राग है। कभी-कभी इसमें कोमल मध्यम का प्रयोग भी विवादी स्वर के नाते कर दिया जाता है, तब कुछ लोग उसे यमन कल्याण कहते हैं।

५-काफ़ी

कोमल गनी लगाय कर, गावत आधी रात।
पस वादी सम्वादि तें, काफी राग सुहात॥

राग—काफी	वर्जित—कोई नहीं
थाट—काफी	आरोह—सारेग, म, प, धनिसां।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि ध, प, मग, रे, सा।
वादी—प, सम्वादी सा	पकड़—सासा, रेरे, गग, मम, प।
स्वर—ग, नि कोमल, बाकी शुद्ध	गायन समय—मध्य रात्रि

कभी-कभी इसके आरोह में तीव्र गन्धार और तीव्र निषाद लेकर इसमें विचित्रता पैदा की जाती है। इस राग का वैचित्र्य सा ग प नि इन स्वरों पर बहुत कुछ अवलम्बित है।

६–भैरवी

कोमल सब ही सुर भले, मध्यम वादि बखान।
षड्ज जहां सवादि है, ताहि भैरवी जान॥

राग—भैरवी	वर्जित—कोई नहीं
थाट—भैरवी	आरोह—सा, रेगम, पध, निसा।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सा, निधप, मग, रेसा।
वादी—म, सम्वादी-स।	पकड़—म, ग, मारेसा, धनिसा।
स्वर—म शुद्ध, शेष स्वर कोमल	गायन समय—प्रात काल।

कोई-कोई इस राग में ध वादी और ग सम्वादी मानते हैं। यद्यपि इस राग का गायन समय प्रात काल है, किन्तु कुछ सङ्गीतज्ञ इसे सर्वकालिक राग मानकर चाहे जिस समय गाते बजाते हैं। कोई-कोई गायक इसमें रे-मं-नि इन तीव्र स्वरों का प्रयोग विवादी स्वर के नाते करते हैं, किन्तु इस कार्य में सावधानी की आवश्यकता है।

७–भूपाली

मनि वर्जित कर गाइये, मान थाट कल्यान।
ग ध वादी सवादि सों, भूपाली पहचान॥

राग—भूपाली	वर्जित स्वर—म, नि
थाट—कल्याण	आरोह—सा रे ग प, धसा।
जाति—औडव	अवरोह—सा, धप, ग, रे, सा।
वादी—ग, सम्वादी ध	पकड़—ग, रे, साध, सारेग, पग, धपग, रे, सा
स्वर—सब शुद्ध	गायन समय - रात्रि का प्रथम प्रहर

यह बहुत सरल और मधुर राग है। गाते समय इसे शुद्ध कल्याण, जैत कल्याण और देशकार से बचाने में कुशलता की आवश्यकता है, यह केवल ५ स्वरों का अपने ढङ्ग का स्वतन्त्र राग है।

८–सारङ्ग (शुद्ध)

वर्जित कर गन्धार सुर, गावत काफी अग।
दोऊ मनि, सवाद रिप, कहत शुद्ध सारंग॥

राग—शुद्ध सारंग	वर्जित स्वर—ग
थाट—काफी	आरोह—सा रे म प मंपनिसां
जाति—षाडव	अवरोह—सा नि प मं पध पमरे निसा
वादी—रे, सम्वादी—प	पकड—सा, रेमरे, प, मंप, निप, मंप, मरे, सा
—दोनों म दोनों नि	[illegible]

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं—

इस राग का उल्लेख हृदय प्रकाश व हृदय कौतुक ग्रन्थ में पाया जाता है। मध्यमाद सारंग में धैवत वर्जित है, किन्तु शुद्ध सारंग में धैवत लगता है, इस लिये यह राग उससे अलग अपना अस्तित्व रखता है। गौड़ सारंग से भी यह बिल्कुल अलग है क्योंकि गौड़ सारंग कल्याण थाट का है और यह काफी थाट का है। इसी प्रकार नूर सारंग से भी यह बचालिया जाता है क्योंकि नूर सारंग में शुद्ध मध्यम नहीं है।

९—बिहाग

गनि सम्वाद बनायकर, चढ़ते रिध को त्याग।
रात्रि दूसरे प्रहर में, गावत राग विहाग॥

राग—बिहाग	वर्जित स्वर—आरोह में रे, ध
थाट—बिलावल	आरोही—सा ग म प नि सां।
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह—सां नि ध प म ग रे सा।
वादी—ग, सम्वादी नि	पकड़—निसा, गमप, गमग, रेसा।
स्वर—सब शुद्ध स्वर हैं	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इसके आरोह में तो रे – ध वर्जित हैं ही, किन्तु अवरोह में रे – ध अधिक प्रबल नहीं रखने चाहिए वरना बिलावल की छाया दीखने का भय रहता है। विवादी स्वर के नाते कभी-कभी इसमें तीव्र मध्यम का भी प्रयोग देखने में आता है। अवरोह में निषाद से पंचम पर आते समय तथा गन्धार से षड्ज पर आते समय कुशलता से चलना चाहिए।

१०—हमीर

कल्यानहिं के मेल में, दोनों मध्यम जान।
धग वादी संवादि सों, राग हमीर बखान॥

राग—हमीर	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—कल्याण	आरोह—सारेसा, गमध, निध, सां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप, मंपधप, गमरेसा
वादी—ध, सम्वादी—ग	पकड़—सारेसा, गमध
स्वर—दोनों मध्यम, बाकी शुद्ध	समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

इस राग में तीव्र मध्यम का प्रयोग आरोह में थोड़ा सा करना चाहिए, शुद्ध मध्यम आरोह अवरोह दोनों में है। इस राग के अवरोह में कभी-कभी धैवत से पंचम पर आते समय ध नि प इस प्रकार कोमल निषाद का प्रयोग विवादी स्वरके नाते देखने को मिलता है कोई-कोई गुणी इसमें पंचम वादी मानते हैं, किन्तु भातखण्डे जी के मतानुसार इसका वादी स्वर धैवत ही ठीक है।

११—देस

वादी रे, सम्वादि पा, दोउ निषाद लगजायँ ।
देस राग सम्पूर्ण करि, मध्य रात्रि में गायँ ॥

राग—देस	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—खमाज	आरोह—सा, रे, म प, नि सा ।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सा नि॒ ध प, म ग, रे ग सा ।
वादी—रे, सम्वादी-प	पकड—रे,मप, नि॒धप, पधपम, गरेगसा ।
स्वर—दोनों निषाद, शेष स्वर शुद्ध	समय—मध्यरात्रि ।

देस राग का स्वरूप सोरठ से बहुत मिलता-जुलता है, अत देस के बाद सोरठ या सोरठ के बाद देस का गाना कठिन पडता है । इस राग में गधार स्वर स्पष्ट रूप से लिया जाता है किंतु सोरठ में उसे कुछ दबा हुआ रखते हैं । इसके आरोह में ग और ध यह दोनों स्वर दुर्बल हैं, अत कम प्रयोग किये जाते हैं । इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि देस के आरोह में ग-ध वर्जित हैं।

१२—भैरव

धरि वादी सम्वादि करि, रिध कोमल सुर मान ।
प्रात समय नीको लगे, भैरव राग महान ॥

राग—भैरव	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—भैरव	आरोह—सा रे॒ ग म, प ध॒, नि सा ।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सानिध॒, पमग, रे॒सा ।
वादी—ध, सम्वादी-रे	पकड—सा, गम, प, ध॒, प ।
स्वर—रे॒ ध॒ कोमल, बाकी शुद्ध	समय—प्रात काल

यह बहुत प्राचीन और गभीर राग है । कभी-कभी इसके अवरोह में कुशल-गायक कोमल निषाद का प्रयोग भी करते हैं । इस राग में रे॒ ध॒ स्वर अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं इन स्वरों का प्रयोग करते समय इसे कालिंगडा और रामकली से बचाना चाहिये । भैरव के आरोह में रिषभ का अल्पत्व रहता है एव मध्यम से रिषभ पर मींड लेकर आने में इसका माधुर्य बढता है।

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं —

१३—भीमपलासी

जब काफी के मेल में, चढ़ते रिध को त्याग।
गनि कोमल, संवाद मस, भीमपलासी राग॥

राग—भीमपलासी	वर्जित स्वर–आरोह में रे, ध
थाट—काफी	आरोह–निसागम, प, नि सां।
जाति—औडव सम्पूर्ण	अवरोह–सांनिधपम, गरेसा
वादी—म, सम्वादी–सा	पकड़–निसाम, मग, पम, ग मगरेसा
स्वर—ग नि कोमल, बाकी शुद्ध	समय–दिन का तीसरा प्रहर

इस राग के आरोह में रिषभ और धैवत दुर्बल रहते हैं, अर्थात् आरोह में इनका प्रयोग कम रहता है और सा, म, प इन स्वरों का प्राबल्य रहता है। इस राग को गाते समय धनाश्री राग से बचाना चाहिए जो कि काफी थाट का है। किन्तु प ग म ग इन स्वर संगतियों से धनाश्री और भीमपलासी अलग–अलग हो जाते हैं। साथ ही इस राग में म वादी और धनाश्री में प वादी दिखाकर भी इनका मिश्रण बचाया जासकता है।

१४—बागेश्री

गनि कोमल संवाद मस, आरोही रिप काट।
मधुर राग बागेसरी, लखि काफी के थाट॥

राग—बागेश्री	वर्जित स्वर–आरोह में, रे प
थाट—काफी	आरोह–सा म ग म ध नि सां
जाति—औड़व सम्पूर्ण	अवरोह–सां नि ध मग मग रे सा
वादी—म, सम्वादी–सा	पकड़–सा, निधसा, मधनिध, म, गरे, सा
स्वर—ग नि कोमल, बाकी शुद्ध	समय– मध्यरात्रि

मध्यम, धैवत और निषाद स्वरों की संगत इस राग की शोभा बढ़ाती है। बागेश्री के आरोह मे रिषभ स्वर का प्रयोग बहुत कम होता है या बिल्कुल छोड़ दिया जाता है। इस राग में पंचम स्वर के प्रयोग पर मतभेद पाया जाता है। कोई–कोई गुणीजन पंचम को बिल्कुल वर्जित रखते हैं और कोई–कोई पंचम को अवरोह में लेना स्वीकार करते हैं, एवं कोई–कोई पंचम स्वर को आरोह–अवरोह दोनों में लेते हैं। इसीलिये इस राग की जाति में

१५—तिलककामोद

पाडव संपूरन कह्यो, आरोही धा नाहिं ।
रिप वादी सवादि तें, तिलककमोद बताहिं ॥

राग—तिलककामोद	वर्जित स्वर—आरोह मे धैवत
थाट—खमाज	आरोह—सा रे गसा, रेमपधमप, मा
जाति—पाडव-सम्पूर्ण	अवरोह—मापधमग, मारेग, सानि
वादी—रे, सम्वादी-प	पकड़—पनिसारेग, मा, रेपमग, मानि
स्वर—सब शुद्ध	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इस राग का स्वरूप कई जगह देस और सोरठ मे मिलता है, किन्तु इधर इस राग में कोमल निषाद बिलकुल वर्जित रखने के कारण यह राग देस और सोरठ से बच जाता है। इस राग की चाल वक्र होने से ही इसकी विचित्रता बढ जाती है। महाराष्ट्र मे तिलककामोद गाते समय दोनों निषाद लेने का रिवाज है।

१६—आसावरी

गधनी कोमल सुर लगें, चढत गनी न सुहात ।
धग वादी सवादि तें, आसावरी कहात ॥

राग—आसावरी	वर्जित स्वर—आरोह मे ग, नि
थाट—आसावरी	आरोह—सा, रेमप, ध सा ।
जाति—औड़व सम्पूर्ण	अवरोह—सा निध, प, मग, रेसा
वादी—ध सम्वादी—ग	पकड़—रे, म, प, निध प
स्वर—ग ध नि कोमल	समय—प्रात काल

उत्तर भारत मे आसावरी राग में कोमल ऋषभ लगाकर गाने का प्रचार है, किन्तु दक्षिणी ख्याल गायक इसे तीव्र रिषभ से ही गाते हैं। इस राग का वैचित्र्य ग, प, ध इन तीन स्वरों पर निर्भर है। अवरोह मे यह राग विशेष रूप से खिलता है।

१७—केदार

दो मध्यम केदार मे, सम सम्वाद सम्हार ।
आरोहन रिग वर्जि कर, उतरत अल्प गंधार ॥

राग—केदार	वर्जित स्वर—आरोह मे रे, ग
थाट—कल्याण	आरोह—साम, मप, धप, निध, सा ।
जाति—औड़व सम्पूर्ण	अवरोह—सा, निध, प, मं प गमरेसा ।
वादी—मा, सम्वादी स	पकड़—सा, म, मप, धपम, पम, रेसा ।
—दोनों मध्यम	समय—रात्रि का प्रथम प्रहर

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं·

हमीर के समान इस राग में भी दोनों मध्यम लगाये जाते है, किन्तु यह इस राग की विशेषता है कि कभी-कभी इसके अवरोह में दोनों मध्यम एक के बाद दूसरा इस क्रम से आजाते हैं। केदार का आरोह करते समय षडज से एकदम मध्यम पर जाना बड़ा सुन्दर मालुम होता है। इसके अवरोह में कभी-कभी धैवत के साथ कोमल निषाद का अल्प प्रयोग करते हैं। इस प्रकार निषाद का प्रयोग विवादी स्वर के नाते होता है। इसके अवरोह में गन्धार स्वर वक्र और दुर्बल रहता है। अतः इस स्वर का प्रयोग सावधानी से करना चाहिए अन्यथा कामोदादि राग दिखाई देने लगते हैं।

१८—देशकार

जबहिं बिलावल मेल सों, मनि सुर दिये निकार।
धग वादी संवादि तें, औडुव देशीकार ॥

राग—देशकार	वर्जित स्वर—म, नि
थाट—बिलावल	आरोह— सा रे ग प ध सां,
जाति—औडुव	अवरोह—सां ध प गपधप ग रे सा।
वादी—ध, सम्वादी—ग	पकड़—सा ध, प, गप, धप, गरेसा
स्वर—शुद्ध	समय—दिन का प्रथम प्रहर

इस राग को गाते समय विभिन्न स्थानों पर धैवत दिखाने में सावधानी रखनी चाहिए अन्यथा भूपाली की छाया आ सकती है। ध्यान रहे कि भूपाली राग पूर्वाङ्ग प्रबल है और देशकार उत्तरांग प्रबल है।

१९—तिलंग

रिध वर्जित, दोउ नी लगें, लखि खंमाजहि अङ्ग।
गनि वादी संवादि कर, गावत राग तिलङ्ग ॥

राग—तिलंग	वर्जित स्वर—रे, ध
थाट—खमाज	आरोह—सा ग म प निसां
जाति—औडुव	अवरोह—सां, नि॒, प, मग, सा
वादी—ग, सम्वादी—नि	पकड़—नि॒सागमप, निसां, सांनि॒प, गमग सा
स्वर—दोनों निषाद	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इस राग में निषाद और पंचम की सङ्गत भली मालुम होती है। धैवत वर्जित होने से खमाज से यह राग अलग होजाता है। इसके अवरोह में कोई-कोई गायक थोड़ा सा रिषभ स्वर विवादी के नाते प्रयोग करते हैं।

२०—हिण्डोल

रिप सुर वर्जित मानकर, मध्यम तीवर बोल।
ध ग वादी संवादि तें, औडुव राग हिंडोल॥

राग—हिण्डोल	वर्जित स्वर—रे, प।
थाट—कल्याण	आरोह—साग, मंधनिध, सा।
जाति—औडुव-औडुव	अवरोह—सा, निध, मंग, सा।
वादी—ध, सम्वादी—ग	पकड़—सा, ग, मंधनिधमंग, सा।
स्वर—मं तीव्र, शेष स्वर शुद्ध	समय—दिन का प्रथम प्रहर।

इस राग के आरोह में नि का प्रयोग कम किया जाता है और वह भी वक्र स्वर के रूप में। यदि हिंडोल मे निषाद का प्रयोग अधिक हो जाय तो सोहनी की छाया पड सकती है। इस राग मे कोई-कोई गायक रिषभ और शुद्ध मध्यम का किंचित प्रयोग करते हैं। उत्तम गायक इसमें गमकों का बहुत सुन्दर प्रयोग करते हैं।

२१—मारवा

रिध वादी सवादि कर, पचम वर्जित कीन्ह।
रे कोमल मध्यम कडी, राग मारवा चीन्ह॥

राग—मारवा	वर्जित स्वर—प
थाट—मारवा	आरोह—सारे॒, ग, मंध, निध, सा।
जाति—षाडव षाडव	अवरोह—सानिध, मंगरे॒सा।
वादी—रे, सम्वादी—ध	पकड़—धमंगरे॒, गमंग, रे॒, सा।
स्वर—रे॒ कोमल, मं तीव्र।	समय—दिन का अन्तिम प्रहर।

इस राग के आरोह मे निषाद कई स्थानों पर वक्र गति से प्रयोग होता है। रे॒ ग ध इन स्वरों पर इस राग की विचित्रता निर्भर है। अवरोह मे जब रिषभ वक्र होता है तब यह राग अधिक चमकता है। इसमें मींड का काम अधिक अच्छा नहीं लगता।

२२—सोहनी

तीवर मा, कोमल रिषभ, पचम वर्जित मान।
ध ग वादी सवादि तें, कियो सोहनी गान॥

- इस प्रकार प्रगट किये हैं —

राग—सोहनी	वर्जित स्वर—प
थाट—मारवा	आरोह—साग, मंधनिसां।
जाति—षाडव षाडव	अवरोह—सांरेंसां, निध, मंध, मंग, रेसा।
वादी—ध, सम्वादी ग	पकड़—सां, निध, निध, ग, मंधनिसां।
स्वर—रे कोमल, म तीव्र	समय—रात्रि का अन्तिम प्रहर।

इस राग में कुशल गायक विविध स्थानों पर कोमल मध्यम का प्रयोग बड़ी कुशलता से करते हैं। इसमें तार षड्ज चमकता रहता है और इससे राग की रंजकता बढ़ती है। इसके आरोह में रे स्वर वर्जित तो नहीं है, किन्तु वह दुर्बल रहता है।

२३—जौनपुरी

कोमल गधनी सुर कहे, आरोही गा हानि।
वादी धा, सम्वादि गा, जौनपुरी पहचानि॥

राग—जौनपुरी	वर्जित स्वर—आरोह में ग।
थाट—आसावरी	आरोह—सा, रेम, प, ध, निसां।
जाति—षाडव सम्पूर्ण	अवरोह—सां, निध, प, मग, रेसा।
वादी—ध, सम्वादी—ग	पकड़—मप, निधप, ध, मपग, रेमप।
स्वर—ग ध नि कोमल	समय—दिन का दूसरा प्रहर।

इस राग का स्वरूप आसावरी से मिलता-जुलता है, किन्तु आसावरी के आरोह में निषाद वर्जित है और इस राग के आरोह में निषाद लेते हैं, इस प्रयोग से यह आसावरी से बच जाता है। प्रचार में आजकल जौनपुरी में दोनों निषादों का प्रयोग मिलता है।

२४—मालकौंस

रिप वर्जित, औडुव मधुर, सब कोमल सुर मान।
मस वादी संवादि सों, मालकौंस पहिचान॥

राग—मालकौंस	वर्जित स्वर—रे, प।
थाट—भैरवी	आरोह—निसा, गम, ध, निसां।
जाति—औडुव	अवरोह—सांनिध, म, गमगसा।
वादी—म, सम्वादी—सा	पकड़—मग, मधनिध, म, ग, सा।
स्वर—ग ध नि कोमल	समय—रात्रि का तीसरा प्रहर।

इस राग में ध्रुपद व ख्याल की गायकी अधिक दिखाई देती है, क्योंकि यह गम्भीर

२५—छायानट

जबहिं थाट कल्यान में, दोनों मध्यम पेखि।
परि वादी संवादि सों, छायानट को देखि॥

राग—छायानट	वर्जित स्वर—कोई नहीं।
थाट—कल्याण	आरोह—सा रे ग म प नि ध सा।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सा नि ध प मंप धप गम रेसा।
वादी—प, सम्वादी-रे	पकड़—प, रे, गमप, मग, मरेसा।
स्वर—दोनों मध्यम	समय—रात्रि का प्रथम प्रहर।

छायानट में दोनों मध्यम लिये जा सकते हैं, किन्तु तीव्र मध्यम जब लिया जावे, तो केवल मंपधप करके ही लेना चाहिए। शुद्ध मध्यम आरोह अवरोह दोनों में लिया जाता है। पंचम और रिषभ की सगत इसमें भली मालुम होती है। ग नि इन दोनों स्वरों को क्रम से अवरोह और आरोह में वक्र किया जाता है। अवरोह में कभी-कभी कोमल निषाद भी विवादी स्वर के नाते लिया जाता है।

२६—कामोद

कल्याणहिं के मेल में, दोनों मध्यम लाय।
परि वादी सम्वादि कर, तब कामोद सुहाय॥

राग—कामोद	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—कल्याण	आरोह—सारे पमं पध पनिध सा
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सानिध प मंपधप,गमरेसा
वादी—प, सम्वादी रे	पकड़—रे, प, मंप, धप, गमप, गमरेसा
स्वर—दोनों मध्यम	समय—रात्रि प्रथम प्रहर

इस राग में गधार और निषाद स्वर वक्रगति से लगते हैं। तथा यह दोनों स्वर इसमें दुर्बल रहने चाहिये। निषाद तो बहुत ही कम लगता है। कभी-कभी अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग विवादी स्वर के रूप में किया जाता है। आरोही में तीव्र मध्यम का बहुत कमी के साथ प्रयोग किया जाता है। रिषभ से पंचम पर जाने से कामोद स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

२७—बसन्त

रिध कोमल, संवाद सम, मध्यम के दोउ रूप।
आरोही पंचम वरजि राग बसन्त अनूप॥

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं—

राग—बसन्त	वर्जित—पंचम (आरोह में)
थाट—पूर्वी	आरोह—सा ग मं ध रें सां।
जाति—षाड़व सम्पूर्ण	अवरोह—रें नि ध प मंगमध मंगरेसा।
वादी—सा, सम्वादी म	पकड़—मंध. रें, सां, रें, निधप, मंगमंग।
स्वर—दोनों मध्यम, कोमल रे ध	समय—रात्रि का अन्तिम प्रहर।

इस राग के २ प्रकार प्रसिद्ध हैं। एक में तो दोनों मध्यम लेते हैं तथा पंचम वर्जित करते हैं। दूसरी प्रकार में पंचम वर्जित न करके इसे सम्पूर्ण जाति का मानते हैं। इस दूसरी प्रकार में वादी स्वर तार षड़ज और सम्वादी पंचम मानते हैं। किन्तु पहले प्रकार में पंचम वर्जित होने के कारण वादी सम्वादी स-म मानते हैं।

इस राग में दोनों मध्यम लिये जाते हैं। उत्तराङ्ग प्रधान होने के कारण इसमें तार षड़ज पर विशेष जोर रहता है।

२८—शंकरा

आरोही रेमा बरजि, अवरोही मा त्याग।
गनि वादी संवादि सों, कहत शंकरा राग॥

राग—शंकरा	वर्जित स्वर—आरोह में रेम, अवरोह में म
थाट—बिलावल	आरोह—साग, प, निध, सां।
जाति—औड़व षाड़व	अवरोह—सांनिप, निध, गप, गरेसा।
वादी—ग, सम्वादी नि	पकड़—सां, निप, निध, सां, निप, गप, गसा
स्वर—सब शुद्ध	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

कोई-कोई सङ्गीतज्ञ इसका वादी स्वर षडज और सम्वादी पंचम मानकर समय मध्यरात्रि मानते हैं। शंकरा के २ प्रकार देखने में आते हैं। एक प्रकार में रे-म वर्जित करके इसकी जाति औडुव मानते हैं और दूसरे प्रकार में केवल मध्यम वर्जित करके इसे षाड्व जाति का राग मानते हैं। दोनों प्रकार सुन्दर हैं। इसके आरोह में रिषभ अल्प रहता है। कुशल सङ्गीतज्ञ इस राग में तिरोभाव करते समय रे-ध का अधिक प्रयोग दिखाकर, कल्याण राग का आभास दिखाते हैं, किन्तु पनिध, सांनि, यह स्वर संगति और मध्यम का लोप इस राग को पहिचानने में सहायता देता है। शंकरा का स्वरूप विहाग से कुछ मिलता है, किन्तु विहाग में मध्यम स्वर स्पष्ट होने के कारण यह उससे अलग हो जाता है।

२९—दुर्गा (खमाज थाट)

जबहिं मेल खंमाज में, रिप सुर वर्जित कीन्ह।
दोउ निषाद संवाद गनि, औडुव दुर्गा चीन्ह॥

राग—दुर्गा	वर्जित स्वर—रे, प
थाट—खमाज	आरोह—सा ग म ध नि सा
जाति—औड़ुव	अवरोह—सा नि ध म ग सा।
वादी—ग, सवादी-नि	पकड़—गमा निध निसा मग मध निध मग मा।
स्वर—दोनों निषाद	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

दुर्गा राग के २ प्रकार हैं, उपरोक्त प्रकार खमाज थाट का है, इसमें रे प वर्जित करके औड़ुव जाति का मानते हैं। दूसरा प्रकार बिलावल थाट का दुर्गा है, उसे भी हम नीचे दे रहे हैं। खमाज थाट के दुर्गा में धम की स्वर सगति रक्ति वर्धक होती है। कभी-कभी इसके आरोह में तीव्र निषाद का प्रयोग भी करते हैं।

३०—दुर्गा (बिलावल थाट)

मस वादी सवादि लखि, गनि सुर वर्जित मान।
तबहिं बिलावल मेल की, दुर्गा ले पहचान॥

राग—दुर्गा	वर्जित स्वर—ग, नि
थाट—बिलावल	आरोह—सा रे म प ध सा
जाति—औड़ुव	अवरोह—सा ध प म रे सा।
वादी—म, सम्वादी स	पकड़—प, मप, धमरे, प, साध, सारेंपध, मरेसा
स्वर—सब शुद्ध	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इस दुर्गा मे गन्धार के न होने से सोरठ का रूप झलकने लगता है, किन्तु सोरठ की आरोही मे रेध नहीं होते और इस राग मे रेध मौजूद हैं, इसलिये यह उससे बच जाता है। इस राग में मध्यम स्पष्ट लगने से राग खिलता है।

३१—शुद्ध कल्याण

कल्यानहि के मेल मे, चढ़ते मनी हटाइ।
वही शुद्ध कल्यान है, गध सवाद सुहाइ॥

राग—शुद्धकल्याण	वर्जित स्वर—आरोह में म, नि
थाट—कल्याण	आरोह—सा रे ग प ध सा
जाति—औड़ुव सम्पूर्ण	अवरोह—सा नि ध प मं ग रे सा
वादी—ग, सम्वादी-ध	पकड़—ग, रेसा, निधप मा, गरेपरे सा
—र्ण (अवरोह मे)	

...चार इस प्रकार प्रगट किये हैं —

इस राग की साधारण प्रकृति भूपाली के समान है। मनि यह दोनों स्वर यद्यपि आरोह में ही वर्जित हैं, किन्तु अवरोह में भी इन स्वरों को वर्जित करके बहुत से लोग इस राग को गाते हैं। अवरोह में यद्यपि तीव्र मध्यम भी लिया जासकता है, किन्तु इस स्वर को पंचम से गान्धार तक की मींड़ लेकर दिखाते हैं। जलद तानों में तीव्र मध्यम छोड़ दिया जाता है केवल निषाद अवरोह में कोई-कोई लेलेते हैं, इस कृत्य से भूपाली की भिन्नता दिखाई देजाती है। प-रे का मिलाप रक्ति वर्धक होता है। इस राग में धैवत स्वर को भूपाली की अपेक्षा कम प्रयोग में लाना उचित है।

३२—गौड़सारङ्ग

दोऊ मध्यम लगि रहे, कल्यानहिं के अंग।
गध वादी संवादि तें, बनत गौड़सारङ्ग॥

राग—गौड़ सारङ्ग	वर्जित—कोई नहीं
थाट—कल्याण	आरोह—सा, गरेमग, पमंधप, निधसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांधनिप, धमंपग, मरे, प, रेसा
वादी—ग, सम्वादी ध	पकड़—सा, गरेमग, परेसा।
स्वर—दोनों मध्यम	समय—दिन का दूसरा प्रहर

इस राग में दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है। यद्यपि इसमें गन्धार निषाद वक्र हैं किन्तु राग का मुख्य अङ्ग "गरे मग" इस स्वर समुदाय पर आधारित है, इसलिये कई स्थानों पर ग-नि का वक्रत्व छिप जाता है। तीव्र मध्यम केवल आरोह में ही लिया जा सकता है। अवरोह में किंचित कोमल निषाद कुशलता पूर्वक ले सकते हैं।

३३—जैजैवन्ती

तीवर कोमल रूप दोउ, मनि के दिये लगाय।
रिप वादी संवादि सों, जैजैवन्ति कहाय॥

राग—जैजैवन्ती	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—खमाज	आरोह—सारे गमप, निसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप, धम, रेगरेसा
वादी—रे, सम्वादी—प	पकड़—रेगरेसा, निधप, रे
स्वर—दोनों ग दोनों नि	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इसके आरोह में तीव्र ग नि और अवरोह में कोमल ग नि लेते हैं, लेकिन कभी-कभी अवरोह में भी तीव्र गन्धार लिया जा सकता है। कोमल ग केवल अवरोह में ही

ले सकते हैं और यह स्वर दोनों ओर से रे ग रे इस प्रकार रिषभों द्वारा घिरा रहता है। यह राग सोरठ के अङ्ग का है। मन्द्र पंचम और मध्य रिषभ का मिलाप इसमें बहुत अच्छा मालुम होता है।

३४—पूर्वी

रि ध कोमल कर गाइए, दोनों मध्यम मान।
गनि वादी संवादि सों, राग पूर्वी जान॥

राग—पूर्वी	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—पूर्वी	आरोह—सा, रेग, मंप, ध, निसा।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सा नि धप, मं, ग, रे सा।
वादी—ग, सम्वादी-नि	पकड़—नि, सारेग, मग, मं, ग, रेगरेसा
स्वर—रे ध कोमल, दोनों मध्यम	समय—दिन का अन्तिम प्रहर

स, ग, प, इन तीन स्वरों पर इस राग की विचित्रता निर्भर है। उत्तर भारत में कोई-कोई सङ्गीतज्ञ इसमें तीव्र धैवत भी लेते हैं, तो कोई-कोई दोनों धैवतों का उपयोग करते हैं। इस राग के अवरोह में कोमल म का प्रयोग गन्धार के साथ बहुत सुन्दर प्रतीत होता है।

३५—पूर्याधनाश्री

मध्यम तीव्र लगाय कर, रिध कोमल सुर मान।
राग पूरियाधनाश्री, परि सवाद बखान॥

राग—पूर्याधनाश्री	वर्जित स्वर—कोई नहीं
थाट—पूर्वी	आरोह—निरेगमंप, धप, निसा।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—रेंनिधप, मंग, मंरेग, रेसा।
वादी—प, सम्वादी—रे	पकड—निरेग, मंप, धप, मंग, मंरेग, धमंग, रेसा।
स्वर—रे ध कोमल, मं तीव्र	समय—सायंकाल।

यह राग पूर्वी से मिलता जुलता है, किन्तु पूर्वी में दोनों मध्यम हैं और इसमें तीव्र मध्यम ही है, इस भेद से यह पूर्वी से बचा लिया जाता है। इस राग में मं रेग तथा रेंनिधप यह स्वर समुदाय राग दर्शक है।

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं—

३६–परज

दोनों मध्यम लीजिये, रिध कोमल सुखदाइ ।
सप वादी संवादि लखि, गुनिजन परज सुहाइ ॥

राग--परज	वर्जित स्वर--कोई नहीं ।
थाट--पूर्वी	आरोह--नि़साग, मंपध़निसां ।
जाति--सम्पूर्ण	अवरोह--सां, निध़प, मंप, मगरे़सा ।
वादी--सां, सम्वादी–प	पकड़--सां, निध़प, मंपधप, गमग ।
स्वर--रे़ ध़ कोमल, दोनों म	समय--रात्रि का अन्तिम प्रहर ।

यह राग उत्तरांग प्रधान है, अतः इसमें तार षड़ज की चमक बहुत सुन्दर मालुम देती है। इस राग की गति कुछ चंचल है, इसीलिये बसन्त राग से यह अलग पहचान लिया जाता है। जब इस राग की कुछ तानें निषाद पर समाप्त की जाती हैं, तो यह और भी स्पष्ट हो जाता है। सांरें़सांरें़, निध़नि यह स्वर इसमें बारम्बार दिखाई देते हैं। ध़पगमग, मंध़निसां यह स्वर समुदाय रागदर्शक है।

३७–पूरिया

थाट मारवा में जबहिं, दीनो पंचम त्याग ।
गनि वादी संवादि सों, कह्यो पूरिया राग ॥

राग—पूरिया	वर्जित स्वर– प
थाट—मारवा	आरोह–नि़रे़सा ग मंध निरें़सां
जाति—षाडव	अवरोह–सां नि ध मं ग रे़ सा
वादी—ग, सम्वादी–नि	पकड़–ग, नि़रे़सा, नि़ध़नि़ मं़ध़, रे़सा
स्वर—रे़ कोमल, मं तीव्र	समय–संधिप्रकाश काल (सायंकाल)

इस राग का मुख्य चलन मन्द्र और मध्य स्थानों में रहता है। यह संधिप्रकाश राग है। निषाद और मध्यम की संगति इसकी शोभा बढ़ाती है। मन्द्र सप्तक में सा, नि़ध़नि़मं़ग़ यह स्वर राग का स्वरूप स्पष्ट करते हैं।

३८–सिंदूरा

गनि आरोहन त्याग कर, कोमल गनी बखान ।
सप संवाद बनाय कर, सुघर सिंदूरा जान ॥

राग—सिंदूरा	वर्जित स्वर-आरोह में ग नि
थाट—काफी	आरोह-मा, रेमप, ध सा।
जाति—औडुव-सम्पूर्ण	अवरोह-सा, निधपमग रेमग रेसा
वादी—म, सम्वादी प	पकड़-सा, रेमप, ध, सा, निधपमग रेसा
स्वर—नि ग कोमल	समय-सायकाल

इस राग को सैंधवी भी कहते हैं। कोई-कोई गुणीजन निषाद के वर्जन पर मतभेद रखते हैं, अत आरोह मे कभी-कभी कोमल नि लेलिया जाता है। राग विबोध में इसे "सिंधोडा" ऐसा नाम दिया है।

३९—कालिंगड़ा

रिध कोमल कर गाइये, भैरव थाट प्रमान।
सप सम्वादी वादि सों, कालिंगडा पहचान॥

राग-कालिंगड़ा	वर्जित स्वर-कोई नहीं
थाट-भैरव	आरोह-सारेगम, पधनिसा
जाति-सम्पूर्ण	अवरोह-सानिधप, मगरेसा
वादी-प, सम्वादी सा	पकड़-धप, गमग, नि सारेग, म,
स्वर-रे ध कोमल	समय-रात्रि का अन्तिम प्रहर

कालिङ्गडा गाते समय रे ध स्वरों पर आन्दोलन अधिक देने से भैरव की झलक आने लगती है। इसीलिये इसमें पचम वादी और षडज सम्वादी मानते हैं, क्योंकि धैवत वादी होगा तो उस पर आन्दोलन भी अधिक होंगे। परज राग से भी इसकी प्रकृति बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

४०—बहार

चढत रि उतरत धा बरजि, कोमल कर गन्धार।
दोउ निषाद, सवाद मस, षाडव राग बहार॥

राग-बहार	वर्जित स्वर-आरोह मे रे, अवरोह मे ध
थाट-काफी	आरोह-सा, गम, पगम, नि धनि सा।
जाति-षाडव-षाडव	अवरोह-सा, निपमप, गम, रेसा।
वादी-म, सम्वादी सा	पकड-मपगम, ध, निसा
स्वर-ग कोमल, निषाद दोनों	समय-मध्यरात्रि

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं—

इसका गायन समय शास्त्रों में यद्यपि मध्य रात्रि का दिया गया है, किन्तु बसंत ऋतु में यह राग चाहे जिस समय गाया-बजाया जा सकता है, ऐसा सङ्गीतज्ञों का मत है। ख्याल गायकी में कहीं-कहीं दोनों धैवत और दोनों गन्धारों का प्रयोग भी इस राग में पाया जाता है। इस राग में म ध की सङ्गति भली मालुम देती है। निनिपम, पग, म, ध, निसां, यह स्वर समुदाय बहार में बार-बार दिखाई देता है।

४१-अड़ाना

कोमल गध, दोउ नी लगें, सप सम्वाद बताहि।
चढ़त ग, उतरत धा बरजि, राग अडाणा माँहि॥

राग-अड़ाना	वर्जित स्वर-आरोह में ग, अवरोह में ध
थाट-आसावरी	आरोह-सारेमप, धनिसां।
जाति-षाडव	अवरोह-सांधनिपमप, गम, रेसा
वादी-सां, सम्वादी प	पकड़-सां, ध, निसां, ध, निपमप, गमरेसा
स्वर-ग ध कोमल तथा दोनों निषाद	समय-रात्रि का तीसरा प्रहर

कोई-कोई ग्रन्थकार इस राग में तीव्र धैवत लगाते हैं और इसे काफी थाट का राग मानते हैं। इस राग का आरोह करते समय गान्धार छोड़ देते हैं। किन्तु आरोह में गन्धार "निसागम" इस प्रकार प्रायः लिया जाता है। अवरोह में "ग म रे सा" इस प्रकार वक्र गंधार है। मध्य और तार सप्तक में इसका विस्तार अधिक है।

४२-धानी

वादी गा, संवादि नी, गनि सुर कोमल जान।
रिध वर्जित कर गाइये, औडुव धानी मान॥

राग--धानी	वर्जित--रे, ध
थाट--काफी	आरोह--सा, गमप, निसां।
जाति--औडुव	अवरोह--सां, निप, मग, सा।
वादी--ग, सम्वादी नि	पकड़--निसाग, मप, निसां, सांनिप मग, सा।
स्वर--ग नि कोमल	समय--सर्वकालिक

कोई-कोई गायक धानी के अवरोह में थोड़ा सा रिषभ लेते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में भी धानी का उल्लेख मिलता है। सङ्गीत पारिजात में रे वर्जित तथा रेध वर्जित इस प्रकार धानी के २ रूप दिये हैं।

४३—मांड़

सप वादी सम्वादि रुर, नी स्वर कंपित होइ।
शुद्ध और सम्पूर्ण है, मांड राग कह सोइ॥

राग—मांड	वर्जित—कोई नहीं
थाट—विलावल	आरोह—सगरेमग पमधप निधसा।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—साधनिप धमपग मसा।
वादी—सा, सम्वादी प	पकड—सा, रेग, सा, रे, ममप, ध, पधसा।
स्वर—शुद्ध	समय—सर्वकालिक

यह राग मालवा (राजस्थान) प्रान्त से उत्पन्न हुआ है, इसका स्वरूप वक्र है। इस राग मे स, म, प यह स्वर अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, निपाद पर कम्पन इस राग की विशेपता है। आरोह में रे – ध स्वर दुर्वल हैं, अवरोह में वक्र हैं। जैसे सग, रेम, गप इत्यादि।

४४—गौड़ मल्हार

गनि के दोनों रूप लखि, चढते अल्प सम्हार।
मस वादी सवादि तें, कहत गौडमल्लार॥

राग—गौडमल्हार	वर्जित—कोई नहीं
थाट—काफी	आरोह—सा, रेमप, धसा।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सा निपमपगुमरेसा।
वादी—म, सम्वादी सा	पकड—रेगरेमगरेसा, पमप धसा धपम।
स्वर—दोनों गनि	समय—दोपहर दिन, वर्षाऋतु में प्रत्येक समय

इस राग के वारे में २ मत हैं। एक मत इस राग को काफी थाट का मानता है तो दूसरा मत इसे खमाज थाट का वताता है। यह मतभेद लेकर गन्धार स्वर के वारे में दोनों मत अपने विचार भिन्न रखते हैं। ख्याल गायक तीव्र गन्धार लेते हैं और ध्रुपद के गायक कोमल गु लगाते हैं, एव कभी-कभी दोनों गन्धारों का प्रयोग भी इस राग मे दिखाई देता है। यह मौसमी राग है, अत इसके गीतों में प्राय वर्षाऋतु का वर्णन मिलता है।

४५—झिंझोटी

गा वादी, संवादि नी कोमल लियो निपाद।
राग झिंझोटी गाइये, प्रथम रात्रि के वाद॥

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं—

राग—झिंझोटी	वर्जित—कोई नहीं
थाट—खमाज	आरोह—सारेगम पधनिसां।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप मगरेसा।
वादी—ग, सम्वादी नि	पकड़—धसा, रेम, ग, पमगरे सानिधप
स्वर—नि कोमल	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

यह खमाज थाट का आश्रय राग है। इस राग का विस्तार मन्द्र व मध्य सप्तक में विशेष रूप से रहता है। "धस, रे मग," यह स्वर समुदाय राग वाचक है।

४६—श्रीराग

आरोही ग ध बरज कर, रिध कोमल, मा तीख।
रिप वादी संवादि तें, श्रीराग को सीख॥

राग—श्री	वर्जित—आरोह में ग, ध
थाट—पूर्वी	आरोह—सा, रे, मंप, निसां।
जाति—औडुव सम्पूर्ण	अवरोह—सां, निध, पमंगरे, सा।
वादी—रे, सम्वादी प	पकड़—सा,रेरे, सा, प, मंगरे, गरे, रे, सा।
स्वर—रे, ध कोमल, मं तीव्र	समय—सायंकाल (सूर्यास्त)

यह बहुत गंभीर और लोकप्रिय राग है। रे – प की सङ्गति जब इस राग में करते हैं, तब यह बहुत मधुर मालुम होता है। "सा ग रे रे सा" यह स्वर समुदाय इसमें प्रिय मालुम देता है।

४७—ललित

दो मध्यम, कोमल रिषभ, पंचम वर्जित जान।
मस वादी संवादि सों, ललितराग पहिचान॥

राग—ललित	वर्जित—प
थाट—मारवा	आरोह—निरेगम मंमग मंधसां
जाति—षाड़व	अवरोह—रें निध मंध मंमग रे सा
वादी—म, सम्वादी सा	पकड़—निरेगम धमंधमंम ग
स्वर—कोमल रे, दोनों म	समय—रात्रि का अन्तिम प्रहर

इस राग में धर्म धर्म यह स्वर प्रयोग तथा निरेगमर्ममग, यह स्वर समुदाय राग की विशेषता को व्यक्त करते हैं। कुछ ग्रथों में इस राग मे कोमल धैवत लिया है, किन्तु इधर तीव्र धैवत ही लिया जाता है।

४८—मियांमल्लार

गा कोमल, सम्वाद मम, उतरत धैवत टार।
दोउ निषाद के रूप ले, कहि मीयां मल्लार॥

राग—मियामल्लार	वर्जित—अवरोह में-ध।
थाट—काफी	आरोह—रेमरेसा, मरे, प, निध, निसा।
जाति—सम्पूर्ण, षाडव।	अवरोह—सानिप, मप, गम, रेसा।
वादी—म, सम्वादी-सा	पकड—रेमरेमा, निपमप, निधनिसाप, गमरेसा।
स्वर—दोनों निषाद, ग कोमल	समय—मध्य रात्रि।

कानड़ा और मल्लार के सयोग से यह राग बना है। इस राग में दोनों निषाद लगते हैं और कभी-कभी कुशल गायक एक के बाद दूसरा निषाद बराबर लेकर भी राग हानि से इसे बचा लेते हैं। इस राग का आलाप विलम्वित लय में करके जब उसका विस्तार मन्द्र स्थान में होता है, तब बड़ा सुन्दर और कर्णप्रिय लगता है। कहते हैं कि यह राग मिया तानसेन के द्वारा आविष्कृत हुआ है। वादी सम्वादी के बारे में कुछ लोगों का मत वादी मा, सम्वादी प के पक्ष में है, किन्तु भातखण्डे के अनुयायी अधिकतर म वादी तथा सा सम्वादी ही मानते हैं।

४९—दरवारी कान्हड़ा

गधनी कोमल जानिये, उतरत धैवत नाहिं।
सुन दरवारीकान्हरा, रिप सम्वाद बताहिं॥

राग—दरवारी कान्हडा	वर्जित स्वर—अवरोह में ध
थाट—आसावरी	आरोह—निसारेगरेसा मप धनिसा।
जाति—सम्पूर्ण षाडव	अवरोह—सा धनिप मप ग, मरेसा।
वादी—रे, सम्वादी-प	पकड—ग, रेरे, सा, ध, निसा रे, सा।
स्वर—ग ध नि कोमल	समय—मध्यरात्रि।

इस राग में गाधार दुर्बल है, अत गुणी लोग जलद और सीधी तानों में इस स्वर को बिलकुल ही छोड़ देते हैं। गन्धार पर आन्दोलन इस राग की विचित्रता बढाता है। निप की सगत इसमें बडी प्यारी लगती है। कहते हैं कि मिया तानसेन ने यह राग तैयार करके दरवार में अकबर बादशाह को सुनाकर प्रसन्न किया था।

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं—

५०—तोड़ी

रिगधा कोमल, तीव्र मा, धग संवाद बखान ।
सम्पूरन तोड़ी कही, द्वितिय प्रहर दिन मान ॥

राग—तोड़ी	वर्जित स्वर—कोई नहीं ।
थाट—तोड़ी	आरोह—सा, रेग, मंपध, निसां ।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप, मंग, रे, सा ।
वादी—ध, सम्वादी ग	पकड़—धनिसा, रे, ग, रे, सा, मं ग, रेग, रेसा ।
स्वर—रे ग ध कोमल, मं तीव्र	समय—दिन का दूसरा प्रहर ।

इस राग में पंचम स्वर का प्रयोग कुछ कमी के साथ करना चाहिए । नये विद्यार्थियों को यह राग गाते समय, विकृत स्वरों का उचित स्थानों पर उपयोग करने में कठिनाई पड़ती है । इस राग की विचित्रता रे, ग तथा ध इन तीन स्वरों पर निर्भर है । तोड़ी कई प्रकार की प्रचलित है, किन्तु राग तोड़ी के लिये तोड़ी शुद्ध तोड़ी, दरबारी तोड़ी अथवा मियां की तोड़ी यह नाम लिये जाते हैं । इनके अतिरिक्त विलासखानी तोड़ी, गुर्जरी तोड़ी, देसी तोड़ी, आसावरी तोड़ी, गान्धारी तोड़ी, जौनपुरी तोड़ी, बहादुरी तोड़ी, लाचारी तोड़ी इत्यादि जितने नाम हैं, वे इस राग से भिन्नता रखते है अर्थात् वे राग बिलकुल अलग-अलग हैं ।

५१—मुलतानी

कोमल रिगधा, तीव्र मा, पस सम्वाद सजाइ ।
चढ़ते रिध को त्याग कर, मुलतानी समझाइ ॥

राग—मुलतानी	वर्जित स्वर—आरोह में रे ध ।
थाट—तोड़ी	आरोह—निसा गमंप निसां ।
जाति—औड़व सम्पूर्ण	अवरोह—सांनिधप मंग रेसा ।
वादी—प, सम्वादी-सा	पकड़—निसा, मंग, पग, रेसा ।
स्वर—रे ग ध कोमल, म तीव्र	समय—दिन का चौथा प्रहर ।

तोड़ी की तरह इस राग में भी रे ग ध का प्रयोग बड़ी कुशलता से करना होता है । इन स्वरों के ग़लत उपयोग से राग का स्वरूप बदल सकता है और तोड़ी की छाया आ सकती है । मुलतानी में म ग की सङ्गत और पुनरावृति होती है । काफी थाट से आगे सन्धिप्रकाश रागों में प्रवेश करने के लिये यह राग अत्यन्त उपयोगी है । इस राग में सा प नि विश्रान्ति स्थान माने जाते हैं । प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में भी तीव्र मध्यम की मुलतानी पाई जाती है ।

५२—रामकली

भैरव के ही मेल में, मनि दोउ रूप लखाय।
रिध कोमल सम्वाद पस, रामकली बन जाय॥

राग—रामकली	वर्जित—कोई नहीं
थाट—भैरव	आरोह—साग मप धनिसा।
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—सानिध पर्म पधनिध पगमरेसा।
वादी—पचम, सम्वादी षड्ज	पकड़—धप मंप धनिधपग म रेसा।
स्वर—रे ध कोमल व मनि दोनों	समय—प्रात काल।

रामकली का साधारण स्वरूप भैरव राग के समान है। रामकली के कई प्रकार सुने जाते हैं। एक प्रकार मे म नि आरोह में वर्जित हैं, इस प्रकार को शास्त्राधार तो है, किन्तु प्रचार मे बहुत कम दिखाई देता है।

रामकली का एक और प्रकार है, जिसके आरोह-अवरोह में सातों स्वर लगते हैं, किन्तु यह प्रकार भैरव से मिल जाता है, उससे बचने के लिये इस प्रकार में गुणी लोग एक परिवर्तन यह बताते हैं कि भैरव का विस्तार मन्द्र और मध्य स्थान में रहना चाहिए और रामकली का मध्य और तार स्थान मे विस्तार होना चाहिए।

रामकली का एक तीसरा प्रकार भी है, जिसमे दोनों म और दोनों नि प्रयोग किये जाते हैं, यह प्रकार ख्याल गायकों मे प्राय सुनने को मिलता है। इस प्रकार में तीव्र मं और कोमल नि इन दोना स्वरों का प्रयोग एक अनूठे ढग से होता है। मंपधनिधप, गमरेसा इस प्रकार की तान रामकली के इस प्रकार मे प्राय मिलती हैं।

उपरोक्त वर्णित प्रकारों के कारण इसके वादी सम्वादी मे भी मतभेद होना स्वाभाविक है, किन्तु दोनों मध्यम और दोना निषाद वाले प्रकार में वादी पचम और सम्वादी षडज मानना ठीक होगा, ऐसा ही भातखण्डे पद्धति के अनुयायी भी मानते हैं।

५३—विभास (भैरव थाट)

जन भैरव के मेल सों, मनि सुर दिये निकाम।
रिध कोमल, सम्वाद धग, औडुव रूप विभास॥

राग—विभास	वर्जित—म नि
थाट—भैरव	आरोह—सा रे ग प धप सा
जाति—औडुव	अवरोह—सा ध प गपधप गरेसा
वादी—ध, सम्वादी ग	पकड—ध, प, गप, गरेसा।
स्वर—रे ध कोमल	समय—प्रात काल

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं -

जिन रागों में म नि वर्जित होते हैं उनमें ग प की संगत बहुत प्रिय मालुम होती है। यह उत्तराङ्ग प्रधान राग है। विभास में जब धैवत लेकर पंचम पर राग समाप्त होता है तो श्रोताओं को बड़ा आनन्द आता है। विभास की तरह ही सायंकाल का एक राग "रेवा" है किन्तु रेवा में ग वादी है और विभास में ध वादी है। इस भेद से गुणीजन विभास और रेवा को अलग-अलग दिखा देते हैं।

इसके अतिरिक्त "विभास" नाम के २ राग और हैं। एक विभास पूर्वी थाट का है और एक मारवा थाट का, किन्तु उपरोक्त विभास भैरव थाट का है अतः उनसे इस विभास का कोई मेल नहीं।

५४—पीलू

ग ध नी तीनों सुरन के, कोमल तीवर रूप।
गनि वादी संवादि लखि, पीलू राग अनूप॥

राग—पीलू	वर्जित—कोई नहीं
थाट—काफी	आरोह—सारेग मपधप निधपसां
जाति—सम्पूर्ण	अवरोह—निधपमग, निसा।
वादी—ग, सम्वादी नि	पकड़—निसागनिसा, पधनिसा।
स्वर—सभी लग सकते हैं	समय—दिन का तीसरा प्रहर

पीलू राग को सभी पसन्द करते हैं। भैरवी, भीमपलासी गौरी इत्यादि रागों के मिश्रण से इसकी रचना हुई है। अतः बारहों स्वर प्रयोग करने की इस राग में छूट है। तीव्र स्वरों का प्रयोग प्रायः अवरोह में अधिक किया जाता है।

५५—आसा

औड़व सम्पूरन कहत, आरोहन गनि त्याग।
मस वादी सम्वादि तें, सोभित आसा राग॥

राग—आसा	वर्जित—आरोह में गनि
थाट—बिलावल	आरोह—सा रे म प ध सां
जाति—औडुव संपूर्ण	अवरोह—सांनिधप मगरेसा
वादी—म, संवादी सा	पकड़—रेमपध मांनिधपमगरे सारेगसा निधसा
स्वर—शुद्ध	समय—रात्रि का दूसरा प्रहर

इसमें सभी शुद्ध स्वरों का प्रयोग होता है। इस राग को अरबी नामक राग से बचाने में सावधानी बरतनी पड़ती है। 'आसा' के आरोह में गनि का प्रयोग अल्प अथवा वर्जित होना है।

५६—पटदीप

गा कोमल सम्वाद पस, चढ़ते रिध न लगाय।

राग—पटदीप	वर्जित—आरोह में रे ध
थाट—काफी	आरोह—निसा गुम पनिसा
जाति—औडुव सपूर्ण	अवरोह—सानिधप मगुरेसा
वादी—पचम, सवादी षड्ज	पकड—सागु मगुरे सानि, सागुरेसा
स्वर—कोमल गन्धार	समय—सायंकाल

यह राग भीमपलासी से बहुत कुछ मिलत-जुलता है, किन्तु भीमपलासी में कोमल निपाद है और इसमें शुद्ध है। इस कारण कोमल निपाद का बचाव करके इसे गाना चाहिये। इसी प्रकार का एक राग पटदीपकी (प्रदीपकी) नामक श्री भातखण्डे की क्रमिक छटी पुस्तक मे मिलता है, किन्तु उसमें कोमल निपाद तथा दोनों गन्धार लिये गये हैं, इससे वह प्रकार अलग ही है।

पटदीप राग में निपाद पर विश्रांति लेकर उस निपाद मे ही जोडकर सागुरेसा यह स्वर समुदाय लेना चहिये, ऐसा मत श्री पटवर्धन जी का है।

५७—रागेश्री (रागेश्वरी)

आरोहन परि वर्ज्य कर, उतरत पंचम हानि।
दोऊ नी, सम्वाद गनि, रागेश्वरी बखानि॥

राग—रागेश्री	वर्जित—आरोह में परे, अवरोह में-प
थाट—खमाज	आरोह—साग मधनिसा
जाति—औडुव-षाडव	अवरोह—सानि धम गरेसा।
वादी—ग, सवादी नि	पकड—गमधनि सानिधS मगरेसा।
स्वर—दोनों निपाद	समय—रात्रि दूसरा प्रहर

इसमें पचम स्वर तो बिल्कुल नहीं लगता और आरोह में रिषभ भी नहीं लगाया जाता। धम की स्वर सगति इसमें बहुत सुन्दर मालुम होती है। उत्तराङ्ग में बागेश्री का आभास होता है किन्तु पूर्वाङ्ग मे आया हुआ तीव्र गधार बागेश्री का भ्रम हटा देता है, क्योंकि बागेश्री मे कोमल गधार लगता है।

५८—पहाड़ी

औडुव करके गाइये, मनि को दीजै त्याग।
सप वादी सम्वादि ते, कहत पहाडी राग॥

राग—पहाडी	वर्जित—मनि
थाट—बिलावल	आरोह—सारेगप धसा
जाति—औडुव	अवरोह—साधप गप गरेसा
वादी—षड्ज, सवादी-पचम	पकड—ग, रेसा, धृ, पधसा।
स्वर—शुद्ध	समय—सर्वकालिक

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं—

इस राग में मध्यम और निषाद स्वर इतने दुर्बल हैं कि उन्हें वर्जित ही कहना उपयुक्त होगा। जब इस राग में भूपाली की छाया दिखाई देने लगती है तो चतुर गायक इसके अवरोह में थोड़ा मध्यम ग मग रे सा इस प्रकार लगाकर भूपाली से इसे बचा लेते हैं। मन्द्र सप्तक के धैवत पर विश्रान्ति लेने से इस राग का सौन्दर्य बढ़ता है।

५६—जोगिया

आरोही वर्जित गनी, अवरोहन गा त्याग।
रिध कोमल, सम्वाद मस, कहत जोगिया राग ॥

राग—जोगिया	वर्जित स्वर—आरोह गनि, अवरोह ग
थाट—भैरव	आरोह—सा रे॒ म प ध॒ सां
जाति—औडव-षाडव	अवरोह—सां नि ध॒ प ध॒ म रे॒ सा
वादी—म, सम्वादी-सा	सा पकड़—म, रे॒सा, सारे॒रे॒मरे॒सा
स्वर—रे॒ ध॒ कोमल	समय—प्रातःकाल

रे॒ म और ध॒म की स्वरसङ्गति इस राग की रंजकता बढ़ाती है। मध्यम स्वर मुक्त रखने से यह राग विशेष अच्छा लगता है। सङ्गीत मर्मज्ञों का कहना है कि इस राग की रचना भैरव और सावेरी के संमिश्रण से हुई है। सावेरी राग कर्नाटकी ग्रंथों में पाया जाता है।

भातखंडे मतानुसार इस राग के अवरोह में किसी-किसी स्थान पर कोमल निषाद लेते हुए कोमल धैवत पर आते हैं।

६०—मेघमल्लार

जब काफी के मेल सों, धग सुर दीने टार।
दोउ निषाद, सम्वाद सप, औडुव मेघमल्हार ॥

राग—मेघमल्लार	वर्जित—धैवत, गन्धार।
थाट—काफी	आरोह—सा मरे मप नि॒निसां।
जाति—औडुव	अवरोह—सां नि॒ प मरे मनि॒ रेसा।
वादी—सा, सम्वादी-प	पकड़—मरेपमरेसा, नि॒पनि॒सा।
स्वर—दोनों नि, बाकी शुद्ध	समय—रात्रि का प्रथम प्रहर।

मरेप यह स्वर विन्यास मेघमल्लार की विशेषता है। रिषभ स्वर पर होनें वाला आन्दोलन इस राग की सुन्दरता बढ़ाकर राग का स्वरूप व्यक्त करता है। यह आन्दोलन
म म म
रे, रे, रे, इस प्रकार रिषभ पर मध्यम का कण लगाकर कई बार किया जाता है। मध्यम पर अनेक बार विश्रान्ति होती है, जिससे सारङ्ग राग की छाया दूर होती है। इस राग में धैवत लगाकर भी कोई-कोई गायक गाते हैं।

———

ताल-मात्रा-लय विवरण

ताल—जिस आधार पर गायन वादन और नृत्य होता है, उसकी क्रिया नापने को ताल कहते हैं। जिस प्रकार भाषा में व्याकरण की आवश्यकता होती है उसी प्रकार सङ्गीत में ताल की आवश्यकता होती है। गाने-बजाने और नाचने की शोभा ताल से ही है। यथा—

तालस्तलप्रतिष्ठायामिति धातोर्घञि स्मृतः।
गीत वाद्य तथा नृत्य यतस्ताले प्रतिष्ठतम्॥

ताल शब्द 'तल' धातु (प्रतिष्ठा, स्थिरता) से बना है। तबला, पखावज इत्यादि ताल वाद्यों से जब गाने के समय को नापा जाता है, तो एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है, वास्तव में ताल सङ्गीत की जान है। ताल पर ही सङ्गीत की इमारत खड़ी हुई है।

मात्रा—मात्रा ताल का ही एक हिस्सा है, क्योंकि मात्राओं के योग से ही समस्त तालों की रचना हुई है। एकसी लय या चाल में गिनती गिनने को मात्रा कह सकते हैं। यदि घड़ी की एक सैकिंड को हम एक मात्रा मानलें तो १६ सैकिंड में तीनताल का ठेका बन जायगा, १२ सैकिंड में एकताला का ठेका बन जायगा। १० सैकिंड में झपताल हो जायगी। इसी प्रकार बहुत सी तालें बनी हैं।

मुख्य लय तीन प्रकार की होती हैं— (१) विलम्बितलय (२) मध्यलय (३) द्रुतलय।

(१) **विलम्बितलय**—जिस लय की चाल बहुत धीमी हो उसे विलम्बितलय कहते हैं। विलम्बितलय का अन्दाज, मध्यलय से यों लगाया जाता है—मान लीजिये एक मिनिट में आपने एकसी चाल से ६० तक गिनती गिनी, उसे अपनी मध्यलय मान लीजिये। इसके बाद इसी एक मिनट में समान चाल से ३० तक गिनती गिनी तो इसे विलम्बितलय कहेंगे, अर्थात् ३० तक गिनती जो गिनी गई उसकी लय, बनिस्बत ६० वाली गिनती के धीमी हो गई अर्थात् प्रत्येक गिनती में कुछ देरी लगी। "विलम्ब" का अर्थ है देरी।

(२) **मध्यलय**—जिस लय की चाल विलम्बित से तेज और द्रुतलय से कम हो उसे मध्यलय कहते हैं। यह लय बीच की होती है। बीच का ही अर्थ है "मध्य"।

(३) **द्रुतलय**—जिस लय की चाल विलम्बितलय से चौगुनी या मध्यलय से दुगुनी हो उसे द्रुतलय कहेंगे। ऊपर मध्यलय में बताया गया था कि १ मिनिट में सामान चाल से ६० तक गिनती गिनकर मध्यलय कायम की गई है, अब यदि १ मिनट में

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं—

१२० तक गिनती गिनी जायगी तो निश्चय है कि गिनती की चाल तेज हो जायगी और तेजी का अर्थ है "द्रुत"।

ठेका—तबले या मृदङ्ग के लिये प्राचीन शास्त्रकारों ने भिन्न-भिन्न बोल वैसी ही भाषा में बना दिये जो कि उन ताल वाद्यों से प्रकट होते हैं। उन्हीं बोलों को जब हम तबला या मृदङ्ग पर बजाते हैं, तब उसे ठेका कहते हैं। ठेका १ ही आवृति का होता है, जिसमें मात्रायें निश्चित होती है, उन्हीं निश्चित मात्राओं के अनुसार गाने-बजाने का नाप होता है। जैसे कहरवा ताल में ८ मात्रा हैं और इसके २ भाग हैं। प्रत्येक भाग में ४-४ मात्रा हैं, पहिली मात्रा पर सम और पांचवीं पर खाली है। इसे इस प्रकार लिखेंगे:—

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८
ठेका—	धा	गि	ना	तु	ना	के	धि	न
तालचिन्ह	+				०			

यह कहरवा का ठेका हुआ, इसी प्रकार अन्य बहुत सी तालों के ठेके हैं।

दुगुन—किसी ठेके को जब दूनीलय में बजाया जाय, यानी जितने समय में कोई ठेका एक बार बजाया गया था उतने ही समय में उसे २ बार कहा जाय या बजाया जाय तो उसे दुगुन कहेंगे। इसी प्रकार किसी गीत की स्थाई या अन्तरे को जितने समय में गाया जाय और फिर उतने ही समय में उसे २ बार गा दिया जाय तो वही 'दुगुन' कहलाती है।

तिगुन, चौगुन—इसी प्रकार जब कोई ठेका या गीत १ मिनट में १ बार बजाया जाय और वही ठेका या गीत उतने ही समय में अर्थात् १ मिनट में ही ४ बार बजाया जाय या गाया जाय तो उसे चौगुन कहेंगे। एवं १ मिनट में ३ बार गाया-बजाया जाय तो तिगुन कहेंगे।

आड़ी—कोई ठेका या गीत जिस मध्यलय में गाया बजाया जाय उससे ड्यौढीलय में गाने-बजाने को आड़ी कहेंगे। मान लीजिये १ मिनट में ६० तक गिनती गिनी जा रही है और जब एक मिनट में ६० तक गिनती गिनने लगें तो वही 'आड़ी' कहलायेगी।

क्वाड़ी—जिस ठेके की गति मध्यलय से सवाई होती है उसे क्वाड़ीलय कहते हैं। जैसे १ मिनट में ६० तक गिनती गिनी जारही थी और जब १ मिनट में ही ७५ तक गिनती गिनी जायेगी तो उसे 'क्वाड़ी' कहेंगे।

वियाड़ी—इसी प्रकार एक मिनट में १०५ तक गिनती गिनी जायगी तो 'वियाड़ी' अर्थात् पौने दुगुनी लय हो जायगी। लय का विशेष विवरण आगामी पृष्ठों में ताल के साथ दिया गया है।

सम—किसी ताल का वह स्थान जहां से गाना बजाना या ताल का ठेका शुरू होता है। गायक वादक ऐसे स्थान पर सङ्गत करते हुए जब मिलते हैं तो एक विशेष प्रकार का आनन्द आता है और श्रोताओं के मुँह से अनायास ही "आ" निकल जाती है

या उनके शरीर का कोई अङ्ग हिल जाता है। 'सम' पर गायक वादक विशेष जोर देकर उसे प्रदर्शित करते हैं। प्राय सम पर ही गाने बजाने की समाप्ति भी होती है। सम को 'न्यास' भी कहते हैं।

खाली—प्रत्येक ताल के कुछ हिस्से होते हैं जिन्हे भाग भी कहते हैं, इन भागों पर जहा हाथ मे ताली बजाई जाती है वे तो "भरी" कहलाती हैं और जिस भाग पर ताली बन्द रहती है, वह "खाली" कहलाती है। ताल मे खाली भाग इसलिए रखने पडे हैं कि इससे सम आने का अन्दाज ठीक लग जाता है। खाली का स्थान हाथ को फेककर दिखाया जाता है और भातखण्डे स्वरलिपि में इस स्थान को ० शून्य द्वारा दिखाया जाता है।

भरी—ताल के जिन हिस्सो पर ताली बजाई जाती हैं उन्हे 'भरी' या 'ताली' के स्थान कहते हैं। वैसे जब हाथ से ताल दिखानी होती है तब भरी ताल को थाप द्वारा दिखाया जाता है।

यति—लय के चाल क्रम (गति) को कहते हैं। प्राचीन शास्त्रों मे यति के पाच प्रकार माने गये हैं—

(१) समा—आदि मध्य और अन्त इन भेदो मे 'समा' नामक यति तीन प्रकार की होती है। आरभ, बीच और अन्त, इन तीनो स्थानो पर बराबर एकसी लय का होना ही समा यति कहलाता है।

(२) स्रोतोवहा—जिसके आरभ में विलम्बितलय, बीच में मध्यलय और अन्त मे द्रुतलय हो उसे 'स्रोतोवहा' यति कहते हैं।

(३) मृदङ्गा—जिसके आरभ और अन्त में द्रुतलय, बीच में मध्यलय या विलबितलय होती है, उसे 'मृदङ्गा' यति कहते हैं।

(४) पिपीलिका—जिसके आदि अन्त मे विलबित या मध्यलय और बीच मे द्रुतलय होती है, उसे 'पिपीलिका' यति कहते हैं।

(५) गोपुच्छा—जो गति द्रुतलय से आरम्भ होकर क्रमश मध्यलय और फिर विलबित होती जाने उसे 'गोपुच्छा' यति कहते हैं।

आवृति—आवृति का अर्थ है फेरना, दुहराना या चक्कर लगाना। जिस ताल को सम से सम तक जितनी बार दुहराया जायगा उसे उतनी ही आवृति कहेगे। कोई-कोई इसे आवर्तन या आवर्तक भी कहते हैं।

जर्ब—जर्ब का अर्थ है आघात या चोट। तबले पर जब थाप दी जाती है उसे जर्ब कहते हैं, इसी प्रकार सितार पर जब मिजराब द्वारा आघात किया जाता है उसे भी जर्ब कहते हैं।

कायदा—तबला या मृदङ्ग पर बजने वाले वर्ण समूह तालबद्ध होकर अभ्यास मे आने लगे और उन्हे शास्त्रीय रीति से तबले या मृदङ्ग में बजाया जासके एव उँगलिया सधी हुई और तैयार पड़ें, बोल स्पष्ट निकले, उसे 'कायदा' कहते हैं।

टुकडा—तबला या मृदङ्ग पर बजने वाले बोलों का एक छोटा सा समूह जब दुगुन, तिगुन, चौगुन या अठगुन की लय मे बजाकर सम पर उसकी समाप्ति होती है, उसे टुकडा कहते हैं।

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं—

पल्लू—जिन शब्दों की गति की चाल बिना खण्ड किये तीनबार कहकर सम पर आवे उसे पल्लू कहते हैं।

चौपल्ली—जिसके बोलों के खण्ड चार-चार मालुम हों।

पल्टा—तबला या मृदङ्ग पर बजने वाले बोलों के किसी समूह को जब उलट-पलट कर बजाया जाता है, उसे पल्टा कहते हैं।

तीया—किसी भी टुकड़े को ३ बार इस प्रकार बजाया जावे कि उसका अन्तिम धा सम पर आकर पड़े, उसे तीया या तिहाई कहते हैं।

मुखड़ा—किसी टुकड़े को सम से खाली तक अथवा खाली से सम तक बजाने को मुखड़ा कहते हैं।

मोहरा—यह तीया की भांति ही होता है, अर्थात् जब किसी टुकड़े को तीन बार बजाकर सम पर उसकी समाप्ति हो तो उसे मोहरा या तीया कहते हैं।

लग्गी—तबले में आड़ी चाल से जब "धिंधाधिन धीनाड़ा" इत्यादि बोल बजाये जाते हैं, उसे लग्गी कहते हैं।

लड़ी—जिस प्रकार माला की लड़ी में दाने पिरोये जाते हैं, उसी प्रकार बराबर की लय में ताल के बोलों को चुनकर दुगुन-चौगुन में बार-बार बजाया जाता है, उसे लड़ी कहते हैं।

पेशकारा—तबले या मृदङ्ग पर बजने वाले सुन्दर-सुन्दर बोलों को विशेष प्रकार से बजाकर श्रोताओं के सामने "पेश" करने को पेशकारा कहते हैं। पेशकारा के बोलों में यह विशेषता होती है कि वे ताल और लय के लहरे पर हिलते हुए एवं आड़दार धक्का देते हुए चलते हैं। इन्हें कुशल तबला वादक ही सफलता पूर्वक दिखा सकते हैं।

आमद—गायन-वादन या नृत्य के साथ तबले या मृदङ्ग पर जब सङ्गत (Solo) चलती है तो कुछ सुन्दर बोलों को आरम्भ में बजाया जाता है, उसे ही आमद या सलामी कहते हैं।

बोल—तबला या मृदङ्ग पर बजने वाले अक्षरों से निर्मित जो शब्द बनते हैं, उन्हें बोल कहते हैं, जैसे किट, धिन, कड़ान धिड़ान, धा इत्यादि।

उठान—आमद या सलामी के बोलों को जोरदार तिहाई मारकर जब सम पर आते हैं तब उसे 'उठान' कहते हैं।

नवहक्का—तिहाई को तीन बार बजाकर उसका अन्तिम अक्षर सम पर आवे, उसे नवहक्का कहते हैं।

रेला—एक-एक मात्रा में चार, आठ या अधिक अक्षरों के बोलों को मध्यलय में

परन—ताल की किसी भी मात्रा से आरम्भ करके जो बोल सम पर समाप्त होता है, उसको अथवा गृह से सम तक के बाज को परन कहते हैं।

ताल के दस प्राण—प्रत्येक जाति के तालों में १० बातें अवश्य ही मिलेंगी, इन्हें ताल के प्राण कहते हैं। (१) काल (२) क्रिया (३) कला (४) मार्ग (५) अङ्ग (६) प्रस्तार (७) जाति (८) ग्रह (९) लय (१०) गति।

काल—समय का ही दूसरा नाम "काल" है। काल से ही मात्रा और तालों की रचना हुई है और इसी से लय बनती है।

क्रिया—किसी भी ताल की मात्राओं के गिनने को क्रिया कहते हैं। क्रिया से ही हमें मालुम होता है कि अमुक ताल में कौन-कौन से अङ्ग हैं और वह कौनसी ताल है। क्रिया के २ भेद माने गये हैं (१) सशब्द क्रिया (२) निशब्द क्रिया।

सशब्द क्रिया—ताल की मात्राओं या समय को गिनने की वह क्रिया है जिसमें आवाज उत्पन्न हो, अर्थात् ताली देकर मात्राऐं गिनना।

निःशब्द क्रिया—ताल की मात्राऐं जब उङ्गलियों पर या मन ही मन में बिना शब्द किये हुए गिनी जायें उसे निःशब्द क्रिया कहेंगे।

कला—मात्राओं के हिस्से (भाग) को कला कहते हैं। जैसे आधी मात्रा, चौथाई मात्रा या ⅛ मात्रा आदि।

मार्ग—प्राचीन ग्रन्थों में ४ प्रकार के बताये गये हैं। ध्रुव, चतुरा, दक्षिणा और वृत्तिका। कला के हिसाब से इन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार में बाटा जाता था। किन्तु इनका वास्तविक रूप क्या था, इसका कोई पता नहीं चलता।

अङ्ग—ताल के समय में जो भिन्न-भिन्न भाग होते हैं, उन्हें अङ्ग कहते हैं। यह ६ प्रकार के है, जिन्हें अनुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरु, प्लुत और काकपद कहते हैं।

अनुद्रुत में १ मात्रा, द्रुत में २ मात्रा, लघु में चार मात्रा, गुरु में ८ मात्रा, प्लुत में १२ मात्रा और काकपद में १६ मात्रा का समय माना गया है।

प्रस्तार—जिस प्रकार ७ स्वरों के फैलाव से ५०४० तानें पैदा हुई हैं, उसी प्रकार १ मात्रा से लेकर १६ मात्रा के प्रस्तार से भिन्न-भिन्न तालें पैदा होकर उनकी संख्या ६५५३५ होजाती है। प्रस्तार का अर्थ है बढाना या फैलाना।

जाति—ताल के बोलों की रचना जितने-जितने अक्षरों से हुई हैं उनके अनुसार पाच जाति कायम की गई हैं, जो निम्नलिखित हैं —

(१) चतुस्र जाति	४ मात्रा के लिये		"तक धिन"
(२) तिस्र जाति	३ "	"	"तकिट"
(३) खण्ड जाति	५ "	"	"तकिट किट"
(४) मिश्र जाति	७ "	"	"तक धिन तकिट"
(५) संकीर्ण जाति	९ "	"	"तकधिन तक तकिट"

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं —

ग्रह—ताल के ४ ग्रह होते हैं, जिन्हें सम, विषम, अतीत और अनाघात कहते हैं। १–जब गीत और ताल एक ही स्थान से आरम्भ हों, उसे समग्रह कहेंगे। २–जब सम निकलने के बाद गाना शुरू किया जाय उसे विषम ग्रह कहेंगे, विषम का अर्थ है असमान या बराबर न होना। ३–अतीत का अर्थ है "पिछला" या अन्त। ताल की सम का अन्त होने पर जब गायन आरम्भ किया जाता है, उस स्थान को 'अतीत' कहते हैं। ४–जब पहिले गायन आरम्भ होजाय और पीछे ताल शुरू हो उसे अनाघात या अनागत ग्रह कहते हैं।

लय विवरण

समय के किसी भी हिस्से की समान (एक सी) चाल को 'लय' कहते हैं। जैसे घड़ी का पैन्डुलम एक सी चाल में खट–खट कर रहा है, उसका प्रत्येक 'खट' एक सैकिंड के समय में चल रहा है। यदि वही पैन्डुलम कोई खट सैकिंड में और कोई खट डेढ़–सैकिंड में करने लगे तो हम सङ्गीत की भाषा में कहेंगे कि इसकी लय बिगड़ गई, अर्थात् घड़ी की चाल बिगड़ गई। लय बराबर तभी रहेगी, जब वह घड़ी अपनी 'खट–खट' एक सी लय में करती रहेगी।

इसी प्रकार सङ्गीत या गाने, बजाने, नाचने का सम्बन्ध लय से है। एकसी चाल में किसी ताल को बजाया जायगा तो उससे एक प्रकार की लय स्थिर करली जायगी; फिर उस ताल की गति घटाई या बढ़ाई जायगी, तब लय बदल जायगी। इस प्रकार मुख्य लय ३ मानी है:—

(१) मध्यलय, (२) विलम्बित लय, (३) द्रुतलय। किन्तु जब सङ्गीत के बड़े–बड़े कलाकार विशेष रूप से अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं, तो उन्हें उपरोक्त ३ लयों के अतिरिक्त और लयों की भी आवश्यकता होती है। उनके लिये निम्नलिखित लयों का निर्माण और हुआ:—अति विलम्बित लय, तिगुनलय, चौगुनलय, अठगुन लय, कुवाड़ीलय, आड़ीलय और बिआड़ी लय। इस प्रकार लय के कुल १० भेद हुए। अब यह बताते हैं कि इनमें भेद क्या है और इन्हें लिपिबद्ध कैसे किया जायगा, अर्थात् लिखा कैसे जायगा।

लय की व्याख्या और उसे लिपिबद्ध करने का ढंग

(१) मध्यलय

जब कोई गायक गाना आरम्भ करे तो पहिले उसकी बराबर की लय मालुम कर लेनी चाहिये। बराबर की लय को ही मध्यलय कहते हैं, मध्य का अर्थ है बीच। अर्थात् वह इसी लय को आधार मानकर अन्य लयों का प्रदर्शन करेगा।

अगले पृष्ठ पर हम १ गीत की पहिली लाइन दे रहे हैं, इसे मध्यलय में मानकर आगे की लय बताने में सुविधा होगी। साथ ही हम इस गीत की लाइन के १६ अक्षरों को गाने का समय मध्यलय में १६ सैकिंड मान लेते है। यह हमारा मानदण्ड है, इसी के गणित से अन्य लय समझाने की चेष्टा की जायगी।

(१) मध्यलय (तीनताल) मानदंड १६ सैकिंड

गीत—	ज	य	ज	य	गि	रि	ध	र	न	ट	व	र	म	न	ह	र
सैकिंड-	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ताल—	ना	धी	धी	ना	ना	धी	धी	ना	ना	ती	ती	ना	ना	धी	धी	ना
चिन्ह-	×				२				०				३			

उपरोक्त गीत के १६ अक्षर १६ सैकिन्ड में गाये गये और इसे हमने मध्यलय मान ली, अब इस लय को विलम्बित लय करके दिखाते हैं, अर्थात उपरोक्त लय से १६ अक्षर गाने में जितना समय लगा था, अब उसमे दुगुना समय अर्थात ३२ सैकिन्ड इन्हीं १६ अक्षरों को गाने में लगेगा। जैसे —

(२) विलम्बित लय (तीनताल)

ज	ऽ	य	ऽ	ज	ऽ	य	ऽ	गि	ऽ	रि	ऽ	ध	ऽ	र	ऽ
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ना ×	–	धी	–	धी	–	ना	–	ना	–	धी	–	धी	–	ना	–
न	ऽ	ट	ऽ	व	ऽ	र	ऽ	म	ऽ	न	ऽ	ह	ऽ	र	ऽ
१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
ना ०	–	ती	–	ती	–	ना	–	ना ३	–	धी	–	धी	–	ना	–

इस प्रकार ३२ सैकिंड में वही १६ अक्षर गाये गये, तो हम कहेंगे कि यह हमारी अर्ध लय होगई। इसे ही विलम्बित लय भी कहेंगे।

(३) अतिविलम्बित लय

ज	ऽ	ऽ	ऽ	य	ऽ	ऽ	ऽ	ज	ऽ	ऽ	ऽ	य	ऽ	ऽ	ऽ
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
ना ×	–	–	–	धी	–	–	–	धी	–	–	–	ना	–	–	–
गि	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ	ऽ	ऽ	ध	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ	ऽ	ऽ
१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
ना २	–	–	–	धी	–	–	–	धी	–	–	–	ना	–	–	–

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं —

न	ऽ	ऽ	ऽ	ट	ऽ	ऽ	ऽ	व	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ	ऽ	ऽ
३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
ना ०	–	–	–	ती	–	–	–	ती	–	–	–	ना	–	–	–
म	ऽ	ऽ	ऽ	न	ऽ	ऽ	ऽ	ह	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ	ऽ	ऽ
४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४
ना ३	–	–	–	धी	–	–	–	धी	–	–	–	ना	–	–	–

इस प्रकार ६४ सैकिन्ड में वे ही १६ अक्षर गाये गये, अर्थात मध्यलय नं० १ से इसकी गति चौथाई हुई, क्योंकि मध्यलय में हमने १६ सैकिन्ड में ही १६ अक्षर गा लिये थे और उन्हीं १६ अक्षरों को गाने में यहां चौगुना समय लग गया, इसलिये हमारी लय की गति चौथाई हो गई। इसे ही अति विलम्बित लय कहेंगे।

यह तो लय को घटाने या विलम्बित करने का गणित हुआ, अब आगे लय को बढ़ाने का हिसाब बताया जाता है:—

(४) दुगुनलय (द्रुतलय)

इसकी चाल नं० १ वाली मध्यलय से ठीक दुगुनी होगी, इसलिये इसे दुगुन कहेंगे और चूँकि इसकी चाल में पहिले की अपेक्षा तेजी है, इसलिये इसे द्रुतलय भी कहते हैं। द्रुत का अर्थ है जल्द या तेजी। द्रुतलय को इस प्रकार लिपिबद्ध करेंगे:—

जय	जय	गिर	धर	नट	वर	मन	हर
१	२	३	४	५	६	७	८
नाधी	धीना	नाधी	धीना	नाती	तीना	नाधी	धीना
×		२		०		३	

पाठकों को मालुम ही है कि मध्यलय के उपरोक्त १६ अक्षरों को १६ सैकिन्ड में गाया गया था, अब वे ही १६ अक्षर ८ सैकिन्ड में गा लिये, अतः यह हुई दुगुन लय। क्योंकि १६÷२=८

(५) तिगुनलय

इस लय में मध्यलय से तिगुनी चाल हो जायगी, अर्थात अब उन्हीं १६ अक्षरों को गाने में मध्यलय की अपेक्षा एक तिहाई समय लगेगा:—

जयज	यगिरि	धरन	टवर	मनह	र,जय
१	२	३	४	५	$५\frac{१}{३}$,
नाधीधी	नानाधी	धीनाना	तीतीना	नाधीधी	नाना
×	२	०		३	×

नोट—"जयजय गिरधर नटवर मनह" इन १५ अक्षरों को गाने में ५ सैकिंड लगे और अन्तिम 'र' अक्षर में $\frac{१}{३}$ सैकिंड लगी।

इस प्रकार तिगुनलय मे उन्हीं १६ अक्षरों को गाने मे १६—३=५⅓ सैकिन्ड लगेगी और यदि इसे ३ वार गाया जाय तो पूरी १६ सैकिन्ड मे सम पर आ जायेंगे।

(६) चौगुनलय

इसकी चाल न० १ वाली मध्यलय मे चौगुनी तेज होगी।

जयजय	गिरधर	नटवर	मनहर
१	२	३	४
नाधीधीना	नाधीधीना	नातीतीना	नाधीधीना
×	२	०	३

चू कि १ न० की मध्यलय के १६ अक्षरों को गाने मे १६ सैकिंड लगे थे, इसलिए चौगुनीलय में १६—४=४ सैकिंड लगेंगे और इसे ४ वार गाया जाय तब मध्यलय वाली सम पर आ जायगे।

(७) अठगुनलय

इसकी चाल न० १ वाली मध्यलय से अठगुनी तेज होगी—

जयजय गिरधर	नटवर मनहर
१	२
नाधीधीना नाधीधीना	नातीतीना नाधीधीना
× २	० ३

चू कि न० १ की मध्यलय के इन्हीं १६ अक्षरों को गाने में १६ सैकिंड लगे थे, इसलिये अठगुनी लय में १६—८=२ सैकिंड लगेंगे और इसे ८ वार गाने पर १६ सैकिंड मे मध्यलय वाली सम आ जायगी।

(८) कुआडीलय

इसकी चाल न० १ वाली मध्यलय से सवाई तेज होती है। इसे लिखने के लिये १ अक्षर के चार भाग मानकर प्रत्येक अक्षर के आगे ऽऽऽ ऐसे ३ अवग्रह लगाये जायगे।

जऽऽऽय	ऽऽऽजऽ	ऽऽयऽऽ	ऽगिऽऽऽ	रऽऽऽध
१	२	३	४	५
ना- - -धी	- - -धी-	- -ना- -	-ना- - -	धी- - -धी
×			२	

लयकार इस प्रकार प्रगट किये हैं—

SSSरS	SSनSS	SटSSS	वSSSर	SSSमS	SSनSS	SहSSS	र,SSSज
६	७	८	९	१०	११	१२	$१२\frac{४}{५}$,
---ना-	--ना--	-ती ---	ती---ना	---ना-	--धी--	-धी---	ना---ना
	०			३			×

ध्यान दीजिये "जयजय गिरधर नटवर मनहर" यह सोलह अक्षर १२ सैकिंड से कुछ अधिक समय में अर्थात् $१२\frac{४}{५}$ सैकिंड में ही समाप्त होगये। क्योंकि मध्यलय १६ सैकिंड में थी, इसलिये $१६ \div १\frac{१}{४} = १२\frac{४}{५}$ सैकिंड समय लगा।

(९) आड़ीलय

इसकी गति (चाल) मध्यलय नं० १ से ड्यौढ़ी होती है, इसे लिखने के लिये एक अक्षर के २ भाग मानकर प्रत्येक अक्षर के आगे ऽ एक ऐसा अवग्रह जोड़ा जायगा।

जऽय	ऽजऽ	यऽगि	ऽरऽ	धऽर	ऽनऽ	टऽव	ऽरऽ	मऽन	ऽहऽ	र,ऽज
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	$१०\frac{२}{३}$,
ना–धी	–धी–	ना–ना	–धी–	धी–ना	–ना–	ती–ती	–ना–	ना–धी	–धी–	ना–ना
×		२			०			३		×

इस लय में वे ही सोलह अक्षर $१०\frac{२}{३}$ सैकिंड में गा लिये जांयगे। क्योंकि मध्यलय १६ सैकिंड में थी, इसलिये $१६ \div १\frac{१}{२} = १०\frac{२}{३}$ सैकिंड समय लगा।

(१०) वियाड़ीलय

इस लय की गति मध्यलय नं० १ से पौने दो गुनी तेज होगी। इसे लिखने के लिये प्रत्येक अक्षर के चार भाग मानकर तीन अवग्रह ऽऽऽ जोड़े जांयगे क्योंकि एक भाग स्वयं वह अक्षर होगया। इस प्रकार चार भाग होजाते हैं।

जऽऽऽयऽऽ	ऽजऽऽऽयऽ	ऽऽगिऽऽऽर	ऽऽऽधऽऽऽ	रऽऽऽनऽऽ
१	२	३	४	५
ना---धी--	-धी---ना-	--ना---धी	---धी---	ना---ना--
×		२		०
ऽटऽऽऽवऽ	ऽऽरऽऽऽम	ऽऽऽनऽऽऽ	हऽऽऽरऽऽ	ऽ,जऽऽऽयऽ
६	७	८	९	$९\frac{१}{७}$,
-ती---ती-	--ना---ना	---धी---	धी---ना--	-,ना---धी-
		३		×

इस लय में वे ही १६ अक्षर $९\frac{१}{७}$ सैकिंड में गाये गये। क्योंकि मध्यलय १६ सैकिन्ड में थी और यह उसकी पौने दुगुनी तेज है तो $१६ \div १\frac{३}{४} = ९\frac{१}{७}$ सैकिन्ड। ध्यान दीजिये "मनहर" तक गाने में ९ सैकिन्ड पूरी होगईं, फिर अगली मात्रा के ७ भागों में से १ भाग और लेना पड़ा, तभी गणित के हिसाब से $९\frac{१}{७}$ आया।

उत्तरी संगीत पद्धति की कुछ मुख्य तालें:—

कहरवा, मात्रा ८ भाग २

मात्रा	१	२	३	४	५	६	७	८
बोल	धा	गे	ना	ती	ना	के	धि	न
ताल चिन्ह	×				०			

दादरा, मात्रा ६ भाग २

१	२	३	४	५	६
धा	धी	ना	धा	ती	ना
×			०		

झपताल, मात्रा १० भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
×		२			०		३		

चौताल, मात्रा १२ भाग ६

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
×		०		२		०		३		४	

त्रिताल, मात्रा १६ भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धा	धिं	धिं	ना	धा	धिं	धिं	ना	ता	तिं	तिं	ना	धा	धिं	धिं	ना
×				२				०				३			

आडा चौताल, मात्रा १४ भाग ७

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धीं	धीं	ना	धीं	धीं	ना
×		२		०		३		०		४		०	

तीव्रा, मात्रा ७ भाग ३

१	२	३	४	५	६	७
धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
×			२		३	

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं—

सूलताल, मात्रा १० भाग ५

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धा	धा	दिं	ता	किट	धा	तिट	कत	गदि	गन
×		०		२		३		०	

धमार, मात्रा १४ भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	क	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ
×					२		०			३			

रूपक, मात्रा ७ भाग ३

१	२	३	४	५	६	७
ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना
×			२		३	

इकताला, मात्रा १२ भाग ६

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धिं	ना
×		०		२		०		३		४	

दीपचन्दी, मात्रा १४ भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
धा	धीं	ऽ	धा	गे	तीं	ऽ	ता	तीं	ऽ	धा	गे	धीं	ऽ
×			२				०			३			

पंजाबी, मात्रा १६ भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धा	ऽधी	ऽक	धा	धा	ऽधी	ऽक	धा	ता	ऽती	ऽक	ता	धा	ऽधी	ऽक	धा
×				२				०				३			

मत्तताल, मात्रा १८ भाग ९

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
धा	ऽ	धि	ड़	न	क	धि	ड़	न	क	ति	ट	क	त	ग	दि	गि	न
×		०		२		३		०		४		५		६		०	

तिलवाडा, मात्रा १६ भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धा	तिरकिट	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	तिरकिट	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं
×				२				०				३			

धीमा इकताला, मात्रा १२ भाग ६

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
धीं	धीं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धीं	नाना
×		०		२		०		३		४	

झूमरा, मात्रा १४ भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
धिं	धिं	नक	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तिं	तिं	नक	धिं	धिं	धागे	तिरकिट
×			२				०			३			

ब्रह्मताल, मात्रा २८ भाग १४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
धा	धिं	धिं	धा	तुक	धिं	धिं	धा	ती	ती	ना	ती	ती	ना
×		०		२		३		०		४		५	
१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
ती	ना	तू	ना	क	त्ता	धी	ना	धागे	नधा	तुक	धिं	गदि	गन
६		०		७		८		९		१०		०	

गणेश ताल, मात्रा २१ भाग १०

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
धा	ता	दिं	ता	कत	तिट	धा	दिं	ता	कत	तिट	ता	धागे	दिं	ता	धागे	ता	तिट	कत	गदि	गन
×				२	३				४	५	६				७	८	९	१०		

विक्रम ताल, मात्रा १२ भाग ४

२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ऽ	धि	त्ता	ऽ	क	ऽ	त्ता	तिट	कत	गदि	गन
	२						३			

[illegible] इस प्रकार प्रगट किये हैं –

ताल गजझंपा, मात्रा १५ भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
धा	धिन	नक	तक	धा	धिं	नक	तक	धिं	नक	तक	किट	तक	गदि	गिन
×				२				०				३		

शिखर ताल, मात्रा १७ भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
धा	तृक	धिं	नक	थुं	गा	धिं	नक	धुम	किट	तक	घेत्	धा	तिट	कत	गदि	गिन
×						०						२		३		

यति शेखर ताल, मात्रा १५ भाग १०

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
धा	तत्	धि	ना	त्रक	धि	धि	ना	तत्	धागि	नाधा	त्रक	धिना	गदि	गन
×	२		३		४	५	६		७	८	९		१०	

ताल चित्रा, मात्रा १५ भाग ५

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
धि	ना	धि	धि	ना	तू	ना	क	त्ता	त्रक	धी	ना	धी	धी	ना
×		२			३				४				•	

वसन्त ताल, मात्रा ९ भाग ९

१	२	३	४	५	६	७	८	९
धा	देत्	देत्	थुं	थुं	तेटे	कत	गदि	गन
×	२	३	४	०	५	•	६	०

विष्णु ताल, मात्रा १७ भाग ५

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
धि	ना	धि	धिं	ना	धिं	तृक	धी	ना	धिं	धिं	ना	धिं	धी	ना	धी	ना
×		२			३				४				०			

मणि ताल, मात्रा ११ भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
धा	धि	ट	कि	ट	धा	कि	ट	त	कि	ट
×			२		३			४		

झम्पा ताल, मात्रा १० भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धा	ऽ	धा	गे	ति	ट	ति	द्धा	कि	ट
×		२			०		३		

रुद्र ताल, मात्रा ११ भाग ११

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
धी	ऽना	धी	ना	ती	ती	ना	क	त्ता	धी	ना
×	२	०	३	४	५	०	६	७	८	०

ठेका टप्पा, मात्रा १६ भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
धिं	ता	धिं	धिं	धिं	ता	धिं	ऽ	धा	धे	दिं	ऽ	धिं	ता	धिं	धिं
×				२				०				३			

अद्धा त्रिताल, मात्रा ८ भाग ४

१	२	३	४	५	६	७	८
धाधिं	ऽना	धाधिं	ऽना	ताति	ऽना	धाधिं	ऽना
×		२		०		३	

ताल सवारी, मात्रा १५ भाग ७

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
धी	त्रिकिट	धीना	क्त्	धीधी	नाधी	धीना	तीन	तीना	तृक्तूना	किड़नग	कत्ता	धीधी	नाधी	धीना
×			२		०		३		०		४		०	

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं —

लक्ष्मी ताल, मात्रा १८ भाग १८

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
धिं	तेत्	घेत्	घेत्	दिं	ता	तिट	कत	धा	दिं	ता	धुम	किट	धुम	किट	कत	गदि	गिन
×	२	३	०	४	५	६	०	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	०

ताल पश्तो, मात्रा ७ भाग ३

१	२	३	४	५	६	७
तृक	धिं	ऽ	धा	धा	तिं	ऽ
×			२		३	

ठेका कव्वाली, मात्रा ८ भाग २

१	२	३	४	५	६	७	८
धा	कत	धा	धिं	ता	कत	ता	धिं
×				२			

ताल शूलफाक्ता, मात्रा १० भाग ३

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धिं	धिं	धा	त्रिकिट	तू	ना	तत	धी	धी	ना
×				२		३			



त्रिपुट ताल	चतस्र	।४००	४+२+२	८
	तिस्र	।३००	३+२+२	७
	मिश्र	।७००	७+२+२	११
	खण्ड	।५००	५+२+२	९
	सकीर्ण	।९००	९+२+२	१३
अठताल	चतस्र	।४।४००	४+४+२+२	१२
	तिस्र	।३।३००	३+३+२+२	१०
	मिश्र	।७।७००	७+७+२+२	१८
	खण्ड	।५।५००	५+५+२+२	१४
	सकीर्ण	।९।९००	९+९+२+२	२२
एकताल	चतस्र	।४	४	४
	तिस्र	।३	३	३
	मिश्र	।७	७	७
	खण्ड	।५	५	५
	सकीर्ण	।९	९	९

यह तो हुये जाति भेद के अनुसार ७ तालों के ३५ प्रकार। अब पचगति भेद के अनुसार इनमें से प्रत्येक प्रकार के पाच-पाच भेद और होते हैं, इससे ३५×५=१७५ तालों के प्रकार इस पद्धति मे उत्पन्न होते हैं। आगामी पृष्ठ मे उदाहरण के लिये केवल "अठताल" के २५ प्रकार पचगति भेदानुसार कैसे हो सकते हैं, यह दिखाया जाता है।

विचार इस प्रकार प्रगट किये हैं —

"अठताल" के २५ प्रकार

जाति	चिन्ह	मात्रा	गति भेद	गति भेद के प्रकार से कुल मात्राऐं
चतस्र	। ४ । ४ ० ०	१२	चतस्र	१२×४=४८
			तिस्र	१२×३=३६
			मिश्र	१२×७=८४
			खंड	१२×५=६०
			संकीर्ण	१२×९=१०८
तिस्र	। ३ । ३ ० ०	१०	चतस्र	१०×४=४०
			तिस्र	१०×३=३०
			मिश्र	१०×७=७०
			खंड	१०×५=५०
			संकीर्ण	१०×९=९०
मिश्र	। ७ । ७ ० ०	१८	चतस्र	१८×४=७२
			तिस्र	१८×३=५४
			मिश्र	१८×७=१२६
			खंड	१८×५=९०
			संकीर्ण	१८×९=१६२
खंड	। ५ । ५ ० ०	१४	चतस्र	१४×४=५६
			तिस्र	१४×३=४२
			मिश्र	१४×७=९८
			खंड	१४×५=७०
			संकीर्ण	१४×९=१२६

			चतस्र	२२×४=८८
			तिस्र	२२×३=६६
सकीर्ण	।९ ।६ ० ०	२२	मिश्र	२२×७=१५४
			खण्ड	२२×५=११०
			सकीर्ण	२२×९=१९८

नोट—इसी तरह शेष छ तालों से भी पच्चीस-पच्चीस प्रकार पैदा होकर कुल १७५ हो जायेंगे।

ऊपर के नकशों में चिन्ह वाले खाने में ताल चिन्ह लघु के आगे जो अक लिखे गये हैं, उनका अर्थ यह है कि लघु यहा पर इतनी मात्रा का माना गया है। जैसे लघु का चिन्ह । यह है, तो जहा पर चतस्रजाति में लघु दिखाया जायगा, वहा ।४ इस प्रकार लिखेंगे। तिस्रजाति में ।३ इस प्रकार लिखेंगे। मिश्रजाति में लघु को ।७ इस प्रकार लिखेंगे। खडजाति में लघु को ।५ इस प्रकार लिखेंगे और सकीर्णजाति मे लघु को ।९ इस प्रकार लिखेंगे। लघु के चिन्ह के आगे दिये हुए विभिन्न अकों द्वारा आसानी से यह मालुम हो जाता है कि यहा पर लघु की इतनी मात्रा मानी गई है। अन्य चिन्हों के साथ मात्रा लिखने का नियम नहीं है, क्योंकि केवल 'लघु' की ही मात्रायें वदलती हैं, वाकी चिन्हों की मात्राओं में कोई परिवर्तन नहीं होता।

कर्नाटकी ताल पद्धति की वावत निम्नलिखित वाते विद्यार्थियों को याद रखनी चाहिये —

(१) कर्नाटक ताल पद्धति में लघु की मात्रा जाति भेद के अनुसार वदलती रहती हैं।
(२) जिस ताल में जितने चिन्ह होंगे, उसमें उतनी ही ताली (थाप) या भरी तालें होंगी।
(३) कर्नाटकी पद्धति में 'खाली' नहीं होती।
(४) सभी तालें सम से आरम्भ होती हैं।
(५) कर्नाटकी पद्धति में मुख्य ७ ताले होती हैं।
(६) प्रत्येक ताल की पॉच-पॉच जातिया होती हैं। जिनसे ३५ प्रकार उत्पन्न होते हैं।
(७) पॉच-पॉच जातियों के पॉच-पॉच भेद होते हैं, जिनमे १७५ प्रकार उत्पन्न हो जाते हैं।

विचार इस प्रकार प्रगट किये है —

कर्णाटकी पद्धति की ७ तालों को हिन्दुस्तानी पद्धति में लिखने का कायदा

(यह सातों तालें चतस्रजाति में दी जा रही हैं)

(१) ध्रुवताल, मात्रा १४ (।०।।) चतस्रजाति

मात्रा—	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
चिन्ह—	×				२		३				४			

(२) मठताल, मात्रा १० (।०।) चतस्रजाति

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
×				२		३			

(३) रूपक ताल, मात्रा ६ (।०) चतस्रजाति

(इस ताल को हिन्दुस्थानी पद्धति में ७ मात्रा की मानते हैं)

१	२	३	४	५	६
×				२	

(४) झम्पताल, मात्रा ७ (।◡०) चतस्रजाति

१	२	३	४	५	६	७
×				२	३	

(५) त्रिपुट ताल, मात्रा ८ (।००) चतस्रजाति

१	२	३	४	५	६	७	८
×				२		३	

(६) अठताल, मात्रा १२ (।।००) चतस्रजाति

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
×				२				३		४	

(७) एकताल, मात्रा ४ (।) चतस्रजाति

(हिन्दुस्थानी पद्धति में 'एक ताल' १२ मात्रा की मानी गई है)

१	२	३	४
×			

उपरोक्त ७ तालें चतस्रजाति में दी गई हैं। यदि इन्हीं तालों को तिस्रजाति में मानकर लिखें, तो इनका रूप बदल जायगा। क्योंकि चतस्रजाति मे लघु को ४ मात्रा का माना गया है और तिस्रजाति मे 'लघु' की मात्रा ३ मानी जाती हैं। उदाहरणार्थ ध्रुवताल को अब तिस्रजाति मे इस प्रकार लिखेंगे —

ध्रुवताल (तिस्रजाति) मात्रा ११

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
×			२		३			४		

और इसी ध्रुवताल को खण्डजाति मे लिखना होगा तो, निम्न प्रकार मे लिखेंगे, क्योंकि खण्डजाति में 'लघु' की पाँच मात्रा मानी गई हैं।

ध्रुवताल (खण्डजाति) मात्रा १७

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
×					२		३					४				

मिश्रजाति में लघु की मात्रा ७ मानी गई हैं, अत यही ध्रुवताल यदि मिश्रजाति में लिखी जायगी, तो उसका रूप यह होगा —

ध्रुवताल (मिश्रजाति) मात्रा २३

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
×							२		३						

१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३
४						

अब इसी ताल को सकीर्णजाति मे लिखे तो इस ताल की मात्रा २९ हो जायेंगी, क्योंकि सकीर्णजाति मे गुरु की मात्रा ९ मानी गई हैं।

ध्रुवताल (सकीर्णजाति) मात्रा २९

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
×									२		३								

२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
४								

वाद्ययन्त्र परिचय

वाद्यों के प्रकार

भारतीय सभी वाद्यों को ४ श्रेणियों में बांटा गया है (१) ततवाद्य (२) सुषिरवाद्य (३) अवनद्ध वाद्य (४) घनवाद्य ।

(१) ततवाद्य—या तंतुवाद्य उन्हें कहते हैं जिनमें तारों के द्वारा स्वरों की उत्पत्ति होती है। इनमें भी २ श्रेणी बताते हैं (१) ततवाद्य (२) विततवाद्य। ततवाद्य की श्रेणी में तार के वे साज़ आते हैं जिन्हें मिजराब या अन्य किसी वस्तु की टकोर देकर बजाते हैं, जैसे—वीणा, सितार, सरोद, तानपूरा, एकतारा, दुतारा इत्यादि। दूसरी विततवाद्य की श्रेणी में गज की सहायता से बजने वाले साज़ (वाद्य) आते हैं, जैसे—इसराज, सारंगी, वायलिन इत्यादि।

(२) सुषिरवाद्य—इस श्रेणी में फूँक या हवा से बजने वाले बाजे आते हैं, जैसे—बांसुरी, हारमोनियम, क्लारनेट, शहनाई, बीन, शंख इत्यादि।

(३) अवनद्ध वाद्य—इस श्रेणी में चमड़े से मढ़े हुए तालवाद्य आते हैं, जैसे—मृदङ्ग, तबला, ढोलक, खंजरी, नगाड़ा, डमरू, ढोल इत्यादि।

(४) घनवाद्य—वे हैं जिनमें चोट या आघात से स्वर उत्पन्न होते हैं, जैसे—जलतरङ्ग, मंजीरा, झांझ, करताल, घंटा तरङ्ग, पियानो इत्यादि।

सितार—

संक्षिप्त इतिहास

तेरहवीं, चौदहवीं शताब्दी (१२९६-१३१६ ई०) में अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में हज़रत अमीर खुसरो एक प्रसिद्ध कवि और सङ्गीतज्ञ हुए हैं, उन्होंने एक प्राचीन वीणा के आधार पर मध्यमादि वीणा बनाकर उसमें तीन तार चढ़ाये और उसका नाम "सेहतार" रक्खा। फ़ारसी में 'सह' का अर्थ तीन होता है, सम्भवतः इसी आधार पर उन्होंने इस वीणा का नामकरण 'सेहतार' किया। इसमें दो पीतल के तथा १ लोहे का तार था और १४ परदे थे। पीतल के दोनों तार क्रमशः षड़ज और पंचम में मिलाये एवं लोहे का तार मध्यम में मिलाया गया। इसका तूम्बा आधा ही होता था और दांये हाथ की अँगुली में मिजराब चढ़ाकर इसे चाहे जिस प्रकार की बैठक से बजा सकते थे अर्थात् इसे बजाने में ऐसा कोई बन्धन नहीं था, कि किस प्रकार बैठना चाहिये।

धीरे-धीरे इसमें तारों की संख्या बढ़ती रही। कहा जाता है कि १७१९ ई० में मुगल बादशाह मोहम्मद शाह के समय में इसमें ३ तार बढ़े, इस प्रकार यह छै तार का होकर

तबले के प्रथम कलाकार उस्ताद सुल्लू खां बताये जाते हैं, जिनकी शिष्य परम्परा में आजकल कठे महाराज और किशन महाराज का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

तबले के घराने

तबले के मुख्य चार घराने माने जाते हैं—(१) दिल्ली घराना (२) पंजाब घराना (३) बनारस घराना और (४) लखनऊ घराना। इन घरानों के अन्तर्गत आजकल निम्नांकित २ बाज प्रसिद्ध हैं—

दिल्ली बाज—इसमें चॉटी का काम अपना विशेष महत्व रखता है। चॉटी के काम में दो अँगुलियां तर्जनी और मध्यमा का विशेष काम रहता है। इससे सोलो वादन में विशेष सुविधा रहती है, एवं पेशकार और कायदों का भली प्रकार निर्वाह होता है। दिल्ली घराने के मुख्य प्रतिनिधि ख० खलीफा नत्थूखां, उस्ताद काल्लेखां, उ० मसीत खां और उनके पुत्र उस्ताद करामतखां आदि हैं।

पूर्बी बाज—इस बाज में प्राय खुले बोलों के काम अधिक महत्व रखते हैं, जिनके निकालने में हथेली का प्रयोग अधिक होता है। पूर्बी बाज में लखनऊ और बनारस शामिल हैं। इस घराने के मुख्य कलाकार हैं—(१) खलीफा मुन्नेखां (लखनऊ) (२) उस्ताद आबिदहुसेन, (३) श्री अनोखेलाल और (४) श्री कठे महाराज। श्री कठे महाराज के शिष्यों में श्री नन्नूजी, श्री निक्कूजी, किशन महाराज आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

उ० अहमदजान थिरकवा—इनका बाज पूर्व और पश्चिम का मिश्रित बाज माना जाता है। थिरकवा साहब का आजकल नाम भी अधिक सुना जाता है, इसका कारण यही है कि इन्होंने दिल्ली बाज और पूरब बाज दोनों की विशेषताओं को लेकर अपनी कला को विकसित किया है। सोलो और परन टुकड़ों के तो आप उस्ताद हैं ही, साथ ही साथ आप गवैये की सङ्गत करने में भी विशेष कुशल हैं। आपके कई ग्रामोफोन रेकर्ड भी तैयार हो चुके हैं, जिनमें आपकी कला का चमत्कार पाया जाता है।

श्री भातखण्डेजी ने प्राचीन उत्तम तबलियों के नाम इस प्रकार बताये हैं—

१ बकसू धाडी—प्रसिद्ध तबला वादक।
२ मम्मू—गत बजाने में कुशल।
३ सलारी—गत और परन बहुत सुन्दर बजाने वाला।
४ मक्खू—प्राचीन ढङ्ग के बाज का उत्तम तबलिया।
५ नज्जू—बकसू का शिष्य (लखनऊ) इसका हाथ बहुत तैयार था।

वर्तमान समय में तबले के उच्च कलाकार निम्नलिखित हैं—

(१) अहमदजान थिरकवा (२) अल्लारखा (३) कठे महाराज (४) किशन महाराज (५) शामताप्रसाद 'गुदई महाराज' (६) अनोखेलाल (७) करामतखां।

विचार इस प्रकार प्रगट किया है

दाहिना और बांया

दाहिना तबला लकड़ी का होता है और बांया मिट्टी या किसी धातु का। इन दोनों के मुँह पर चमड़ा चढ़ा रहता है, जिसे पुड़ी कहते हैं। पुड़ी के किनारे के चारों ओर चमड़े की गोट लगी रहती है, जिसे चांटी कहते हैं। दाहिने तबले की पुड़ी के बीच में और बांये (डग्गे) की पुड़ी के बीच से कुछ हटकर स्याही लगी रहती है। दांये और बांये दोनों की पुड़ी चमड़े की डोरी से कसी रहती है, इन्हें बद्धी या 'दुआल' भी कहते हैं। चांटी और स्याही के बीच का स्थान 'लव' कहलाता है, इसे मैदान भी कहते है। पुड़ी के चारों ओर गोट के किनारे पर चमड़े के फीते का बुना हुआ गजरा लगा रहता है। 'दुआलों' में लकड़ी के गट्टे लगे रहते हैं, जिन्हें नीचे खिसकाने पर तबले का स्वर ऊँचा होता है। और गट्टे ऊँचे करने पर स्वर नीचा होता है। स्वर को अधिक ऊँचा नीचा करना होता है, तभी गट्टे ठोके जाते है। मामूली स्वर के उतार चढ़ाव के लिये चांटी के किनारे वाली पगड़ी या गजरे पर हल्का आघात करने से ही काम चल जाता है।

तबला मिलाना

तबले का दाँया जिस स्वर में मिलाना हो, उससे एक सप्तक नीचे उसी स्वर में बांया मिलना चाहिये। वैसे साधारणतः बांये को मिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, फिर भी उपरोक्त नियम को ध्यान में रखते हुए बांया भी ठीक रखने से सुविधा ही रहती है।

तबले को प्रायः षड़ज या पंचम में ही मिलाते हैं, किन्तु जिन रागों में पंचम स्वर वर्जित होता है, उनमें मध्यम स्वर में तबला मिलाते हैं।

पहिले किसी एक घर को मिलाकर फिर दाहिनी ओर के उससे अगले घर को मिलाना चाहिये। इस प्रकार आगे के सब घर आसानी से मिल जाते हैं। मिलाने का एक प्रकार यह भी है कि पहले १ घर को मिलाने के बाद, फिर उसके सामने वाला ६ वां घर मिलाते हैं, फिर ५ वां घर और फिर १३ वां घर मिलाते हैं। इन घरों का अर्थ समझने के लिये तबले की पुड़ी की गोलाई का अन्दाज १६ भागों में कर लीजिये और जिसे सबसे पहिले आप मिला रहे हैं, उसे पहिला भाग समझिये, यही पहला घर है।

तबला मिलाने से पहले गायक या वादक के स्वर को जान लेना आवश्यक है। यदि उसके स्वर के हिसाब से तबला अधिक चढ़ा या उतरा हुआ है, तब तो गट्टों की ठोक-पीट करनी चाहिये, अन्यथा थोड़े से फरक के लिये जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, चांटी के पास वाले गजरे पर आघात करके ही मिला लेना चाहिये। गजरे को ऊपर से ठोकने पर तबला चढ़ता है और नीचे उल्टी चोट मारने पर तबले का स्वर उतरता है।

तबला के दस वर्ण

धा धिन तिट तिन नाक घी, ता क्रिन कत्त विचार।
तबला के दस वर्ण हैं, इनको लेउ सुधार ॥

इस प्रकार तबले के १० बोल बताये गये हैं। तबले के बोलों को ३ भागों में बांटा गया है, दाहिने हाथ के बोल और बायें हाथ के बोल तथा दोनों हाथों के सम्मिलित बोल।

(१) दाहिने हाथ के बोल—ना, ता, तिट, किट, दिं या तुन, तिन इत्यादि।

(२) बायें हाथ के बोल—घी, या ग, क, कत्त, किन इत्यादि।

(३) दोनों हाथों के सम्मिलित बोल—धिन्न या धिन, धा, धिन्ना, धिन्नक, गिद्दी, किडनग, किटतक, त्रक, ऋडानतान, तकिट इत्यादि।

यद्यपि इन तीन प्रकार के बोलों में बहुत से ऐसे बोल आ गये हैं, जो उपरोक्त दस वर्णों में बताये हुए बोलों से भिन्न हैं। किन्तु मूल रूप से बोल १० ही हैं, इनमें से अक्षरों को मिलाजुला कर अधिक बोलों की उत्पत्ति हुई है।

मृदंग (पखावज)

नटराज शंकर का डमरू सबसे प्राचीन घन वाद्य है, उसी के आधार पर मृदङ्ग की उत्पत्ति हुई। मृदङ्ग की प्राचीनता का प्रमाण ऋग्वेद (४।३३।६) से मिलता है, जिसमें वीणा, मृदङ्ग, वंशी और डमरू का वर्णन आया है। पुरातन काल में मृदङ्ग को 'पुष्कर' भी कहा जाता था, ऐसा भरतमत के ग्रन्थों में वर्णन मिलता है। पुष्कर वाद्य देवताओं को अति प्रिय था। इसकी ताल के साथ-साथ उनका नृत्य हुआ करता था, इसका प्रमाण अनेक प्राचीन मूर्तियों तथा चित्रों द्वारा मिलता है।

प्राचीन पुष्कर वाद्य कई प्रकार के होते थे, जैसे—हरीतिकी, जवाकृति, गोपुच्छाकृति। हरड़ के आकार में जो पुष्कर होता था, उसे हरीतिकी कहते थे। जौ के आकार से मिलता-जुलता पुष्कर जवाकृति कहलाता था और गौ की पूँछ के निचले गुच्छे से जिसका आकार समता रखता था, उसे गोपुच्छाकृति नाम दिया गया।

मृदङ्ग, मुरज और मर्दल यह ३ नाम भी पखावज के ही हैं। इस प्रकार मृदङ्ग के विभिन्न नाम और उनकी आकृतियों का वर्णन ग्रन्थों में मिलता है। मृदङ्ग का विशेष प्रचार दक्षिण भारत में रहा। कुछ समय बाद उत्तर भारत के सङ्गीतज्ञों ने मृदङ्ग से मिलता-जुलता प्रकार बनाकर इसका नाम पखावज रख लिया। पखावज पर अनेक कठिन-कठिन तालों का प्रयोग हुआ करता था। ध्रुपद, धमार, ब्रह्म, रुद्र, विष्णु, लक्ष्मी, सवारी इत्यादि तालें इस पर बजाई जाती थीं। किन्तु जबसे तबले का आविष्कार हुआ, मृदङ्ग का प्रचार बहुत कम होगया, अब तो मृदङ्ग के दर्शन मन्दिरों में, कीर्तन मण्डलियों में यदा-कदा हो जाते हैं। फिर भी कुछ गुणीजन इसको महत्व देते हैं और इसका उपयोग भी करते हैं।

प्रसिद्ध पखावजियों में ला० भवानीप्रसादसिंघ पखावजी को भातखंडे जी ने अप्रतिम पखावजी कहकर सम्बोधित किया है। प्रसिद्ध पखावजी कुदऊसिंह इन्हीं के शिष्य थे। औंध के नवाब द्वारा उन्हें "कुँवरदास" की पदवी प्राप्त हुई थी। कहा जाता है कि एकबार वाजिदअली शाह की एक महफिल में कुदऊसिंह व जोतासिंह पखावजियों को राजा ने १०००) रुपये की थैली, इनकी कला पर प्रसन्न होकर उपहार में दी थी।

इनके पश्चात् ताजखां (डेरेदार) भवानीसिंह खलीफा नासिरखां इत्यादि पखावजी प्रसिद्ध होगये हैं।

पखावज की बनावट

दांया तबला और बांया डग्गा दोनों के निचले भाग मिलाकर एक जगह ढोलक की तरह रख दिये जांय तो पखावज का ही रूप बन जाता है। तबला और पखावज में एक भेद तो यह है कि पखावज में दांया और बांया अलग-अलग न होकर दोनों का आकाश (पोल) एक ही है। यही कारण है कि तबले की अपेक्षा पखावज में गूंज अधिक पाई जाती है, क्योंकि एक तरफ थाप देने से दूसरी ओर गूंज स्वयं उत्पन्न होती है। दूसरा भेद तबला और पखावज में यह है कि तबला के बोल बजाने में थाप का प्रयोग कम होता है और उँगलियों का काम अधिक होता है, किन्तु पखावज में थाप का काम अधिक महत्व रखता है और उँगलियों का काम कम होता है। पखावज में बांई ओर गीला आटा लगाया जाता है, जब स्वर नीचा करना होता है तो आटा कुछ अधिक लगाते हैं और ऊँचा स्वर करने के लिये आटा कम कर देते हैं।

तबला और पखावज मिलाने का ढंग लगभग एक सा ही है अतः उसे यहां दुहराने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

पखावज के बोल

सङ्गीत रत्नाकर ग्रन्थ में 'मृदङ्ग' के १६ वर्ण माने गये हैं, जिनका प्रमाण निम्नलिखित श्लोक से मिलता है:—

ङ वर्जितः क वर्गश्च टतवर्गौ रहावपि।
इति षोडशवर्णाः स्युरुभयोः पाटसंज्ञका ॥

अर्थात् क-ख-ग-घ-ट-ठ-ड-ढ-त-थ-द-ध-न-र-म-ल। किन्तु आधुनिक कलाकारों द्वारा मृदङ्ग के अक्षर-बोल दूसरे ही निश्चित किये गये हैं। जिन्हें ३ भागों में बांटा जाता है।

(१) **खुले बोल**—जिन अक्षरों को बजाने पर सुरीली आंस निकलती है, वे खुले बोल कहलाते हैं।

(२) **बन्द बोल**—जिनको बजाने के बाद सुरीली ध्वनि न निकलकर दबी हुई आवाज निकलती है, वे बन्द बोल कहे जाते हैं।

(३) **थाप**—जब स्याही के ऊपर वाले आधे भाग पर सब अँगुलियां मिलाकर पंजा मारा जाय और शीघ्र ही कनिष्ठका अँगुली की ओर वाला हथेली का भाग स्याही के किनारे पर आजाय, इस कृत्य को थाप या थप्पी कहते हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित मृदङ्ग के बोलों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, किन्तु आधुनिक मृदङ्ग वादक निम्नलिखित बोल मानते हैं। यद्यपि इनमें विभिन्न मत हैं, किन्तु ये ही अधिक उपयोगी मालुम होते हैं:—

मुख्य बोल—ता-त-नी-धु-ना-धा-इ-ध्धे-डी-ग-दिर्र-धें-म।

आश्रित बोल—रा-क-ग-ए-धु-गी-ला-थेई-ङा-की-टी-थर्र।

तानपूरा

गायकों के लिये तानपूरा (तम्बूरा) एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तार वाद्य है। इसमें किसी गाने की गत नहीं निकलती, केवल स्वर देने के लिये ही इसका प्रयोग किया जाता है। गायक अपने गले के धर्मानुसार इसमें अपना स्वर क़ायम कर लेते हैं और फिर इसकी झंकार के सहारे उनका गायन चलता रहता है।

अंग वर्णन

(१) **तुम्बा**—नीचे से गोल और ऊपर कुछ चपटा होता है। इसके अन्दर पोल होती है, जिसके कारण स्वर गूँजते हैं।

(२) **तबली**—तुम्बे के ऊपर का भाग, जिस पर ब्रिज लगा रहता है।

(३) **ब्रिज**—घुर्च या घोडी भी इसी को कहते हैं, इसके ऊपर तानपूरा के चारों तार डटे रहते हैं।

(४) **डाँड**—तुम्बे से जुडी हुई लकडी की पोली डंडी, इसमें खूँटियाँ लगी रहती हैं तथा तार इसके ऊपर खिंचे रहते हैं।

(५) **लगोट**—तुम्बे की पेंदी में १ कील लगी रहती है, इससे तानपूरा के चारों तार आरम्भ होकर खूँटियों तक जाते हैं।

(६) **अटी**—खूँटियों की ओर डाँड पर हड्डी की २ पट्टियां लगी होती हैं जिनमें से १ के ऊपर होकर तार जाते हैं, वह अटी कहलाती है।

(७) **तारगहन**—दूसरी पट्टी जो अटी के बराबर होती है, उसमें ४ सूराख होते हैं जिनमें से होकर चारों तार खूटियों तक जाते हैं, इसे तारगहन कहते हैं।

(८) **गुलू**—जिस स्थान पर तुम्बा और डाँड जुडे रहते हैं, इसे गुल या गुलू कहा जाता है।

(९) **खूँटियाँ**—अटी व तारगहन के आगे लकड़ी की ४ कुंजियां लगी होती हैं जिनमें तानपूरे के चारों तार बंधे रहते हैं, इन्हें खूँटियाँ कहते हैं।

(१०) **मनका**—ब्रिज और लगोट के बीच में तार जिन मोतियों में पिरोये होते हैं उन्हें मनका कहते हैं। इनकी सहायता से तारों में आवश्यकतानुसार थोडा सा उतार-चढाव करके स्वर मिलाये जाते हैं।

(१२) सूत--ब्रिज और तारों के बीच में धागे का टुकड़ा दबाया जाता है, इसे उचित स्थान पर लगाने से तानपूरे की झनकार खुली हुई और सुन्दर निकलती है। वास्तव में यह धागे ब्रिज की सतह को ठीक करने के लिये होते हैं, जिसके लिये गायक बहुधा ऐसा कहते हैं कि तानपूरे की जवारी खुली है। यहां पर जवारी का अर्थ ब्रिज की सतह से ही है।

तार मिलाना

तानपूरे में ४ तार होते हैं, इनमें से पहला तार मन्द्र सप्तक के पंचम (प़) में, बीच के दोनों तार (जोड़ी के तार) मध्य षडज (स) में और चौथा तार मन्द्र सप्तक के षडज (स़) में मिलाया जाता है। इस प्रकार तानपूरे के चारों तार प़ स स स़ इन स्वरों में मिलाये जाते हैं। जिन रागों में पंचम वर्जित होता है (जैसे ललित) उसमें पंचम वाला तार मध्यम से मिलाते हैं।

तानपूरे के प़ स स यह तीनों तार पक्के लोहे (स्टील) के होते हैं और चौथा तार (स़) पीतल का होता है। किसी-किसी तम्बूरे में पहला तार भी पीतल का होता है, जिसे मर्दानी या भारी आवाज़ के लिये लगाते हैं, किन्तु ज़नानी या ऊँचे स्वर की आवाज़ के लिये लोहे का ही ठीक रहता है।

तानपूरा छेड़ना

तानपूरा बजाने को तानपूरा 'छेड़ना' कहा जाता है। चारों तारों को दाहिने हाथ की पहिली या दूसरी अँगुली से छेड़ते हैं। चारों तार एक साथ नहीं छेड़े जाते बल्कि बारी-बारी से एक-एक तार छेड़ा जाता है।

तानपूरे की बैठक

विभिन्न गायकों के अलग-अलग ढङ्ग होते हैं। कोई एक घुटना नीचा और एक घुटना कुछ ऊँचा करके बैठकर तानपूरे को छेड़ते हैं, कोई तानपूरे को ज़मीन पर लिटाकर छेड़ते हैं। अनेक बड़े-बड़े गायक ऐसे हैं जो स्वयं गाते हैं और तानपूरा उनका शागिर्द या अन्य कोई व्यक्ति छेड़ता रहता है। इससे उन्हें गाते समय अपने भाव व्यक्त करने में सहायता मिलती है।

वायोलिन (बेला)

वायोलिन (Violin) या बेला एक विदेशी वाद्य है। गज से बजने वाले समस्त वाद्यों में आजकल इसे प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता है। इस यन्त्र की उत्पत्ति और आविष्कार के बारे में विभिन्न मत पाये जाते हैं।

जो लोग इसे विदेशी वाद्य मानते हैं उनके मतानुसार इसका आविष्कार यूरोप में १६ वीं शताब्दी के मध्य में हुआ और तभी से यह प्रचलित है।

एकमत के अनुसार 'वेला' को मूल रूप में भारतीय यंत्र कहा जाता है। इस मत के अनुयाइयों का कहना है कि लंकापति रावण ने एक तार वाला एक वाद्य यन्त्र ईजाद किया, उसे गज से ही बजाया जाता था और उसका नाम "रावण स्ट्रम" रखा गया। इसके पश्चात् ११ वीं शताब्दी के अन्त में भारतवर्ष होकर परशिया, अरेबिया, तथा स्पेन होता हुआ यह यन्त्र योरोप पहुंचा, यहां पर इसमें परिवर्तन करके, वर्तमान वायोलिन के रूप में इसका विकास किया गया।

एक पाश्चात्य विद्वान के मतानुसार ४०० वर्ष पहिले योरोप में (Voil) वॉइल नामक एक वाद्य यन्त्र का आविष्कार हुआ, जिसका प्रचार सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक रहा। बाद में इसी वायल यन्त्र के ढङ्ग पर वायोलिन बनाया गया। एक और मतानुसार १५६३ ई० में वेनिस नगर के एक ग्रामीण 'लीनारोली' ने "टेनर वॉयोलिन" का आविष्कार किया था, उसी के आधार पर इटली के ७ कलाकारों ने इसमें कुछ और विशेषताएं सम्मिलित करके इसे नवीन रूप दिया। कोई-कोई इसे जरमनी का आविष्कार भी बताते हैं। इस प्रकार वेला के सम्बन्ध में अनेक धाराणाएं पाई जाती हैं। कुछ भी सही यह तो मानना ही पडेगा कि अपने आधुनिक रूप में यह पूर्णरूपेण एक विदेशी वाद्य है। भारत में इसका प्रचार दिनों दिन बढ रहा है और अच्छे वेला-वादक भी अब कई होगये हैं।

वेला के विभिन्न भाग

वेला के मुख्य ६ भाग होते हैं—

(१) बॉडी (Body)—इसे वेला का शरीर समझिये, अन्दर से पोला होने के कारण इसमें आवाज गूंजती रहती है इसे बेली भी कहते हैं।

(२) फिंगर बोर्ड (Finger board)—इस पर अँगुलियों की सहायता से स्वर निकाले जाते हैं।

(३) टेलपीस (Tail Piece)—यह भाग है, जिसमें चार सूराख होते हैं, इन चारों सूराखों में होकर ४ तार खूंटियों तक जाते हैं।

(४) एण्डपिन (End Pin)—इसमें टेलपीस तात के द्वारा फंसा रहता है।

(५) ब्रिज (Bridge)—इसके ऊपर होकर तार खूंटियों की ओर जाते हैं।

(६) साउन्डपोस्ट (Sound Post)—यह वेला के अन्दर, ब्रिज के ठीक नीचे लगा रहता है।

गज (Bow) और उसके भाग

वेला जिस छडी से बजाया जाता है उसे "बो" कहते हैं, इसके ४ भाग होते हैं—

(१) गज की छडी (Stick) (२) बाल (Hair) जो कि इस छडी में कसे रहते हैं (३) स्क्रू (Screw) इस प्रकार का का पेच जिसे उल्टा या सीधा कसने से 'बो' (गज)

के बाल तनते हैं या ढीले होते हैं। (४) नट (Nut) इसमें बाल फंसे रहते हैं और जब पेच घुमाया जाता है तो यह सरकने लगता है, (५) हेड—यह 'बौ' का अन्तिम सिरा है।

रेज़न (Resins)

यह एक प्रकार का बिरोज़ा होता है, इस पर बो-(गज़) के बाल घिसकर तब बेला बजाते हैं, इससे आवाज स्पष्ट और सुन्दर निकलती है।

बेला के ४ तार और उन्हें मिलाने की पद्धति

बेला में कुल चार तार होते हैं जो क्रमशः G D A E कहलाते हैं, इनको मिलाने के ढङ्ग कई प्रकार के हैं।

प्रथम प्रकार—प़ सा प सां इस प्रकार मिलाते हैं यानी मन्द्र सप्तक का पंचम, मध्य सप्तक का षडज, मध्य सप्तक का पंचम और तार सप्तक का षडज।

दूसरा प्रकार—सा़ प़ सा प इस तरह मिलाते है यानी पहिले दोनों मन्द्र सप्तक के षडज पंचम में और बाकी २ मध्य सप्तक के षडज पंचम मे।

तीसरा प्रकार—म़ सा प रें इस प्रकार मिलाते हैं। भारतवर्ष में अधिकतर यह तीसरा प्रकार ही प्रचलित है।

इसराज

'इसराज' एक प्रकार से सितार और सारंगी का ही रूपान्तर है। इसका ऊपरी भाग सितार से मिलता है और नीचे का भाग सारंगी के समान होता है। इसराज को दिलरुबा भी कहते हैं। यद्यपि इसकी शक्ल में थोड़ा सा अन्तर होता है किन्तु बजाने का ढङ्ग एक सा ही होता है। इसीलिये इसराज और दिलरुबा पृथक साज नहीं माने जाते।

इसराज के मुख्य अङ्ग

(१) तूंबा—(खाल से मढ़ा हुआ होता है) इसके ऊपर घोड़ी या ब्रिज लगा रहता है।

(२) लंगोट—तार बांधने की कील होती है।

(३) डांड—इसमें परदे बंधे रहते हैं।

(४) घुर्च—खाल से मढ़ी हुई तबली के ऊपर का हड्डी का टुकड़ा जिस के ऊपर तार रहते हैं; इसे घोड़ी या ब्रिज भी कहते है।

(५) अटी—सिरे की पट्टी, जिस पर होकर तार गहन के भीतर से खूंटियों तक जाते हैं।

(६) खूंटियां—तारों को बांधने और कसने के लिये होती हैं।

इसराज के ४ तार

बाज का तार—यह मन्द्र सप्तक के मध्यम (म) में मिलाया जाता है।

दूसरा व तीसरा तार—यह दोनों तार मन्द्र सप्तक के षडज (स) में मिलाये जाते हैं, इन्हें जोडी के तार कहते हैं।

चौथा तार—मन्द्र सप्तक के पचम (प) में मिलता है, इस प्रकार इसराज के चारों तार म स स प में मिलाये जाते हैं, कोई-कोई कलाकार म स प स या म म प प इस प्रकार भी मिलाते हैं। इनके अतिरिक्त इसराज में तरब के तार और होते हैं, जिन्हें भिन्न-भिन्न रागों के अनुसार मिला लिया जाता है।

इसराज के परदे

इसराज में १६ परदे होते हैं, जोकि सितार की भाति पीतल या स्टील के बने हुए होते हैं। यह परदे निम्नलिखित स्वरों में होते हैं —

मं	प	ध	नि	नि	सा	रे	ग	म	मं	प	ध	नि	सा	रें	ग
१	२	३	४	५	६	७	८	६	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६

सितार की भाति इसराज में कोमल स्वर बनाने के लिये परदों को खिसकाने की आवश्यकता नहीं पडती। कोमल स्वरों के स्थान पर अँगुली रख देने से ही काम चल जाता है।

इसराज बजाने में बायें हाथ की तर्जनी और मध्यमा अर्थात् पहली व दूसरी अँगुलिया काम देती हैं। गज को दाहिने हाथ से पकडते हैं। इसराज को बाये कन्धे के सहारे रखकर बजाना चाहिये। प्रारम्भ में गज धीरे-धीरे चलाना चाहिये तथा गज चलाते समय तार को अधिक जोर से नहीं दबाना चाहिये। पहिले स्वर साधन का अभ्यास हो जाने पर गतें निकालने की चेष्टा करनी चाहिए।

बांसुरी

यह भारतवर्ष का अति प्राचीन फूक का वाद्य है। भगवान कृष्ण ने अपने अधरों से लगाकर इसे अमरत्व प्रदान कर दिया है।

आजकल बासुरी कई प्रकार की मिलती हैं, किन्तु हम यहा पर उसी का विवरण दे रहे हैं, जिसमें ६ सूराख होते हैं और अंग्रेजी ढग पर उसकी ट्यून की हुई होती है। यद्यपि देशी बासुरी भी काफी प्रचलित हैं, किन्तु उसे बासुरी के कुशल वादक ही पहिचान सकते हैं कि इसकी ट्यून ठीक है या नहीं। बहुत से कलाकार बास की बासुरी अपने

लिए स्वयं बना लेते हैं; किन्तु सभी के लिये तो ऐसा करना सम्भव नहीं हो सकता, अतः ६ सूराख वाली बांसुरी बजाने की विधि दी जारही है।

बांसुरी में सरगम निकालने की विधि

सर्व प्रथम बांसुरी के सब सूराखों को इस प्रकार बन्द करिये कि बांये हाथ की पहली-दूसरी-तीसरी अँगुलियां ऊपर के ३ सूराखों पर जमाई जांय। फिर दाहिने हाथ की पहली-दूसरी-तीसरी अँगुलियों से नीचे के तीनों सूराख बन्द किये जाँय। ध्यान रहे कि सूराखों को अँगुलियों की पोर से अच्छी तरह दबाना चाहिए। यदि बीच में कोई भी उंगुली सूराख से तनिक भी हट गई तो आवाज़ फटी-फटी निकलेगी।

सब सूराख उपरोक्त विधि से बन्द करने के बाद मुँह से हलकी फूँक लगाइये, इसमें सब सूराख बन्द होने पर जो स्वर निकलेगा, वह मन्द्र सप्तक का प़ होगा। बाकी स्वर एक-एक अँगुली क्रमानुसार उठाने पर इस प्रकार निकलेंगे:—

प़—सब सूराख बन्द करने पर।
ध़— नीचे का १ सूराख खोलने पर।
नि़ नीचे के २ " "
सा—नीचे के ३ " "
रे— नीचे के ४ " "
ग—नीचे के ५ " "
मं—सब सूराख खोल देने पर।

इस प्रकार ६ सूराखों से प़ ध़ नि़ सा रे ग मं यह सात स्वर निकले। इनमें मध्यम तीव्र है, बाकी स्वर शुद्ध हैं। मध्यमको शुद्ध बनाने के लिये ऊपर का सिर्फ आधा सूराख दबाना पड़ता है तथा अन्य स्वरों को कोमल बनाने के लिए भी सूराखों का अर्ध प्रयोग किया जाता है।

इसके आगे के स्वर यानी मध्य सप्तक के प ध नि और तार सप्तक के स्वर निकालने के लिए क्रम बिलकुल यही रहता है, सिर्फ मुँह की फूँक का वज़न बढ़ा दिया जाता है। उदाहरणार्थ—सब सूराख बन्द करने पर हलकी फूंक से मन्द्र पंचम (प़) निकला है तो फूंक का वजन दुगुना कर देने पर वही मध्य सप्तक का पंचम (प) बन जायगा। इसी प्रकार अन्य स्वर भी फूंक के दबाव के आधार पर आगे की सप्तक के निकलेंगे।

बांसुरी पर पहले यमन राग के स्वरों सा रे ग मं प ध नि का ही अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि यमन राग में मध्यम तीव्र और बाकी स्वर शुद्ध हैं और बांसुरी में भी पूरे सूराखों के खुलने पर यही स्वर आसानी से निकलते हैं। बाद में अभ्यास होजाने पर आधे-आधे सूराखों के प्रयोग से अन्य विकृत स्वर भी निकलने लगेंगे।

यन्त्र-वादकों के गुण दोष

प्राचीन ग्रन्थकारों ने वाद्य यन्त्र बजाने वालों के गुण-दोषों का जो वर्णन किया है, उनका भावार्थ इस प्रकार है —

वादक के गुण

(१) गीत, वाद्य, नृत्य में पारगत हो।

(२) भिन्न-भिन्न वाद्यों (साज़ों) को बजाने में कुशल हो।

(३) वाद्य यन्त्र बनाने की जानकारी रखने वाला हो।

(४) ग्रह ज्ञान रखने वाला हो।

(५) अँगुली संचालन में कुशल हो।

(६) ताल और लय का ज्ञान रखता हो।

(७) विभिन्न वाद्य यन्त्रों के विषय में पूर्ण ज्ञान हो।

(८) हस्त संचालन में कुशल हो।

(९) किस वाद्य यन्त्र को बजाने में कौनसे शारीरिक अवयवों से सहायता मिलती है, इसका ज्ञान रखने वाला हो।

(१०) स्वरों के उतार-चढ़ाव का ज्ञान रखने वाला हो।

वादक के दोष

जिन वादकों में उपरोक्त १० गुण नहीं है या जो वादक उक्त बातों का ज्ञान नहीं रखते और फिर भी किसी वाद्य को बजाने की चेष्टा करते हैं, वे सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। इस प्रकार उक्त १० गुणों का अभाव ही १० दोषों में बताया गया है।



इन्टर और विशारद कोर्स के लिये कुछ

संगीत विद्वानों का संक्षिप्त परिचय

जयदेव

'गीतगोविन्द' के यशस्वी लेखक जयदेव का नाम साहित्य और सङ्गीत जगत में आदर के साथ लिया जाता है। आप उच्च कोटि के कवि होने के साथ-साथ वाग्गेयकार और सङ्गीतज्ञ भी थे। भारतीय संगीत में आपको उच्चस्थान प्राप्त है।

जयदेव कवि का जन्म बंगाल के केन्दुला ग्राम में ईसा की बारहवीं शताब्दी में हुआ था, आपके पिता का नाम श्री भजीयदेव था। उस युग के वैष्णव सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध महात्मा श्री यशोदानन्दन के आप शिष्य थे। आपके गुरुजी ब्रज में निवास करते थे।

बाल्यकाल में ही माता-पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण, अल्पायु में ही जयदेव घर-बार छोड़कर जगन्नाथपुरी चले गये और वहां के पुरुषोत्तमधाम में निवास करने लगे। इसके पश्चात् आपने अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थस्थानों की यात्रा की और कुछ समय ब्रज भूमि में भी भ्रमण किया। कुछ समय बाद आपका विवाह होगया और अपनी पत्नी के साथ आपने देश का पर्यटन किया। तत्पश्चात् आपने 'गीत गोविन्द' नामक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ की रचना की।

'गीतगोविन्द' जयदेव की एक अमर कलाकृति है। इसके अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में तो हो ही चुके हैं, साथ ही, लेटिन, जर्मन और अँग्रेजी भाषाओं में भी इसके भाषान्तर हो चुके हैं। इस से भली-भांति विदित होता है कि यह ग्रंथ कितना महत्वपूर्ण है।

जयदेव कवि गायन एवं नृत्य के भी प्रेमी थे, इसलिये 'गीतगोविन्द' में प्रत्येक अष्टपदी पर राग व ताल का निर्देश मिलता है। उनकी कविताएं आज भी अनेक वैष्णव मंदिरों में राग और ताल सहित गायी जाती है। दक्षिण के कुछ मन्दिरों में तो नृत्य के साथ आपकी अष्टपदी अभिनीत की जाती हैं, जिनमें ताल और लय के साथ-साथ भाव प्रदर्शन भी होता है। गीतगोविन्द की मूल रचना संस्कृत में करके आपने कुछ सङ्गीत प्रबन्ध हिन्दी भाषा में भी रचे। इसका प्रमाण आपके बनाये हुए कुछ ध्रुवपदों द्वारा अब भी मिलता है।

कहा जाता है कि आप एक राज दर्बार में सम्मानपूर्वक रहते थे; किन्तु अपनी पत्नी (पद्मावती) के स्वर्गवास हो जाने के बाद, राजाश्रय छोड़कर अपने गांव में चले आये और कुछ समय तक साधु जीवन व्यतीत करते-करते अपनी जन्म भूमि में ही परलोक वासी होगये। उस गांव में आपकी एक समाधि है, जहां प्रतिवर्ष मकर संक्रान्ति के दिन अब तक मेला लगता है।

शार्ङ्गदेव

भारतीय सङ्गीत के प्राचीन एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ "सङ्गीत रत्नाकर" के रचयिता श्री शार्ङ्गदेव १३ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (१२१०-१२४७) में देवगिरी (दक्षिण) के बादशाह के दर्बार मे रहते थे। आपके बाबा काश्मीरी ब्राह्मण थे, जो बाद मे आकर देवगिरी मे बस गये।

इनके पिता श्री सोढला, यादव राजा भिल्लमा (११८७-११६१) ई० और सिंहना (१२१०-१२१७) ई० के दर्बार मे उच्च कर्मचारी थे। शार्ङ्गदेव के प्रति राजा का भी प्रेम था। इससे प्रतीत होता है कि आपकी शिक्षा-दीक्षा राजाश्रय मे ही हुई।

आपने 'सङ्गीत रत्नाकर' नामक ग्रन्थ म नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना जाति इत्यादि का भली-भांति विवेचन किया है। अनेक पूर्व लिखित ग्रन्थों की सामग्री लेकर तत्कालीन उत्तरी दक्षिणी सङ्गीत का समन्वय किया है। आपने कुल १२ विकृत स्वर माने हैं तथा सात शुद्ध और ग्यारह विकृत इस प्रकार १८ जातिया मानी हैं। इन जातियों का विस्तृत वर्णन करने के बाद ग्राम रागों को जातियों से उत्पन्न बताया है और ग्राम रागों से ही अन्य राग विकसित बताये हैं।

शार्ङ्गदेव के स्वर और राग आधुनिक स्वर और रागों मे मेल नहीं खाते, कारण यह है कि उन्होंने जो श्रुतिअन्तर कायम किये थे, वे आज के श्रुतिअन्तर से भिन्न हैं। यद्यपि 'सङ्गीत रत्नाकर' में वर्णित राग आज उपयोग मे नहीं आ सकते, तथापि पुस्तक के अन्य भागों में जो विस्तृत विवरण इस विद्वान ने दिया है उससे आधुनिक समय में बडी सहायता मिलती है। कुछ विद्वानों ने शार्ङ्गदेव का शुद्ध थाट 'मुखारी' जिसे आधुनिक कर्नाटक सगीत मे 'कनकागी' भी कहते हैं, स्वीकार किया है।

अमीर खुसरो

अमीर खुसरो का पिता अमीर मोहम्मद सैफुद्दीन बलखन का निवासी था। हिन्दुस्तान में आने के पश्चात् इसके यहा अमीर खुसरो का जन्म हुआ। एक लेखक के मतानुसार आपका जन्म ६५३ हिजरी (१२३४ ई०) है तथा अन्य लेखक १२५३ ई० मानते हैं। खुसरो का जन्म स्थान एटा जिले मे 'पटियाली' नामक स्थान का माना जाता है। खुसरो अत्यन्त चतुर और बुद्धिमान था। उस काल के मान मे योग्य शिक्षा पाने के पश्चात अमीर खुसरो गुलाम घराने के दिल्ली पति गयासुद्दीन बलबन के आश्रय मे रहा। किन्तु कुछ दिनों बाद गुलाम घराने का अन्त होगया और सल्तनत खिलजी वश के कब्जे में आगई, अत खुसरो भी खिलजी वश का नोकर हो गया।

अलाउद्दीन खिलजी ने १२६४ ई० में जब देवगिरी के राजा पर चढाइ की उस समय अमीर खुसरो भी उसके साथ था। इस लड़ाई मे देवगिरी के राजा की पराजय हुई। देवगिरी मे उस समय गोपाल नायक नामक सङ्गीत का एक उत्कृष्ट विद्वान रहता था। खुसरो ने एक छल पूर्ण प्रस्ताव रखकर राज दर्बार में उससे सङ्गीत प्रतियोगिता मांगी और उसे आपने चातुर्य बल से पराजित कर दिया। किन्तु वह गोपाल नायक की कला का हृदय से आदर करता था, इसलिये दिल्ली लौटते समय गोपाल नायक को भी उसके साथ आना पडा।

दिल्ली आकर खुसरो ने सङ्गीत कला में अपूर्व क्रांति पैदा की। इसने दक्षिण के शुद्ध स्वर सप्तक की योजना कर उसे प्रचलित किया। लोक रुचि के अनुकूल नये-नये रागों की रचना की। राग वर्गीकरण का एक नवीन प्रकार राग में ग्रहीत स्वरों से निकाला। इसने रागों में गाने योग्य तद्देशीय भाषा में नये-नये गीतों की रचना की। यही गीत आगे चलकर 'ख्याल' के नाम से प्रसिद्ध हुए, अतः ख्याल का जन्म दाता भी खुसरो को मानते हैं।

इसके पश्चात् अमीर खुसरो ने वाद्ययन्त्रों में भी काफ़ी परिवर्तन किया। दक्षिणी वीणा में चार तार की बजाय तीनतार कर दिये, तारों का क्रम उलट कर उसमें अचल पर्दे लगा दिये। इसके अतिरिक्त द्रुतलय में बजाने को आसानी पैदा करने के लिये इसकी गतें स्थिर कीं और उन्हें ताल में निबद्ध किया। प्राचीन वीणा की अपेक्षा यह परिवर्तित वाद्य अधिक लोकप्रिय होगया। इस वाद्य में तीन तार होने के कारण इसका नाम सहतार (सितार) फ़ारसी नाम रक्खा। वर्तमान 'सितार' इसी वाद्य का रूप कहना चाहिये।

अमीर खुसरो ने 'सङ्गीत' विषय पर फ़ारसी की कई पुस्तकें भी लिखीं। भारत और फ़ारस के सङ्गीत के मिश्रण से कई राग भी ईजाद किये, जिनमें—साजगिरी, उश्शाक़, जिला, सरपरदा आदि स्मरणीय हैं। खुसरो ने गाने की एक नवीन प्रणाली को भी जन्म दिया जिसे क़व्वाली कहते है। इस प्रकार सङ्गीत के क्षेत्र में अमिट कार्य करके लगभग ७२ वर्ष की आयु में अमीर खुसरो स्वर्गवासी होगये।

गोपाल नायक

अलाउद्दीन खिलजी ने सन् १२९४ ई० में देवगिरी (दक्षिण) पर चढ़ाई की थी, उस समय वहां रामदेव यादव नामक राजा राज्य करता था। इसी राजा के आश्रय में गोपाल नायक दरबारी गायक रहता था। इसी समय गोपाल नायक और अमीर खुसरो की सङ्गीत प्रतियोगिता हुई। खुसरो के छल और चातुर्य द्वारा गोपाल नायक को पराजित होना पड़ा और उसने अपनी हार स्वीकार करली। किन्तु अमीर खुसरो हृदय से इसकी विद्वता का लोहा मानता था, अतः दिल्ली वापिस आते हुए उसने नायक को भी साथ ले लिया। दिल्ली में गोपाल नायक को गायक के रूप में पूर्ण सम्मान प्राप्त हुआ। गोपाल नायक के विषय में एक किंवदन्ती अबतक चली आ रही है कि, जब कभी यह दिल्ली से बाहर जाते थे, तब अपनी गाड़ी के बैलों के गले में समयानुसार, रागवाचक ध्वनि पैदा करने वाले घन्टे बांध दिया करते थे। चतुर कल्लिनाथ ने भी 'रत्नाकर' ग्रंथ के तालाध्याय की टीका में ताल व्याख्या के अन्तर्गत गोपाल नायक के नाम का उल्लेख किया है, इससे प्रमाणित होता है कि उस समय के सङ्गीत विद्वानों में गोपाल नायक का काफ़ी सम्मान था।

इतिहास के संकेतानुसार गोपाल नायक सन् १२९४ और १२९५ ई० के बीच दिल्ली पहुँचे। उस समय के उपलब्ध संस्कृत ग्रंथों में ध्रुपद नामक प्रबन्ध का उल्लेख नहीं मिलता, इससे सिद्ध होता है कि गोपाल नायक ध्रुपद नहीं गाते थे। उनके समय में सम्भवतः अन्य प्रबन्ध प्रचलित थे, जो संस्कृत, तामिल, तैलगू आदि भाषाओं में थे।

गोपाल नायक जाति के ब्राह्मण थे। देवगिरी के पश्चात् आपके जीवन का शेष भाग दिल्ली में ही व्यतीत हुआ और वहीं इनकी मृत्यु भी हो गई।

स्वामी हरिदास

जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास को हिन्दी साहित्य का संक्रातिकालीन साधक कहा जाता है, उसी प्रकार स्वामी हरिदास जी को भी भारतीय सङ्गीत का रक्षक कहना पड़ेगा। स्वामी हरिदास का जन्म भाद्रपद शुक्ला अष्टमी सम्वत् १५६६ में, उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले में, खैर वाली सड़क पर एक छोटे से गाव में हुआ था। तभी से उस गाव का नाम भी हरिदासपुर हो गया। आपके पिता का नाम श्री आशुधीर था, जो कि मुल्तान जिले के उच्च ग्राम के निवासी थे। आप सारस्वत ब्राह्मण कुल के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। श्री हरिदासजी की माता का नाम गङ्गा था।

बाल्यकाल से ही सङ्गीत के संस्कार स्वाभाविक रूप से आपके अन्दर विद्यमान थे। आगे चलकर यह संस्कार एक दम विकसित हुये और कृष्ण भक्ति में लीन हो गये। २५ वर्ष की तरुण अवस्था में ही आप वृन्दावन आ गये और निधुवन निकुंज की एक झोंपड़ी में निवास करने लगे। यहाँ पर एक मिट्टी का बर्तन और एक गुदड़ी, यही स्वामी जी की सम्पत्ति थी।

ब्रज रेणु के कण-कण में, जमुना के नीर में, गगन मण्डल के चांद तारों में, आप भगवान कृष्ण की लीलाओं की मनोरम झांकियां करने लगे। चारों ओर से गुंजित होने वाले मुरली के मधुर नाद ने स्वामी जी को आत्म विभोर कर दिया।

वृन्दावन में निवास करके स्वामी जी ने ब्रज भाषा में अनेक ध्रुपद गीतों की रचना की एवं उन्हें शास्त्रोक्त राग तथा तालों में गाकर जिज्ञासुओं को तृप्त किया।

यों तो स्वामी जी का सङ्गीत-प्रसाद अनेक व्यक्तियों को मिला होगा, किन्तु इनके मुख्य शिष्यों के नाम 'नाद विनोद' नामक ग्रंथ में इस प्रकार पाये जाते हैं —

बैजू, गोपाल लाल, मदन राय, रामदास, दिवाकर पण्डित, सोमनाथ पण्डित, तन्ना मिश्र (तानसेन) और राजा सौरसेन।

मद्रास प्रांत को छोड़कर समस्त देश में वर्तमान प्रचलित शास्त्रीय सङ्गीत स्वामी जी एवं उनके शिष्यों की ही विभूति है। सङ्गीत कल्पद्रुम में बहुत सी रचनाएँ स्वामी जी की ही रची हुई प्रतीत होती हैं। आजकल ब्रज में जो रासलीला प्रचलित है उसको स्वामी हरिदास की ही देन समझना चाहिये। रास के पदों की गायन युक्त परिपाटी के प्रवर्तक आप ही थे जो आज तक लोकप्रिय होकर धार्मिक भावनाओं को कलात्मक रूप दे रही है।

नाभादास जी के एक छप्पय से प्रतिध्वनित होता है कि स्वामी हरिदास के सङ्गीत को सुनने के लिये बड़े-बड़े राजा-महाराजा उनके द्वार पर खड़े रहते थे। एक बार सम्राट अकबर ने भी तानसेन के साथ आकर गुप्त रूप से स्वामी जी का गायन सुना था।

अन्त में सम्वत् १६६४ वि० में अर्थात् ९५ वर्ष की अवस्था पाकर आप इस भौतिक शरीर को त्याग कर सदैव के लिये निधिवन की कुन्जों में विलीन हो गये।

तानसेन

निःसन्देह, सङ्गीत शब्द से जिन व्यक्तियों को थोड़ा भी प्रेम होगा वे तानसेन के नाम से भी भली भांति परिचित होंगे। यद्यपि इस महापुरुष की मृत्यु को हुए लगभग चारसौ वर्ष हो चुके फिर भी सङ्गीत संसार में इसकी विमल कीर्ति आकाश के सूर्य के समान प्रदीप्त हो रही है। आज हम नीचे लिखी पंक्तियों में इस महान् सङ्गीतकार की जीवनी का संक्षिप्त परिचय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं:—

सन् १५०० ई० के लगभग की बात है, ग्वालियर में मुकन्दराम पाण्डे नामक ब्राह्मण निवास करते थे, कोई-कोई इन्हें मकरन्द पांडे के नाम से भी पुकारता था। पांडित्य और सङ्गीत विद्या में लोकप्रिय होने के साथ-साथ आपको धन-धान्य भी यथेष्ट रूप में प्राप्त था। यदि कोई चिन्ता थी तो सन्तान हीन होने की, आपकी पत्नी भी पूर्ण साध्वी एवं कर्मनिष्ठा थीं। दम्पति को संतान की चिन्ता हर समय व्यग्र बनाये रहती। आख़िरकार वह समय भी आ गया, जबकि इनकी चिन्ता एक दिन हमेशा के लिये समाप्त हो गई। मुहम्मद ग़ौस नामक एक सिद्ध फ़क़ीर के आशीर्वाद से सन् १५३२ ई० में, ग्वालियर से सात मील दूर एक छोटे से गांव "बेहट" में, इन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। बालक का नाम 'तन्ना' मिश्र रक्खा गया।*

बच्चे का पालन पोषण बड़े लाड़-प्यार से हुआ—एक मात्र संतान होने के कारण मां-बाप ने किसी प्रकार का कठोर नियंत्रण भी नहीं रक्खा। फल स्वरूप दस वर्ष की अवस्था तक बालक 'तन्ना' मिश्र पूर्ण रूपेण स्वतंत्र, सैलानी एवं नटखट प्रकृति का होगया। इस बीच इसके अन्दर एक आश्चर्यजनक प्रतिभा देखी गई; वह थी आवाजों की हूबहू नक़ल करना। किसी भी पशु-पक्षी की आवाज़ की असल कापी कर लेना इसका खेल था। शेर की बोली बोलकर अपने बाग़ की रखवाली करने में इसे बड़ा मज़ा आया करता था।

एक दिन बृन्दावन के महान् सङ्गीतकार सन्यासी स्वामी हरिदास जी अपनी शिष्य मण्डली के साथ-साथ उक्त बाग़ में होकर गुज़रे तो बालक 'तन्ना' ने एक पेड़ की आड़ में छुपकर शेर की दहाड़ लगाई। डर के मारे सब लोगों के दम फूल गये। स्वामी जी को उस स्थान पर शेर रहने का विश्वास नहीं हुआ और तुरन्त खोज की। दहाड़ता हुआ बालक मिल गया। बालक के इस कौतुक पर स्वामी जी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने जब अन्य पशु-पक्षियों की आवाज़ भी बालक से सुनी तो मुग्ध हो गये और उसके पिता जी से बालक को सङ्गीत शिक्षा देने के निमित्त मांगकर अपने साथ ही वृन्दावन ले आये।

गुरु कृपा से १० वर्ष की अवधि में ही बालक तन्ना धुरंधर गायक बन गया और यहीं इसका नाम 'तन्ना' की बजाय 'तानसेन' हो गया। गुरुजी का आशीर्वाद पाकर तानसेन ग्वालियर लौट आये। इसी समय इनके पिता जी की मृत्यु हो गई। मृत्यु से पूर्व पिता ने तानसेन को उपदेश दिया कि तुम्हारा जन्म मुहम्मद ग़ौस नामक फ़क़ीर की कृपा से हुआ है, इसलिये तुम्हारे शरीर पर पूर्ण अधिकार उसी फ़क़ीर का है। अपनी ज़िन्दगी में उस फ़क़ीर की आज्ञा की कभी अवहेलना मत करना।

पिता का उपदेश मानकर तानसेन मौहम्मद ग़ौस फ़क़ीर के पास आ गये। फ़क़ीर साहब ने तानसेन को अपना उत्तराधिकारी बनाकर अपना अतुल वैभव आदि सब कुछ उन्हें

* तानसेन की जन्म तिथि तथा सन् के बारे में विविध मत पाये जाते हैं, कुछ लेखक इनका जन्म सन् १५०६ और कोई १५२० ई० बताते हैं।

सौंप दिया और अब तानसेन ग्वालियर मे ही रहने लगे। थोडे दिनो बाद राजा मानसिंह की विधवा पत्नी रानी 'मृगनयनी' से तानसेन का परिचय हुआ। रानी मृगनयनी भी बडी मधुर एवं विदुषी गायिका थीं, वह तानसेन का गायन सुनकर बहुत प्रभावित हुई। उन्होंने अपने सङ्गीत मन्दिर म शिक्षा पाने वाली हुसेनी ब्राह्मणी नामक एक सुमधुर गायिका लडकी के साथ तानसेन का विवाह कर दिया।

विवाह के पश्चात् तानसेन पुन अपने गुरुजी के आश्रम वृन्दावन मे शिक्षा प्राप्त करने पहुचे। इसी समय फकीर मोहम्मद गौस का अन्तिम समय निकट आ गया। फलस्वरूप गुरुजी के आदेश पर तानसेन को तुरन्त ग्वालियर वापिस आना पड़ा। फकीर साहब की मृत्यु हो गइ और अब तानसेन एक विशाल सम्पत्ति के अधिकारी बन गये। अब वह ग्वालियर में रहकर आनन्दपूर्वक गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे। इनके चार पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ। पुत्रों का नाम—सुरतसेन, तरङ्गसेन, शरतसेन और बिलास खा तथा लड़की का नाम सरस्वती रक्खा गया। तानसेन की सारी सन्तान सङ्गीतकला के संस्कार लेकर पैदा हुई। सभी बच्चे उत्कृष्ट कलाकार हुए।

सङ्गीत साधना पूर्ण होने के बाद सबसे प्रथम तानसेन को रीवा नरेश रामचन्द्र (राजाराम) अपने दरबार मे ले गये। इन्हीं दिनो तानसेन का सौभाग्य सूर्य चमक उठा। बादशाह अकबर सिंहासनारूढ हुए। महाराज रामचन्द्र और अकबर का प्रगाढ दोस्ताना था, अत महाराज ने तानसेन जैसे दुर्लभ रत्न को बादशाह अकबर की भेंट कर दिया। सन् १५५६ ई० में तानसेन अकबर के दरबार मे दिल्ली आ गये। बादशाह ऐसे अमूल्य रत्न को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और तानसेन को उसने अपने नवरत्नो मे सम्मिलित कर लिया।

यह तानसेन का शौर्यकाल था। बादशाह के अटूट स्नेह और कला का यथेष्ट सम्मान पाकर तानसेन की यश पताका उन्मुक्त होकर लहराने लगी। अकबर तानसेन के सङ्गीत का गुलाम बन गया। कलापारखी अकबर तानसेन की सङ्गीत माधुरी मे डूब गया। बादशाह पर तानसेन का ऐसा पक्का रङ्ग सवार देखकर दूसरे दरबारी गवैये जलने लगे। और एक दिन उन्होंने तानसेन के विनाश की योजना बना ही डाली। यह सब लोग बादशाह के पास पहुच कर कहने लगे कि हुजूर हमें तानसेन से 'दीपक राग' सुनवाया जाय और आप भी सुनें। इस राग को ठीक-ठीक तानसेन के अलावा और कोई नहीं गा सकता। बादशाह राजी हो गये। तानसेन द्वारा इस राग का अनिष्टकारक परिणाम बताये जाने और लाख मना करने पर भी अकबर की राजहट नहीं टली और उसे दीपक राग गाना ही पड़ा। राग जैसे ही शुरू हुआ गर्मी बढी और धीरे-धीरे वायुमण्डल अग्निमय हो गया। सुनने वाले अपने-अपने प्राण बचाने को इधर-उधर छुप गये, किन्तु तानसेन का शरीर अग्नि की लपटों से जल उठा। उसी समय तानसेन अपने घर भागे वहा उनकी लड़की तथा एक गुरु भगिनी ने मेघराग गाकर उनके जीवन की रक्षा की। इस घटना के कई मास पश्चात् तानसेन का शरीर स्वस्थ हुआ। अकबर भी अपनी गलती पर बहुत पछताया।

तानसेन के जीवन में—पानी बरसाने, जगली पशुओं को बुलाने, रोगियो को ठीक करने आदि की अनेक चमत्कारपूर्ण घटनायें हुई। यह निर्विवाद सत्य है कि गुरु कृपा से उसे बहुत से राग रागनिया सिद्ध थे और उस समय देश में तानसेन जैसा दूसरा कोई सङ्गीतज्ञ नहीं था। तानसेन ने व्यक्तिगत रूप मे कई रागो का निर्माण भी किया, जिनमे दरबारी-कान्हड़ा, मियां की सारङ्ग, मियां मल्लार आदि उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार अमर सङ्गीत की सुखद त्रिवेणी बहाता हुआ यह महान् सङ्गीतज्ञ मृत्यु के निकट भी आ पहुँचा। दिल्ली में ही तानसेन ज्वर से पीड़ित हुए; अन्तिम समय जानकर इन्होंने ग्वालियर जाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु बादशाह के मोह और स्नेह के कारण तानसेन फरवरी सन् १५८५ ई० में दिल्ली में ही स्वर्गवासी हुए। इच्छानुसार तानसेन का शव ग्वालियर पहुँचा कर फकीर मोहम्मद गोस की कब्र के बराबर समाधी बनादी गई। तानसेन की मृत्यु के पश्चात् उनका कनिष्ठ पुत्र बिलास खां, तानसेन के सङ्गीत को जीवित रखने और उसकी कीर्ति को प्रसारित करने में समर्थ हुआ।

बैजूबावरा

यह सुप्रसिद्ध गायक तानसेन का मित्र और एक दृष्टि से तानसेन का प्रतिद्वन्दी भी था और अकबर बादशाह के समय (१५५६-१६०५ ई०) दिल्ली में रहता था। यह उसी काल के प्रसिद्ध गायक गोपाललाल का भी मित्र था। बैजू ने अनेक ध्रुपद बनाये हैं. जिनमें गोपाललाल, तानसेन और बादशाह अकबर का नामोल्लेख किया हुआ मिलता है। विद्यार्थियों को यह भी मालुम होना चाहिये कि 'नायक बैजू' और 'बैजूबावरा' ये दो भिन्न-भिन्न गायक थे और भिन्न-भिन्न कालों में हुए हैं। बैजूबावरा ने कभी बादशाह की नौकरी स्वीकार नहीं की। १६ वीं शताब्दी में अकबर के राज्यकाल में ही यह स्वर्गवासी हो गये।

सदारंग-अदारंग

ख्याल की बहुतसी चीज़ों में "सदा रंगीले मोमद सा" ऐसा नाम कई बार देखने में आता है। १८ वीं शताब्दी में न्यामतखां नाम के एक प्रसिद्ध बीनकार हो गये हैं। यह अपनी बनाई हुई चीज़ों में उस समय के बादशाह मोहम्मद शाह का नाम डाल दिया करते थे। बादशाह को प्रसन्न करने के लिए ही वे ऐसा किया करते थे। न्यामतखां अपना उपनाम 'सदारंगीले' रखकर साथ में बादशाह का नाम जोड़ भी दिया करते थे। 'सदारंगीले' को ही सदारङ्ग भी कहा जाता था। न्यामतखां (सदारङ्ग) के ख़ान्दान के बारे में बताया जाता है कि ये तानसेन की पुत्री के ख़ान्दान में दसवे व्यक्ति थे। इनके पिता का नाम लालखानीखां और बाबा का नाम खुशालखां था।

यद्यपि ख्याल रचना का कार्य सर्व प्रथम अमीर खुसरो ने शुरू किया था, किन्तु उस समय ख्याल-रचना विशेष लोकप्रिय न हो सकी। इसके बाद सुल्तानहुसैन शर्की, बाजबहादुर, चंचलसेन, चांदखां, सूरजखां ने भी यही कार्य करने की चेष्टा की, किन्तु उन्हें भी विशेष सफलता न मिल सकी। न्यामतखां ने उनकी इन असफलताओं का कारण ढूंढ़ निकाला। इन्होंने अनुभव किया कि जब तक कविता में बादशाह का नाम न डाला जायेगा, तब तक वे अच्छी तरह प्रचलित नहीं हो सकेंगी। साथ ही इन्हें रूठे हुए बादशाह को भी खुश करना था, क्योंकि वेश्याओं को तालीम न देने पर एक बार बादशाह इनसे नाराज़ हो गये थे, अतः वे उपनाम "सदारंगीले" के साथ बादशाह का नाम तो डालने लगे, किन्तु इसकी खबर बादशाह को न होने दी कि यह कविता किसकी बनाई हुई है और सदारङ्ग कौन है। इस प्रकार बहुतसी कवितायें न्यामतखां ने तैयार

करके अपने शागिर्दों को भी याद कराई और जब बादशाह को यह कवितायें ख्याल में गाकर सुनाई गई तो वे बड़े प्रभावित हुए और यह जानने की इच्छा प्रगट की कि यह 'सदारंगीले' कौन है ? न्यामतखा के शागिर्दों ने जवाब दिया कि हमारे उस्ताद जिनका असली नाम न्यामतखा है, उनका ही तखल्लुस (उपनाम) 'सदारंगीले' है। बादशाह ने कहा अपने उस्ताद को बुलाकर लाओ। न्यामतखा दरबार में उपस्थित हुए तो मोहम्मद शाह ने उनके पुराने अपराधों को क्षमा करके, उन्हें पुन आदर पूर्वक अपने दरबार में रख लिया और वे वीणा बजाकर गायकों का साथ करने के लिए स्थायी रूप से दरबार में रहने लगे। इस प्रकार सदारङ्ग ने अपना रङ्ग जमा लिया और गुणियों में आदर प्राप्त कर लिया।

सदारङ्ग के ख्यालो में विशेष रूप से शृङ्गार रस पाया जाता है। कहा जाता है कि सदारङ्ग ने स्वय अपनी ये चीजें महफिलो में नहीं गाई। उनका कहना था कि खुद अपने लिये या अपने खान्दान के लिये मैंने यह चीजें नहीं बनाई हैं, बल्कि बादशाह सलामत को खुश करने के उद्देश्य से ही इनकी रचना की गई है। इतना होते हुए भी इनकी रचनाए समाज में काफी फैल गई। ख्याल गायक और गायिकाओं ने इनकी चीजें खूब अपनाई।

सदारङ्ग के साथ-साथ कुछ चीजों में अदारङ्ग का नाम भी पाया जाता है। इसके बारे में एक इतिहासकार का कथन है कि न्यामतखा के २ पुत्र थे, जिनका नाम फीरोजखा और भूपतखा था। 'अदारङ्ग' फीरोजखा का ही उपनाम था। भूपतखा का उपनाम 'महारङ्ग' था। इस प्रकार पिता के साथ-साथ दोनों पुत्र भी सङ्गीत के क्षेत्र में अपना नाम सर्वदा के लिये अमर बना गये।

बालकृष्ण बुवा (इचलकरंजीकर)

श्री बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर अखिल भारतीय सङ्गीत कला कोविदों में एक उच्च श्रेणी के गायक हो गये हैं। प्रसिद्ध सङ्गीताचार्य प० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर इन्हीं के शिष्य थे। बालकृष्ण बुआ का जन्म सन् १८४९ ई० (शाके १७७१) में कोल्हापुर के पास चन्दूर नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता रामचन्द्र बुआ स्वय एक अच्छे गायक थे, इस कारण बाल्यकाल से ही इनके अन्दर भी सङ्गीत की अभिरुचि उत्पन्न हो गई। भाऊ बुआ, देवजी बुआ, हद्दूखा, हस्सूखा आदि विद्वानों से इन्होंने ध्रुपद-धमार, ख्याल और टप्पा की शिक्षा पाई, अत इन चारों अङ्गों के आप कलावन्त थे।

कुछ समय बाद इन्हें जोशी बुवा नामक प्रसिद्ध सङ्गीतज्ञ से भी सङ्गीत शिक्षा प्राप्त हुई और अपने परिश्रम तथा रियाज के द्वारा थोड़े समय में ही बालकृष्ण बुआ गायनाचार्य बन गये। आपने समस्त हिन्दुस्तान व नैपाल का भ्रमण किया। अनेक सङ्गीत-सम्मेलनों में भाग लिया। बम्बई में आपने गायन समाज की स्थापना की और सङ्गीतदर्पण नाम का एक मासिक पत्र भी चलाया, किन्तु श्वास रोग के कारण आपको बम्बई छोड़नी पड़ी। कुछ समय बाद आप औंध के स्टेट गायक हो गये। वहा प्रात'काल अपना रियाज करते और फिर शिष्यों को पढाते थे।

कुछ समय बाद आपने इचलकरंजी नामक रियासत में स्थायी रूप से राज-गायक की पदवी स्वीकार कर ली, तभी से आप इचलकरंजीकर के नाम से प्रसिद्ध हो गये और पुनः समस्त भारत का भ्रमण करके आपने सङ्गीत का प्रचार किया। इसी बीच आपके एक मात्र सुपुत्र का निमोनिया से यकायक देहान्त हो गया और फिर एक सुपुत्री भी चल बसी। इन आघातों से आपके स्वास्थ्य को विशेष धक्का पहुँचा, फलस्वरूप सन् १९२६ में इचलकरंजी में ही आप स्वर्गवासी होगये।

पं० रामकृष्ण वझे

आपका जन्म सन् १८७१ ई० में सावन्त वाड़ी के ओंक्रा नामक ग्राम में हुआ था। १० मास की शिशु अवस्था में ही आपको छोड़कर आपके पिताजी स्वर्गवासी हो गये, अतः इनका पालन-पोषण माता के द्वारा ही हुआ। ४ वर्ष की अवस्था में इनकी माताजी इन्हें लेकर कागल नामक स्थान में आकर अन्ना खाहब देश पांडे के यहां रहने लगीं।

बाल्यकाल में विद्या अध्ययन के समय आपकी रुचि का प्रवाह सङ्गीत की ओर मुड़ गया। अध्यापकों के अनुरोध पर आपकी माताजी ने आर्थिक दशा प्रतिकूल होने पर भी, किसी प्रकार आपको सङ्गीत शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध किया। उस समय भाग्य से इन्हीं के गांव में बलवन्तराव पोहरे नामक दरबारी गायक रहते थे, उनसे आपने २ वर्ष तक सङ्गीत शिक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् मालवन में विठोवा अन्ना हड़प के पास रहकर उनकी गायकी सीखी।

बारह वर्ष की अवस्था में ही आपका विवाह कर दिया गया। विवाह होते ही आपके सामने आर्थिक समस्या खड़ी हो गई और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आप पूना होते हुए पैदल ही बम्बई जा पहुँचे। बम्बई में गा-गा कर दस बारह रुपये कमाये। वहां से आप नाना साहब पानसे के पास सङ्गीत सीखने के उद्देश्य से इन्दौर पहुंचे। वहां आपको बन्देअली तथा चुन्ना के गाने और उनकी वीणा सुनने का अवसर मिला।

तत्पश्चात् आपने ग्वालियर में रहकर अनेक कष्ट उठाते हुए भी अपनी सङ्गीत-शिक्षा जारी रक्खी। खां साहब निसारहुसेन पर आपकी काफी श्रद्धा थी। उनकी फटकारें खाकर भी आपने बहुत कुछ सङ्गीत शिक्षा उन्हीं से प्राप्त की। इस बीच इन्हें प्राचीन उस्तादों की संकीर्ण मनोवृत्तियों के बड़े कटु अनुभव हुए। फलस्वरूप आपने सङ्गीत शिक्षा देने एवं सङ्गीत सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित करने का संकल्प कर लिया।

अन्त में उनका आर्थिक जीवन भी सुखमय होगया था। शारीरिक गठन सुन्दर एवं स्वास्थ्य अच्छा होने के कारण आपका व्यक्तित्व भी प्रभावशाली था। किन्तु अन्तिम दिनों में आपको मधुमेह जैसी दुष्ट बीमारी ने निर्बल बना दिया। फलस्वरूप आप शनैः-शनैः अधिक निर्बल होते गये और ५ मई सन् १९४५ ई० को पूना में आपका देहावसान हो गया।

अब्दुल करीम खां

खां साहब अब्दुलकरीम खां किराना के निवासी थे। इनके घराने में प्रसिद्ध गायक, तन्तकार व सारङ्गी-वादक हुए हैं। इन्होंने अपने पिता कालेखां व चाचा अब्दुल्लाखां से सङ्गीत शिक्षा प्राप्त की। यह बचपन में ही बहुत अच्छा गाने लगे थे। कहा जाता है कि पहली बार जब इन्हें एक सङ्गीत-महफिल में पेश किया गया, तब इनकी उम्र केवल ६ वर्ष की थी। पन्द्रहवें वर्ष में प्रवेश करते-करते इन्होंने सङ्गीत कला में इतनी उन्नति करली कि आपको तत्कालीन बड़ौदा नरेश ने अपने यहां दरबार गायक नियुक्त कर लिया। बडौदा में ३ वर्ष तक रहने के पश्चात् १९०२ ई० में प्रथम बार आप बम्बई आये और फिर मिरज गये। मधुर और सुरीली आवाज एवं हृदयग्राही गायकी के कारण दिनोंदिन इनकी लोकप्रियता बढ़ती गई।

सन् १९१३ के लगभग पूना में आपने आर्य सङ्गीत विद्यालय की स्थापना की। विविध संगीत जलसों के द्वारा धन इकट्ठा करके आप इस विद्यालय को चलाते थे। गरीब विद्यार्थियों का सभी खर्च विद्यालय उठाता था। इसी विद्यालय की एक शाखा १९१७ ई० में खां साहब ने बम्बई में स्थापित की और स्वयं तीन वर्ष तक बम्बई में आपको रहना पडा। इन दिनों आपने एक कुत्ते को बडे विचित्र ढङ्ग से स्वर देने के लिये सिखा लिया था, बम्बई में अब भी ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं, जिन्होंने अमरोली हाउस बम्बई के जलसे में इस कुत्ते को स्वर देते हुए सुना था। कई कारणों से सन् १९२० में यह विद्यालय उन्हें बन्द कर देना पडा और फिर खां साहब मिरज जाकर बस गये और अन्त तक वहीं रहे।

खां साहब गोबरहारी वाणी की गायकी गाते थे। महाराष्ट्र में मींड और कण युक्त गायकी के प्रसार का श्रेय खां साहब को ही है। इनके अलापों में अखण्डता एवं एक प्रवाह सा प्रतीत होता है। सुरीलेपन के कारण आपका संगीत अन्तःकरण को स्पर्श करने की क्षमता रखता था। 'पिया बिन नाहीं आवत चैन' आपकी यह ठुमरी बहुत प्रसिद्ध हुई। इसे सुनने के लिये कला मर्मज्ञ विशेष रूप से फर्माइश किया करते थे। यद्यपि आप शरीर से कमजोर थे, किन्तु आपका हृदय बडा विशाल और उदार था। आपका स्वभाव अत्यन्त शान्त और सरस था, और एक फकीरी वृत्ति के गायक थे।

खां साहब की शिष्य परम्परा बहुत विशाल है। प्रसिद्ध गायिका हीराबाई बडोदेकर ने खां साहब से ही किराना घराने की गायकी सीखी है। इनके अतिरिक्त सवाई गन्धर्व, रौशन आरा बेगम आदि अनेक शिष्य एवं शिष्याओं द्वारा आपका नाम रौशन होरहा है।

एक बार वार्षिक उर्स के अवसर पर आप मिरज आये थे। कुछ लोगों के आग्रह वश एक जलसे में वहां से मद्रास जाना पडा, वहां पर आपका एक सङ्गीत कार्यक्रम में गायन इतना सफल रहा कि उपस्थित जनता ने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। फिर एक संस्था की सहायतार्थ जलसे करने के लिये वहां से पाण्डेचेरी जाने का निश्चय हुआ। इस यात्रा में ही खां साहब की तबियत खराब हो गई और रात्रि के ११ बजे सिंगपोयमकोलम स्टेशन पर वे उतर गये। बेकली बढती गई, कुछ देर इधर उधर टहलने के बाद वे बिस्तर पर बैठ गये। नमाज पढी और फिर दर्बारी कान्हड़ा के स्वरों में खुदा की इबादत करने लगे। इस प्रकार गाते-गाते २७ अक्टूबर सन् १९३७ ई० को आप हमेशा के लिये उसी बिस्तर पर लेट गये

इनायत खाँ

इनायत खां का जन्म सन् १८६४ ई० में इटावा में हुआ। अपने समय में सुरबहार के आप एक प्रसिद्ध कलाकार होगये हैं। इनके बाबा साहेब दाद खां ध्रुपद, ख्याल और गज़ल शैली के विशेषज्ञ थे, साथ ही वे जलतरंग और सारङ्गी वादन में भी कुशल थे।

इनायतखां के पिता इमदादखां हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध सुरबहार और सितारवादक थे। जोड़ और गत तोड़ा शैली में वे अपनी सानी नहीं रखते थे। महाराजा नौगांव तथा महाराजा बनारस के यहां दरबारी गायक के रूप में रहने के पश्चात् कलकत्ते में महाराजा सर यतीन्द्र मोहन टैगोर के यहाँ रहे। इसके बाद इमदाद खां ३००) मासिक वेतन पर अवध के नवाब वाजिद अली शाह के कोर्ट म्यूजिशियन नियुक्त हुए। फिर कुछ समय बड़ौदा दरबार में रहने के बाद अन्त में अपने दो पुत्रों के साथ इन्दौर दरबार में रहे। इनकी मृत्यु सन् १६२० ई० में ६२ वर्ष की आयु में होगई। आपने अपने पीछे २ पुत्र और ५ पुत्रियां छोड़ीं।

इमदाद खां के २ पुत्रों में इनायत खां छोटे और वहीद खां बड़े हैं। इनायत खां ने छोटी उम्र से ही ध्रुपद, ख्याल और ठुमरी आदि की तालीम अपने पिता से प्राप्त की थी, इसके पश्चात् आपने विभिन्न रागों के बारे में जानकारी हासिल की और अपने पिता से ही सुरबहार और सितार बजाना भी सीखते रहे। अपने सतत परिश्रम और अभ्यास के फलस्वरूप शीघ्र ही इनकी गणना अच्छे कलाकारों में होने लगी। काठियावाड़, मैसूर, बड़ौदा और इन्दौर में अपनी सङ्गीत सेवाऐं अर्पित करने के बाद कुछ समय तक गौरीपुर के ब्रजेन्द्रकिशोर राय चौधरी के यहां नौकरी में रहे।

इसके पश्चात् इनायत खां ने विविध सङ्गीत सम्मेलनों में भाग लेकर अनेक स्वर्णपदक प्राप्त किये। इनके सितार वादन में जो मिठास था, वह सुनते ही बनता था। मैमनसिंह जिले के कई स्थानों में आपका शिष्य समुदाय फैला हुआ है। सन् १६३८ के लगभग आपका शरीरान्त होगया। इनके पुत्र विलायत खां आजकल एक सफल सितार वादक के रूप में गौरीपुर घराने का नाम ऊँचा कर रहे हैं।

श्री भातखण्डे और विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

इनका संक्षिप्त परिचय इस पुस्तक में पृष्ठ २६ व ३० पर देखिये।

———

अकारादि क्रम से २०० रागों का शास्त्रीय विवरण !

नोट (१) कोमल तीव्र वाले खाने में "दोनों" का अर्थ है, कोमल व तीव्र। जैसे नं० १ के राग में कोमल तीव्र का खाना देखिये, उसमें "गु धु व दोनों नि" लिखे हैं, इसका अर्थ है कि गु धु कोमल लगेंगे और निषाद कोमल व तीव्र दोनों प्रकार के लगेंगे।

(२) वर्जित स्वर वाले खाने में कोष्ठक ( ) में जो स्वर है, वे पूर्णतया वर्जित न होकर अल्प प्रमाण में लगेंगे।

नं०	राग नाम	थाट	जाति	वादी	संवादी	कोमल-तीव्र	वर्जित स्वर आरोह	वर्जित स्वर अवरोह	आरोह	अवरोह	गायन समय
१	अडाणा	आसावरी	षाडव	सा	प	गु धु व दोनों नि	ग	ध	सारेमप धुनिसा	सा धुनिपमप गुम रेसा	रात्रि तीसरा प्रहर
२	अल्हैया बिलावल	बिलावल	षाडव सम्पूर्ण	ध	ग	कहीं-कहीं नि	म	०	सारेगप धनिसा	सानिधप मगरेसा	प्रात काल
३	अरज	भैरव	सम्पूर्ण	म	सा	रे व मनि दोनों	०	०	सारेग मपमप धनिसा	सारेंसानि धपमग रेसा	"
४	अहीर भैरव	"	"	म	सा	रे नि	०	०	सा रे ग म प ध नि सा	सा नि ध प म ग रेसा	"
५	आभेरी	आसावरी	ओड़व सम्पूर्ण	म	नि	रे गु धु नि	रे ध	०	सा गु म प नि सा	सा नि धु प म गु रे सा	"
६	आसा	बिलावल	" "	म	सा	०	ग नि	०	सा रे म प ध सा	सा नि ध प म ग रे सा	रात्रि दूसरा प्रहर
७	आसावरी	आसावरी	" "	ध	ग	गु धु नि	ग नि	०	सा रे म प धु सा	सानिधु प मगु रे सा	दिन दूसरा प्रहर
८	आनन्द भैरव	भैरव	सम्पूर्ण	म	सा	रे	०	०	सा रे ग म प ध नि सा	सा नि ध प म ग रेसा	प्रात काल
९	आनन्द भैरवी	आसावरी	"	प	सा	गु नि व दोनों ध	(नि)	०	सा रे गु म प ध सा	सा नि धु प म गु रे सा	रात्रि तीसरा प्रहर
१०	आभोगी	काफी	औड़व	सा	म	गु	प नि	प नि	सा रे गु म ध सा	सा ध म गु रे सा	प्रात काल
११	आभोगीकान्हरा	"	"	म	सा	गु	प नि	प नि	सा रे गु म ध सा	सा ध म गु म रे सा	मध्यरात्रि
१२	उत्तरी गुणकली	भैरवी	सम्पूर्ण	सा	म	रे गु धु नि	०	०	सा रे गु म प धु नि सा	सा नि धु प म गु रे सा	प्रात काल
१३	कलावती	खमाज	औड़व	प	सा	नि	रे म	रे म	सागपग निपप धसा	सांनिधप गप धप गसा	मध्यरात्रि
१४	कमलरजनी	बिलावल	औड़व षाडव	ध	ग	दोनों नि	रे म	रे	सा ग प ध नि सा	सानिध निपमग सा	प्रात काल
१५	ककुभ	"	सम्पूर्ण	म	सा	" "	०	०	सा रे ग म प ध नि सा	सा नि ध प म ग रे सा	"

२६	कामोद	कल्याण	”	प	रे	दोनों म	०	०	सारेप मंप धप निधसां	सांनिध प मंपधप गमरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
२७	काफी	काफी	”	प	सा	ग नि	०	०	सारेग म प धनिसां	सांनिध प मग रेसा	मध्यरात्रि
२८	कालिंगड़ा	भैरव	”	प	सा	रे ध	०	०	सारेगम प ध नि सां	सांनिधप मग रेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर
	केदार	कल्याण	औड़व सम्पूर्ण	सा	म	दोनों म	रे ग	(ग)	साम मप धप निध सां	सां निध प मंप गमरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
	कोमल देसी	आसावरी	औड़व संपूर्ण	प	रे	निगध व दोनोंरे	ग ध	०	सारे मप निसां	सांनिधप मगरेसा	दिन दूसरा प्रहर
	कौंसी कान्हरा	”	सम्पूर्ण	म	सा	नि ग	०	०	सारेगम पधनिसां	सांनिधप मगरेसा	मध्यरात्रि
	कौंसी भैरव	भैरव	”	म	सा	रे ध नि दोनों	०	०	साम गमपम निधनिसां	रेंनिधप मग मरेसा	दिन प्रथम प्रहर
	खमाज	खमाज	षाड़व संपूर्ण	ग	नि	दोनों नि	रे	०	सा ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	रात्रि दूसरा प्रहर
	खम्बावती	”	संपूर्ण पाड़व	ग	ध	” ”	०	रे	सा रे ग म प नि ध सां	सांनिधप मगमसा	” ” ”
	खट	आसावरी	सम्पूर्ण	ध	ग	गध, दोनों नि	०	०	सारेगम प निधनिसां	सांनिधप मगरेसा	दिन दूसरा प्रहर
	खोकर	खमाज	”	रे	प	नि, दोनों ग	०	०	सारेपम निधप मपधसां	सांनिधप धनिप मगरेगरेसा	” ” ”
	गान्धारी	आसावरी	षाड़व सम्पूर्ण	ध	ग	गध, निरे दोनों	ग	०	सारेमप धनिसां	सांनिधप मगरेसा	” ” ”
	गारा	खमाज	सम्पूर्ण	ग	नि	गनि दोनों	०	०	सारेगरे गमपध निसां	सांनिधनि पमगरे गरेसा	” ” ”
	गुणकरी	भैरव	औडव	ध	रे	रे ध	गनि	गनि	सा रे म प ध सां	सां ध प म रे सा	दिन प्रथम प्रहर
	गुणकली	विलावल	सम्पूर्ण	सा	प	०	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	” ” ”
	गुर्जरी तोड़ी	तोड़ी	पाड़व	ध	रे	रे मं ग	प	प	सा रे ग मं ध नि सां	सां नि ध मं गरे गरेसा	दिन दूसरा प्रहर
	गोपी बसंत	आसावरी	”	सा	प	गनिध	रे	रे	सा ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग सा	प्रातःकाल
	गोरख कल्याण	खमाज	”	म	सा	नि	ग	ग	सा रे म ध नि ध सां	सां नि धपम रेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
	गौड़ मल्हार	काफी	संपूर्ण	म	सा	गनि दोनों	(गनि)	०	सा रे म प ध सां	सांनिप मपगम रेसा	वर्षा ऋतु
	गौड़ सारंग	कल्याण	”	ग	ध	म दोनों	०	०	सागरेमग पमंधप निधसां	सांधनिप धमंपग मरे परेसा	दिन दूसरा प्रहर
	गौरी (भैरव)	भैरव	औडव संपूर्ण	रे	प	रेध	गध	०	सा रे म प नि सां	सांनिधप मगरेसा	सायंकाल
	गौरी (पूर्वी)	पूर्वी	” ”	रे	प	रेध, दोनों म	गध	०	सारेपमं पनिसां	सांनिधप म पगरे मंगरेसा	”
	चन्द्रकान्त	कल्याण	पाड़व संपूर्ण	ग	नि	मं	म	०	सा रे ग प ध नि सां	सांनिधप मंगरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
	चन्द्रकौंस	काफी	औडव	म	सा	गनि	रेप	रेप	साग मध निसां	सांनिधम ग मग सा	मध्यरात्रि

४०	चन्द्र कल्याण	पूर्व	षाडव	प	सा	मं धु	ग	ग	सा रे मं प नि सां	सेर धुप मंधुप गंरेनिसा	सायकाल
४१	चन्द्रिका	बिलावल	षाडव	प	सा	०	ग (ध)	(नि)ग	सा रे म प नि सा	साधप मपध पमरे निसा	मध्यरात्रि
४२	चक्रधर	"	षाडव	म	सा	०	प	प	सा रेगम धनिसा	सानिधमग रेसा	" "
४३	चम्पक	खमाज	ओडव सपूर्ण	म	सा	नि	गनि	०	सा रे ग प ध सा	सा नि पध मप गरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
४४	चम्पाकली	"	" "	सा	प	मंनि	रेध	०	साग मं प नि सा	सानि धप मंप मंग रेसा	मध्यरात्रि
४५	छायानट	कल्याण	सम्पूर्ण	प	रे	दोनों म	०	०	सा रे गमप निध सा	सानिधप मंपधप गमरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
४६	जयराज	बिलावल	षाडव ओडव	म	सा	०	ग	ग नि	सारेमप मधनिसा	साधपम धप मरेसा	मध्यरात्रि
४७	जलधर केदार	"	ओडव	म	सा	०	गनि	गनि	सारे साम मप धसा	साधपम रे सा	रात्रि दूसरा प्रहर
४८	जैजैवन्ती	खमाज	सम्पूर्ण	रे	प	दोनों गनि	०	०	सा रे गमप निसा	सानिधप धम रेगुरेसा	" "
४९	जैत	मारवा	ओडव	प	सा	रे	मनि	मनि	सा रे ग प धप सा	सापध पगरेसा	सायकाल
५०	जैत कल्याण	कल्याण	"	प	सा	०	मनि	मनि	सा रे ग प ध सा	रेसा धप गरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
५१	जेतश्री	पूर्वी	ओडव सपूर्ण	ग	नि	रे मं धु	रेध	०	सा ग मं प नि सा	सा नि धुप मंगरेसा	सायंकाल
५२	जोगिया	भैरव	ओडव षाडव	म	सा	रे धु	गनि	ग	सा रे म प धु सा	सा नि धु प धु म रे सा	प्रात काल
५३	जोनपुरी	आसावरी	षाडव सपूर्ण	ध	ग	गु नि धु	ग	०	सा रेम प धु नि सा	सा निधु प मगु रेसा	दिन दूसरा प्रहर
५४	जगला	"	सम्पूर्ण	सा	प	गनिध दोनों	०	०	सा रे गु म प ध नि सा	सा निधु पध पमगुरेसा	रात्रि तीसरा प्रहर
५५	झिंझोटी	खमाज	सम्पूर्ण	ग	नि	नि	०	०	सारेगम प ध नि सा	सानिधप मगरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
५६	झीलफ (भैरव)	भैरव	ओडव	ध	ग	धु	रेनि	रेनि	सा ग म प धु सा	सा धु प म ग सा	प्रात काल
५७	झीलफ(आसावरी)	आसावरी	सम्पूर्ण	ध	ग	गु धु नि	०	०	सारगुम प धु नि सा	रेमानिधु प गुपमगुरेसा	
५८	टंकी	पूर्वी	"	प	रे	रे धु मं	(म)	०	सारेगप धुपनिसा	सानिधुप मंग पगरेसा	सायंकाल
५९	तिलक कामोद	खमाज	षाडव सपूर्ण	रे	प	०	ध	०	सारेगमा रेमपम गप मा	सापमगग सारेग सानि	रात्रि दूसरा प्रहर
६०	तिलंग	"	ओडव	ग	नि	दोनों नि	रे ध	रेध	साग मप निसा	सानि प मग सा	" " "
६१	त्रिवेणी	पूर्वी	षाडव	रे	प	रे धु	म	म	सा रे ग प धु नि सा	सा नि धु प ग रे सा	सायकाल
६२	तोडी	तोडी	सम्पूर्ण	ध	ग	मं रे गु धु	०	०	सा रे गु मंप धु निसा	सानिधुप मंगु रेसा	दिन दूसरा प्रहर
६	[illegible]खारी का [illegible]	आसावरी	सम्[illegible]	रे	प	[illegible] ध नि	[illegible]	ध	निसारेगुरेसा मप धुनिसा	सा धुनिप मप गु मरेसा	मध्यरात्रि

४ दीपक (पू ल)		षाड़व	सा	प	रे म ध	रे	नि	सागमप धनिसां	सांधप मगरेसा	सायंकाल
५ दीपक (बिलावल)	बिलावल	षाड़व संपूर्ण	ग	नि	दोनों नि	रे	०	सागमप धनिसां	सां नि ध प म ग रे सा	रात्रि
६ दुर्गा (खमाज)	खमाज	औड़व	ग	नि	" "	रेप	रेप	सा ग म ध नि सां	सां नि ध म ग सा	रात्रि दूसरा प्रहर
दुर्गा (बिलावल)	बिलावल	"	म	सा	०	गनि	गनि	सा रे म प ध सां	सां ध प म रे सा	" "
देव गंधार	आसावरी	औड़व संपूर्ण	ध	ग	ग ध नि	रेध	०	सा ग म प नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	दिन दूसरा प्रहर
देवगिरी बिलावल	बिलावल	" "	सा	प	दोनों नि	मनि	धग	सारेगम गपध नि ध सां	सांनिध निप मगरेसा	दिन प्रथम प्रहर
देवरंजनी	भैरव	औड़व	सा	म	ध नि	रे ग	रे ग	सा म प ध प ध सां	सांधनिध प म सा	प्रातःकाल
देशकार	बिलावल	"	ध	ग		म नि	मनि	सारेग प ध सां	सांध प गपधप गरेसा	दिन प्रथम प्रहर
देशाख्य	काफी	षाड़व	प	सा	ग नि	ध	ध	ऩिसामरे पम निप सां	सां निप मप गम रेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
देस	खमाज	सम्पूर्ण	रे	प	दोनों नि	०	०	सा रे म प नि सां	सांनिधप मग रेगसा	" " "
देसी	आसावरी	औड़व संपूर्ण	प	रे	ग व निध दोनों	ग ध	०	सा रे म प नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	दिन दूसरा प्रहर
धनाश्री	काफी	" "	प	सा	नि ग	रे ध	०	सा ग म प नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	दिन तीसरा प्रहर
धानी	"	औड़व	ग	नि	ग नि	रे ध	रेध	सा ग मप निसां	सां निप मग सा	सर्वकालिक
नट	बिलावल	सम्पूर्ण औड़व	म	सा	०	०	धग	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि प म रे सा	रात्रि दूसरा प्रहर
नट बिलावल	"	षाड़व सम्पूर्ण	म	सा	दोनों नि	रे	०	सागम पमग मपधनिसां	सांनिधनिप मग मरेसा	दिन दूसरा प्रहर
नट विहाग	"	" "	सा	प	०	ध	०	सा रे ग म प नि सां	सां निपधम पमगरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
नट मल्हार	काफी	सम्पूर्ण	म	सा	गनि दोनों	०	०	सा रेग मरे गमप निधसां	सांनिध निप मग मरेसा	वर्षाकाल
-	कल्याण	षाड़व सम्पूर्ण	सा	प	दोनों म	रे	०	सा ग म प धनिप धमपसा	सांनिधप मंपगम रेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
यकी कान्हरा	काफी	षाड़व	म	सा	ग व दोनों नि	ध	ध	सा रे ग म प नि सां	सांनिपमप गमरेसा	मध्यरात्रि
ग स्वरावली	खमाज	औड़व	म	सा	०	रे नि	रेनि	साग मप धसां	सांधपम पग मगसा	रात्रि दूसरा प्रहर
ट कुरंजिका	"	षाड़व	सा	म	नि	प	प	ऩिसा गम धनिसां	रेंनिसांधम गमरेसा	" " "
रायणी	खमाज	औड़व पाडव	रे	प	नि	ग नि	ग	सा रे म प ध सां	सां नि ध प म रे सा	रात्रि दूसरा प्रहर
लाम्बरी	काफी	औड़व संपूर्ण	रे	प	ग नि दोनों	ग नि	०	सा रे म प ध सां	सां नि ध प म ग रे सा	" " "
	पूर्वी	सम्पूर्ण	सा	प	रे ध व दोनों म	०	०	निसाग मंपधनिसां	सां निधप मंप मग रेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर

८८	पटविहाग	विलावल	षाडव संपूर्ण	प	सा	दोनों नि	ध	०	सा रे ग म प नि सा	सानिधप निधप मगरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
८९	पहाड़ी	"	ओडव	सा	प	०	म नि	म नि	सा रे ग प ध सा	सा ध प गप गरेसा	सर्वकालिक
९०	पटमंजरी (वि०)	"	सम्पूर्ण	सा	प	०	(ध)	०	सारेगम पधप मपनिसा	सानिध निप मगरेसा	मध्यरात्रि
९१	पटमंजरी (का०)	काफी	"	सा	प	ग नि दोनों	(गध)	०	सा रे ग म प ध नि सा	सानिधप मगरेसा	दिन तीसरा प्रहर
९२	पीलू	"	"	ग	नि	गधनि दोनों	०	०	सा रेग मपधप निधपसा	निधपमग निसा	" "
९३	पूर्वी	पूर्वी	"	ग	नि	रे ध व दोनों म	०	०	सारे ग मंप ध निसा	सानिधप मं ग रेसा	दिन अन्तिम प्रहर
९४	पूरिया	मारवा	षाडव	ग	नि	रे मं	प	प	निरेसा ग मंध निरेंसा	सानि ध मंग रेसा	सन्धिप्रकाश काल
९५	पूर्या	"	"	ग	नि	रे मं व दोनों ध	प	प	निरेधसा रेगमं धसा	सा निध मंगरेसा	सन्ध्याकाल
९६	पूर्व कल्याण	"	सम्पूर्ण	रे	ध	रे मं	०	(प)	सारेगमं पधनिसा	सानिधप मंगरेसा	"
९७	पूर्याधनाश्री	पूर्वी	"	प	रे	रे ध मं	०	०	निरे गमंप धप निसा	रें निधप मंग मंरेगरे ना	"
९८	पञ्चम	मारवा	षाडव	म	सा	रे व दोनों म	प	प	साम मंग मंधनिध सा	सानिध मंमग मंगरेसा	उत्तर रात्रि
९९	प्रदीपकी (पटदीपकी)	काफी	ओडव सपूर्ण	सा	म	नि व दोनों ग	रे ध	०	साग मप निसा	सानिधप मगमप गरेसा	दिन तीसरा प्रहर
१००	प्रभात	भैरव	सम्पूर्ण	म	सा	रे ध, दोनों म	०	०	सारेगम पधनिसा	सानि धप ममं गरेसा	प्रात काल
१०१	बहार	काफी	षाडव	म	सा	ग, दोनों नि	रे	ध	सा गम पगम निधनिसा	सा निपमप गम रेसा	मध्यरात्रि
१०२	बरवा	"	षाडव सपूर्ण	रे	प	ग, नि दोनों	ग	०	सा रे मप ध निसा	सानि धप मप गरेगसा	दिन दूसरा प्रहर
१०३	बडहंस सारंग	"	ओडव	रे	प	दोनों नि	ग ध	ग ध	सा रे म प नि सा	सा नि प म रे सा	" " "
१०४	बसन्त	पूर्वी	षाडव सपूर्ण	सा	म	रे ध, दोनों म	प	०	साग मंध रेंसा	रेंनि धप मंगमंध मंगरेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर
१०५	बागेश्री	काफी	ओडव सपूर्ण	म	सा	ग नि	रे प	०	सा मग मधनिसा	सा निधमग मगरेसा	मध्यरात्रि
१०६	बिलासखानी तोडी	भैरवी	सम्पूर्ण	ध	ग	रे ग ध नि	(मनि)	०	सारे गमग पध निसा	सानिधम गमगरेसा	दिन दूसरा प्रहर
१०७	बिलावल	बिलावल	"	ध	ग	०	०	०	सारेगम पधनिसा	सानिधप मग रेसा	प्रात काल
१०८	बिहाग	"	ओडव सपूर्ण	ग	नि	०	रेध	०	साग मप निसा	सा निधप मग रेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
१०९	बिहागड़ा	"	षाडव सपूर्ण	म	सा	दोनों नि	(रे)	०	साग मप धनि सा	सानिधप मगरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
११०	बृन्दावनी सारङ्ग	काफी	ओडव	रे	प	दोनों नि	ग ध	ग ध	निसा रे मप निसा	सा निप मरे सा	मध्याह्नकाल

११२	भटियार	मारवा	सम्पूर्ण	म	सा	रे व दोनों म	(नि)	०	साध प धमपग मंधसां	रेंनि धपम पग रेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर
११३	भवानी	बिलावल	चतुस्वरी	म	सा	०	ग प नि	गपनि	सा रे म ध सां	सां धम रेसा	मध्यरात्रि
११४	भिन्नषड्ज	"	औडव	म	सा	०	रे प	रेप	साग मध निसां	सां निध मग सा	"
११५	भीमपलासी	काफी	औडव संपूर्ण	म	सा	नि ग	रे ध	०	निसागम प निसां	सांनिधपम गरेसा	दिन तीसरा प्रहर
११६	भूपाल तोड़ी	भैरवी	औडव	ध	ग	रे ग ध	म नि	मनि	सा रे ग प धसां	रेंसां धप ग पगरेसा	प्रातःकाल
११७	भूपाली	कल्याण	"	ग	ध	०	म नि	मनि	सारेगप धसां	सां धप ग रे सा	रात्रि प्रथम प्रहर
११८	भैरव	भैरव	सम्पूर्ण	ध	रे	रे ध	०	०	सारेगम पध निसां	सांनिध पमग रे सा	प्रातःकाल
११९	भैरवी	भैरवी	"	म	सा	रे ग ध नि	०	०	सा रेगम पध निसां	सां निधप मग रेसा	"
१२०	भंखार	मारवा	"	प	सा	रे व दोनों म	०	०	सारेसा गमपम पगमंधसां	सां निधप मंधमंग पगरेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर
१२१	मनोहर	पूर्वी	षाडव	ग	ध	रे ध मं	प	०	सा रे ग मं ध सां	रेंसां रेंनिधप गमंगरेसा	" " "
१२२	मध्यमाद सारङ्ग	काफी	औडव	रे	प	नि	धग	धग	सारे मप निसां	सां निप मपरेसा	दिन दूसरा प्रहर
१२३	मलुहा केदार	बिलावल	औडव संपूर्ण	सा	म	०	रे ध	०	निसा गमप निसां	सां निध पमग मरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
१२४	मधुवन्ती	तोड़ी	" "	प	सा	ग मं	रेध	०	निसा गमंप निसां	सांनिध प मं ग रेसा	दिन तीसरा प्रहर
१२५	मारवा	मारवा	षाडव	रे	ध	रे मं	प	प	सारे ग मंध निध सां	सांनिध मंगरेसा	दिन अन्तिम प्रहर
२६	मारुबिहाग	कल्याण	औडव संपूर्ण	ग	नि	मं	रेध	०	पनिसाग मंप निसां	निरेंनिध प मंग रेसा	" " "
२७	मांड़	बिलावल	सम्पूर्ण	सा	प	०	०	०	सागरे मगपम धपनिध सां	सांधनिप ध मपग मसा	सर्वकालिक
२८	मालकौंस	भैरवी	औडव	म	सा	ग ध नि	रेप	रेप	निसा गम ध निसां	सांनिध मगमगसा	रात्रि तीसरा प्रहर
२९	मालवी	पूर्वी	षाडव संपूर्ण	रे	प	रे ध मं	नि	(ध)	सारेगमंप मंधसां	सांनिपमं गरेसा	सायंकाल
०	मालश्री	कल्याण	औडव	प	सा	मं	रेध	रेध	सा गप पनिसां	सां निप मंग पगसा	सायंकाल
१	मालगुंजी	काफी	षाडव सपूर्ण	म	सा	ग नि दोनों	प (रे)	०	सा ग म ध निसां	सांनिधप मग मगरेसा	रात्रिकाल
२	मालारानी	कल्याण	औडव	प	रे	मं	गध	मनि	सा रेमंप निसां	निसांधप रेमंप गरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
३	मालिन	मारवा	औडव षाडव	ग	नि	रे	रेम	म	निसागप पनिधसां	सां निधप गपग रेसा	सायंकाल
४	मालीगौरा	"	सम्पूर्ण	रे	प	रे मं व दोनों ध	०	०	सां रेगमंप धनिधसां	सांनिधप मंनिधमंग रेसा	"
	मियां की सारङ्ग	काफी	षाडव	रे	प	नि दोनों	ग	ग	धनिसा रे पध निसां	सां निध सां निप मरेसा	दिन दूसरा प्रहर

१३६	मिया मल्हार	काफी	सपूर्ण पाडव	म	सा	ग व दोनों नि	०	ध	रेमरेसा मरे प निधनिसा	सानिप मपगम रेसा	मध्यरात्रि
१३७	मीरा मल्हार	"	सपूर्ण	म	सा	गधनि दोनो	०	०	निसा रेगमप निधनिसा	साधनिप मपगम रेनिसा	"
१३८	मुलतानी	तोडी	औडव सपूर्ण	प	सा	रेगधमं	रेध	०	निसा गमंप निसा	सानिधप मंग रेसा	दिन चौथा प्रहर
१३९	मेघरजनी	भैरव	औडव	म	सा	रे	पध	पध	निरेग म निसा	रेंसा निम ग मरेगरेसा	रात्रि चौथा प्रहर
१४०	मेघ मल्हार	काफी	"	सा	प	दोनो नि	धग	धग	सा मरे मप निनिसा	सानिप मरे मनिरेसा	वर्षाकाल
१४१	यमन	कल्याण	सपूर्ण	ग	नि	मं	०	०	सारेग मंप ध निसा	सानिध प मंग रेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
१४२	यमनी बिलावल	बिलावल	"	सा	प	दोनों म	०	०	सारेग मग पमंध निसा	सानिधप गमगरे गरेसा	प्रात काल
४३	रसरजनी	"	औडव	म	सा	०	गप	गप	सा रे म ध नि सा	सा नि ध म धमरेसा	मध्यरात्रि
४४	रसचन्द्र	"	"	म	सा	दोनों म	निप	निप	सारेसा गमर्म मंधमंसा	रेंसा धमंम गमरेसा	प्रात काल
४५	राजकल्याण	कल्याण	औडव पाडव	ग	नि	मं	प (रे)	प	निसाग मंधमंग मंधसा	सा निरेनिध मंगरेसा	सायकाल
४६	राजेश्वरी	काफी	औडव	म	सा	ग	परे	परे	निसा मगम मध निसा	सानिध मग मग सा	मध्यरात्रि
४७	रागेश्वरी	खमाज	औडवपाडव	ग	नि	दोनों नि	परे	प	साग मधनिसा	सानिमम गरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
४८	रामकली	भैरव	सपूर्ण	प	सा	रेध व मनि दोनों	०	०	सा ग मप ध निसा	सानिध पर्म प गनिधपगमरेसा	प्रात काल
४९	रामदासी मल्हार	काफी	"	म	सा	गनि दोनों	०	०	सारेप मगम पनिधनिसा	साधनिमप मगमरेसा	वर्षाकाल
५०	रेवती (कान्हरा)	"	औडव सपूर्ण	प	सा	ग नि	निग	०	सा रेमप धमप सा	सा धनिप मप मगमरेसा	प्रात काल
५१	रेवा	पूर्वी	औडव	ग	प	रे ध	मनि	मनि	सा रे ग प ध सा	सा ध प ग रे सा	सायकाल
५२	लच्छासाख	बिलावल	सम्पूर्ण	ध	ग	दोनों नि	०	०	सा रे ग म प ध नि सा	सा निध पधनिधप गमरेसा	प्रात काल
५३	ललित	मारवा	पाडव	म	सा	रे व दोनों म	प	प	निरेगम मंमग मंध सा	रेंनिध मंध मंमग रे सा	रात्रि अन्तिम प्रहर
५४	ललित गौरी	पूर्वी	सम्पूर्ण	म	सा	रे व धम दोनों	०	०	सारेगम मंमग पधनिसा	सानिधप धमं म ग मरेसा	सायकाल
५५	ललित पचम	भैरव	पाडव सपूर्ण	म	सा	धरे व दोनों म	प	०	सारेसागम मंगमध निसा	सानिधप धमंम पग रेसा	रात्रि अन्तिम प्रहर
५६	लक्ष्मी कल्याण	कल्याण	सम्पूर्ण	रे	प	दोनों म	०	०	सा रेगमरे मंप ध निसा	सानिधप मं म गमरेसा	सायंकाल
५७	लाजवन्ती	बिलावल	सम्पूर्ण	प	सा	०	०	०	निसा गरे मग पधमपसा	माप धम पग मपरेसा	मध्यरात्रि
५८	वराटी	मारवा	सम्पूर्ण	ग	ध	मं रे	०	०	सा रेग पमंग पधनि सा	सा निधप मंग रेसा	सायकाल
५९	विभास (भैरव)	भैरव	औडव	ध	ग	रे ध	मनि	मनि	सा रे ग प ध प सा	सा धप गपधप गरेसा	प्रात काल

६०	विभास (मारवा)	मारवा	सम्पूर्ण	ध	ग	रे म	०	०	सा रेग मंग पधनिधसां	सां निध मंध मंगरेसा	प्रातःकाल
१	वैजयन्ती	कल्याण	औडव	प	रे	मं	ग ध	सध	निसारे मं प निसां	सांनि पमरेसा	सायंकाल
२	शहाना	काफी	सम्पूर्ण	प	सा	नि ग	०	०	निसा गमप निधपसां	सांनिधनि पमप गमरेसा	रात्रि तीसरा प्रहर
३	शहाना कान्हरा	"	षाडव संपूर्ण	प	सा	गनि	ध	०	सारेग मपनिसां	सांनिधप मप गरेसा	मध्यरात्रि
४	श्याम कल्याण	कल्याण	औडव संपूर्ण	सा	म	दोनों म	ध	०	निसा रे मंप धप निसां	सांनिध मंपगमरे निसा	रात्रि प्रथम प्रहर
	श्याम केदार	खमाज	षाडव	म	सा	मनि दोनों	ग	ग	सारेसाम रेमं प धनिसां	सांनिधप धनिधपमरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
	शिवरंजनी	काफी	औडव	प	सा	ग	मनि	मनि	सारेगप ध सां	सां धप ग रे सा	मध्यरात्रि
	शिवमत भैरव	भैरव	सम्पूर्ण	ध	रे	रे ध, गनि दोनों	०	०	सा रे ग म प ध नि सां	सां नि ध प म ग रे सा	प्रातःकाल
	शुक्ल बिलावल	बिलावल	"	म	सा	दोनों नि	(रे)	०	साग मप धनिसां	सांनिध निधप मगमरेसा	प्रातःकाल
	शुद्ध कल्याण	कल्याण	औडव सम्पूर्ण	ग	ध	मं	मनि	०	सा रेग पधसां	सांनिधप मंग रे सा	रात्रि प्रथम प्रहर
	शुद्ध सारङ्ग	काफी	षाडव	रे	प	मनि दोनों	ग	ग (ध)	सारेमप मंपनिसां	सांनिपमं पधपमरेनिसा	दिन दूसरा प्रहर
	शंकरा	बिलावल	औडव षाडव	ग	नि	०	रेम	म	साग प निध सां	सांनिप निध गप गरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
	श्रीराग	पूर्वी	औडव सम्पूर्ण	रे	प	रे मं ध	गध	०	सारे मंप निसां	सां निध प मंगरेसा	सायंकाल
	श्रीकल्याण	कल्याण	औडव	प	सा	मं	गनि	गनि	सा रे मं प धप सां	सां धप मंप रेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
	श्रीटंक	पूर्वी	षाडव सम्पूर्ण	प	रे	रे ध मं	म	०	सा रे ग प ध नि सां	सां नि ध प मं ग रे सा	सायंकाल
	श्रीरंजनी	काफी	औडव षाडव	म	सा	ग नि	रे प	प	सा ग म ध नि सां	सां नि ध म ग रे सा	मध्यरात्रि
	सरपरदा	बिलावल	संपूर्ण	सा	प	०	०	०	सारेगम धपनिध निसां	सांनिधप मग मरेसा	दिन प्रथम प्रहर
	सरस्वती	खमाज	षाडव	प	रे	मं नि	ग	ग	सारेमंप निधप निधसां	रेंनि धपमं रेमंप मंरेसा	मध्यरात्रि
	नाजगिरी	मारवा	संपूर्ण	ग	नि	रे, मध दोनों	०	०	निरेग मंगमंप धपसां	सांनिध मंधमंग पगरेसा	संध्याकाल
	मन्त सारङ्ग	काफी	औडव	रे	प	दोनों निषाद	ग ध	ग ध	सा रे मप निसां	सां निप म रेसा	दिन दूसरा प्रहर
	न	खमाज	औडव संपूर्ण	म	सा	" "	रे प	०	निसागम ध निसां	सां धनिप मगम गमरेसा	रात्रि दूसरा प्रहर
	वनी कल्याण	कल्याण	सम्पूर्ण	सा	प	०	(मनि)	०	सारेसा मगप ध सां	सांनिधनि गपगरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
		भैरव	औडव संपूर्ण	प	सा	रे ध	ग नि	०	सारेमप धसां	सांनिधप मगरेसा	प्रातःकाल
	ंझ का हिंडोल	कल्याण	औडव	ग	नि	मं	प रे	प रे	साग मं मंनि मंधसां	सां निधनि धमंग सा	सायंकाल

१८४	सिन्धु भैरवी	आसावरी	सपूर्ण	म	सा	ग नि ध	०	०	सारेगम पधनिसा	सानिधप मगरेसा	दिन दूसरा
१८५	सुघराई	काफी	पाडव संपूर्ण	प	सा	ग, दोनों नि	ध	०	सा रे ग म प नि सा	सानिधप मप गमरेसा	" "
१८६	सूर मल्हार	"	औडव पाडव	म	सा	दोनों नि	ग ध	ग	सा रे म प नि सा	मा निमप मरे सा	वर्षाऋतु [illegible] प्रहर
१८७	सूहा (कान्हरा)	"	पाडव	म	सा	ग नि	ध	ध	निसा गम पनिमप सा	सा निध मप गमरे सा	दिन दूसरा प्रहर
१८८	सैंधवी (सिंदूरा)	"	औडव संपूर्ण	सा	प	ग नि	ग नि	०	सा रे म प ध सा	सानिधप मगरेम गरेसा	सायकाल
१८९	सोरठ	खमाज	" "	रे	ध	दोनों नि	ग ध	०	सारे मपनि सा	सारें निध मपध मरेनिसा	रात्रि दूसरा प्रहर
१९०	सोहनी	मारवा	पाडव	ध	ग	म रे	प (रे)	प	साग मधनिसा	सारेंसानिध मध मगरेसा	रात्रि अंतिम प्रहर
१९१	सौराष्ट्रटंक	भैरव	सम्पूर्ण	म	सा	रे, दोनों ध	०	०	सारे गम पम ध सा	सानिधम निधप मगरेसा	प्रातःकाल
१९२	हमीर	कल्याण	"	ध	ग	दोनों म	०	०	सारेसा गमध निध सा	सानिधप मपधप गमरेसा	रात्रि प्रथम प्रहर
१९३	हिजाज	भैरव	"	म	सा	ध नि, रे दोनो	०	०	सारेगमप धनिसा	सानिधप म गमप रेसा	दिन दूसरा प्रहर
१९४	हिंडोल	कल्याण	औडव	ध	ग	म	रे प	रे प	साग मधनिध सा	सा निध मग सा	दिन प्रथम प्रहर
१९५	हुसेनी कान्हरा	काफी	सम्पूर्ण	सा	प	ग नि	०	०	सारेग मपधनिसा	सानिधप गमरेसा	मध्यरात्रि
१९६	हेम कल्याण	बिलावल	औडव	सा	प	०	नि (ध)	ग नि	सा रे ग प सा	सा ध प ग रे सा	रात्रि दूसरा प्रहर
१९७	हंसकंकणी	काफी	औडव संपूर्ण	प	सा	गनि दोनों	रे ध	०	साग मप निसा	सानिधप मपग मगरेसा	दिन तीसरा प्रहर
१९८	हंसध्वनि	बिलावल	औडव	सा	प	०	म ध	म ध	सारे गपगरे गपनि सा	सा नि प ग रे सा	रात्रि प्रथम प्रहर
१९९	हंसमंजरी	काफी	पाडव	प	रे	नि	ग	ग	सा रेसपध निसा	साधप मपधपम रेनिसा	दिन तीसरा प्रहर
२००	हंसश्री	खमाज	औडव	प	सा	दोनों नि	रे ध	रे ध	सा गमपनि सा	सा नि मप पगमग सा	रात्रि दूसरा प्रहर

नोट —उपरोक्त राग विवरण में मतभेद भी हो सकते हैं, फिर भी यथा सम्भव हमने [illegible] भातखण्डे मतानुसार ही दिये हैं।